मानिक-मन्दिर

एक शिक्षापूर्ण मौलिक उपन्यास

लेखक—

श्री० मदारीलाल जी गुप्त

[नवीन संशोधित संस्करण]

प्रकाशक—

'चाँद' कार्यालय,

इलाहाबाद

जुलाई, १९२९

दूसरा संस्करण २,०००] [मूल्य ढाई रुपया

प्रकाशक—

'चाँद' कार्यालय,

इलाहाबाद

पहला संस्करण २,०००, जुलाई, १९२६

दूसरा संस्करण २,०००, जुलाई, १९२९

मुद्रक—

आर० सहगल,

फ़ाइन आर्ट प्रिंटिङ्ग कॉटेज,

इलाहाबाद
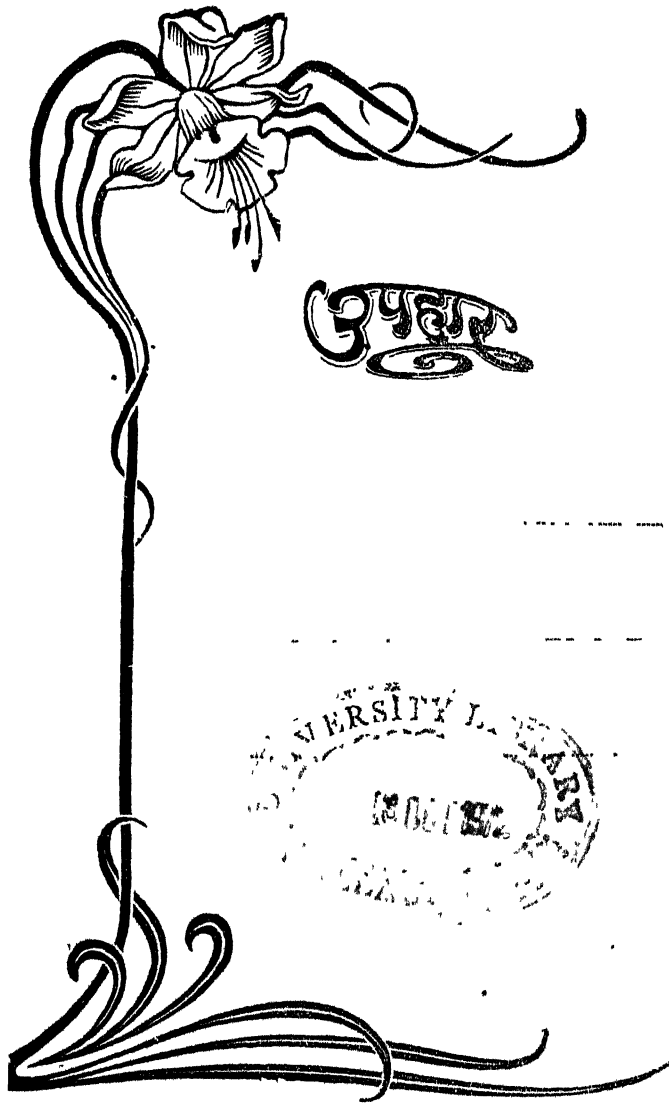
अनुवचन
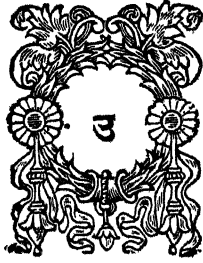
उपन्यास का सबसे बड़ा गुण उसकी मनोरञ्जकता है। इस लिहाज़ से श्री० मदारीलाल जी गुप्त को अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। पुस्तक आदि से अन्त तक पढ़ जाइए, कहीं आपका जी न ऊबेगा। पुस्तक की रचना-शैली सुन्दर है। पात्रों के मुख से वही बातें निकलती हैं, जो यथावसर निकलनी चाहिए; न कम, न ज़्यादा। उपन्यास में वर्णनात्मक भाग जितना ही कम और वार्त्ताभाग जितना ही अधिक होगा, कथा उतनी ही रोचक और ग्राहक होगी। 'मानिक-मन्दिर' में इस बात का काफ़ी लिहाज़ रक्खा गया है। वर्णनात्मक भाग जितना है; उसकी भाषा भी इतनी भावपूर्ण है कि पढ़ने में आनन्द आता है। कहीं-कहीं तो आपके भाव बहुत गहरे हो गए हैं और दिल पर चोट करते हैं। चरित्रों में मेरे विचार में सोना का चित्रण बहुत ही स्वाभाविक हुआ है और देवी का सर्वाङ्ग सुन्दर। सोना अगर पतिता के मनोभावों का चित्र है, तो देवी सती के भावों की मूर्त्ति। पुरुषों में ओङ्कार का चरित्र बड़ा सुन्दर और सजीव है। विषय-वासना के भक्त कैसे चञ्चल, अस्थिरचित्त, कितने मधुर-भाषी होते हैं, ओङ्कार इसका जीता-जागता उदाहरण है। उसे अपनी पत्नी से

प्रेम है, सोना से प्रेम है, कुमारी से प्रेम है और चन्दा से प्रेम है। जिस वक्त जिसे सामने देखता है, उसी के मोह में फँस जाता है। ओङ्कार ही पुस्तक की जान है।

कथा में कई सीन बहुत मर्मस्पर्शी हुए हैं। 'सोना के मिट्टी' हो जाने का और ओङ्कार के सोना के कमरे में आने के वर्णन बड़े ही सनसनी पैदा करने वाले हैं।

मानिक जले हुए हृदय का धुआँ है। उसके आने से कथा में Romance की छाया पड़ गई है और Romance को यथार्थ के पैमाने से नापना न्याय-सङ्गत नहीं।

—प्रेमचन्द

ब रङ्ग जमा था। मजलिस ठसाठस भरी हुई थी। लोग एक-दूसरे पर गिरे पड़ते थे। दर्शकों का आना बन्द नहीं हुआ था। झुण्ड के झुण्ड मनुष्य हाथ में हाथ दिए, हँसते-बोलते और आपस में हँसी-दिल्लगी करते हुए चले आ रहे थे। बड़ा रौला मचा हुआ था। हर एक आदमी आगे पहुँचने की कोशिश कर रहा था; इससे बहुत ठेलमठेल हो रही थी। इधर-उधर दो-चार आदमी शान्ति स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे थे; पर उनसे कुछ नहीं होता था। किसी तरह गड़बड़ी कम नहीं होती थी। शोर-ग़ुल के कारण कोई किसी की सुनता ही न था। समुद्र की लहरों के समान लोग इधर-उधर घूम रहे थे। लखनऊ की प्रसिद्ध वेश्या कुमारी आई थी न, इसी से!

भड़कीली चमकदार चाँदनी तनी थी, सुन्दर झालरें चारों ओर लहरा रही थीं और इधर-उधर चाँदी और सोने की पन्नियाँ लगी थीं। अगणित लैम्पों के उज्ज्वल प्रकाश में उनके अकस्मात् चमक उठने से आँखों में चकाचौंधी छा जाती थी। स्थान-स्थान पर गमलों में अनेक प्रकार के पौधे लगे थे। उनमें खिले हुए छोटे-बड़े और रङ्ग-बिरङ्गे फूल अपनी सुरभि एवं छटा से मन को मोहित करते थे। यथोचित स्थानों पर नाना प्रकार की तसवीरें और बड़े-बड़े आइने लगे थे। मजलिस बड़ी ख़ूबसूरती से सजाई गई थी।

कचहरी की घड़ी में दस बजे। ओङ्कारनाथ की आज्ञा पाकर बाजे वालों ने अपना साज सँवारना आरम्भ किया। जीवन ने अपनी बुलन्द आवाज़ में बड़ी ज़ोर से चिल्ला कर कहा—ख़ामोश !

सन्नाटा छा गया। लोगों की उत्सुक दृष्टि मजलिस की जान कुमारी पर पड़ी और वहीं गड़ गई। कुमारी को ईश्वर ने असीम सुन्दरता दी थी। वह इन्द्रासन की सर्वश्रेष्ठ अप्सरा जान पड़ती थी। अङ्ग-प्रत्यङ्ग में मनोहरता और सुडौलता कूट-कूट कर भरी थी, आम की फाँकें सी बड़ी-बड़ी आँखें थीं। उनमें से बड़ी तेज़ चमक निकलती थी। वे जिसकी ओर एक बार उठ जाती थीं, वह बिना दाम का गुलाम बन जाता था। सुन्दर गुलाबी और भरे हुए गालों में चित्त को आकर्षित करने की विचित्र शक्ति थी। पतले-

पतले होठों में अमृत भरा था। दाँत मोतियों के समान स्वच्छ और सुन्दर थे। काले और घने बालों के आगे आ जाने के कारण मस्तक कुछ छोटा जान पड़ता था; तथापि उससे उसकी सुन्दरता में कोई बाधा नहीं पड़ती थी। जान-बूझ कर उसने अपनी अलकें और नीची कर ली थीं। कुमारी के ज़रा से हिलने-डुलने से ही मधुरता चारों ओर छिटक जाती थी। दर्शक-मण्डली मुग्ध हो रही थी। ऐसा अनूप रूप तो कभी नहीं देखा! कुमारी ने अपने ललित स्वर से गाना आरम्भ किया—

श्याम, तेरी बाँसुरी ने मेरा मन लुभा लिया;
मेरा मन लुभा लिया, हाँ, मेरा मन लुभा लिया।
श्याम, तेरी बाँसुरी ने मेरा मन लुभा लिया।

गाते-गाते वह ओङ्कारनाथ के सामने बैठ गई और आँखें मटकाने और तरह-तरह के हाव-भाव दिखाने लगी। रागिनी निकल रही थी—

मेरा मन लुभा लिया, हाँ, मेरा चित लुभा लिया,
श्याम, तेरी बाँसुरी ने मेरा मन लुभा लिया।

ओङ्कार का हृदय चञ्चल हो उठा। ऐसा मालूम हुआ मानों एक प्रकार का जादू धीरे-धीरे उस पर अपना प्रभाव डाल रहा है। कुमारी की पतली, सुरीली एवं झनकती हुई आवाज़ उसके हृदय-तल में घुसकर अपना काम करने लगी। वह इस तरह ओङ्कार को लक्ष्य कर गाती थी, जैसे वही

उसका श्याम हो और उसी ने बाँसुरी बजा कर उसका मन मोह लिया हो। जिस समय वह अपनी नाज़ुक गोल बाँहों को उसकी ओर बढ़ा कर धीरे-धीरे खींच लेती थी, उस समय ओङ्कार के मन का आवेग उबल पड़ता था। ऐसा जान पड़ता था, मानों उसका हृदय आप ही आप उसकी ओर भागा चला जाता हो। वह उसे रोक ही न सकता था और न उसमें उसके रोकने की शक्ति ही थी। कभी-कभी जब पतली रेशमी साड़ी छाती से सट जाती थी, तब कुमारी के उन्नत उरोज साफ़ दिखाई दे जाते थे। थोड़ी ही देर में ओङ्कारनाथ अपने को भूल गया। उसका मन हाथ से जाता रहा। भला ऐसी सुन्दरी के सम्मुख कोई स्थिर रह सकता है।
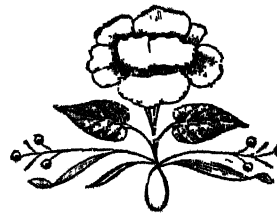
तःकाल का सुहावना समय था। प्रकाश ने पूर्णरूप से अपना प्रभाव जमा लिया था। ओङ्कार नदी के किनारे अपने मकान के सामने टहल रहा था। उसका चित्त इस समय बहुत प्रफुल्लित न था। ठण्डी-ठण्डी हवा उसके मुख पर झोंका मारती हुई निकल जाती थी। कभी वह नदी की छोटी-छोटी तरङ्गों को देखता और कभी चारों ओर दृष्टि दौड़ाते इधर-उधर घूमने लगता। एक बार उसने आकाश की ओर देखा। चन्द्रमा म्लान मुख लिए हुए मानों बारह घण्टे के लिए बिदा माँग रहा था। बादलों के असंख्य टुकड़े जहाँ-तहाँ दौड़ कर छोटे बालकों के समान खेल रहे थे। ओङ्कार ने जो एक टुकड़े की ओर ज़रा निगाह गड़ा कर देखा, तो ऐसा जान पड़ा जैसे वह धीरे-धीरे नीचे आ रहा हो। बिना पलक मारे वह उसी ओर देखने की चेष्टा करने लगा। उसी चाल से वह चला आ

रहा था। ज़रा सी पलक झप जाने पर वह पहले से कुछ अधिक ऊँचा दिखाई देने लगता था। फिर उसी तरह आने लगता था। क्रमशः वह बहुत पास आ गया। अब तो इस विचित्रता पर ओङ्कार को बड़ा आश्चर्य और भय मालूम हुआ। झपट कर वह घर के भीतर चला आया। कुछ देर तक सहमा हुआ वहीं खड़ा रहा; किन्तु उत्सुकता नहीं मिटी। एक बार फिर वही आश्चर्य-व्यापार देखने का मन हुआ। बाहर आकर देखा, तो वह बादल का टुकड़ा बहुत ऊँचे—दूसरे टुकड़ों के पास—चला गया है। ओङ्कार टकटकी लगाकर देखने लगा। उसे फिर नीचे की ओर आते पाया। दृढ़-प्रतिज्ञ होकर धीरे से वह बोला—अब की नहीं भागूँगा।

उसी प्रकार टुकड़ा हिलते-डोलते आने लगा। ओङ्कार सहम कर ज़ोर से मुट्ठी बाँधे हुए खड़ा रहा। क्षण-क्षण में उसकी दूरी कम होती जाती थी। नीचे आया—अब और, अब बिलकुल ही पास आ गया। अन्त में वह ओङ्कार के सामने कुछ दूरी पर पृथ्वी पर उतर पड़ा। अचानक उसमें एक सुन्दर मूर्ति का आविर्भाव हुआ। अरे, यह तो मेरी कुमारी है! ओङ्कार कुमारी की ओर लपका। वह मधुर कटाक्ष के साथ बोली—प्यारे ओङ्कार, मुझे न जाने क्या हो गया है। बिना तुम्हारे देखे एक क्षण के लिए भी नहीं रहा जाता। जी व्याकुल हो जाता है, कल नहीं पड़ती।

लाचार, आना पड़ा। क्यों प्यारे, क्या तुमसे बिना मेरे रहा जाता है ?

ओङ्कार की विचित्र गति हो गई। वह कुमारी की गोद में गिर पड़ा। बोला—न कुमारी, मेरी दशा तुमसे भी ख़राब है। अब तक मुझे चैन कहाँ था ? यदि हृदय में तुम्हारी प्रति-मूर्ति धारण करने की शक्ति न होती, तो इस समय, ईश्वर जाने, मेरी क्या दशा हो गई होती ?

कुमारी—तो तुम मुझे चाहते हो ?

ओङ्कार—अपने से अधिक !

कुमारी—अच्छा चलो, मैं तुम्हें अपना आनन्द-भवन दिखला लाऊँ।

ओङ्कार—कहाँ है ?

कुमारी—यहाँ से बहुत दूर है। चिन्ता की कोई बात नहीं। यह वारिद-विमान कुछ ही मिनटों में हमें वहाँ पहुँचा देगा।

कुमारी ने न जाने क्या किया। विमान ऊपर उठने लगा। पहले वह कुछ धीमी चाल से चला; फिर बड़ी तेज़ी से जाने लगा। थोड़ी देर में ओङ्कार ने जो नीचे की ओर देखा, तो काँप उठा। पृथ्वी एक बड़ी धुँधली गेंद के समान दिखाई देती थी। उस पर की कोई चीज़ साफ़ तौर से दिखाई न देती थी।

कुमारी ने मुस्कराते हुए पूछा—डरते हो क्या ?

ओङ्कार ने तुरन्त ही अपना भाव बदलकर कहा—नहीं, डरूँगा क्यों ? यही सोच रहा था कि हम लोग इतनी जल्दी इतनी दूर कैसे चले आए ?

कुमारी—यह विमान बड़ा शीघ्रगामी है। मैं इसे इससे भी अधिक तेज़ चला सकती हूँ। एक मिनट में यह सैकड़ों मील की दूरी तय कर सकता है।

ओङ्कार—इस समय हम लोग कहाँ होंगे ?

कुमारी—यह स्थान पृथ्वी की सीमा के बाहर है। देखते नहीं, यहाँ की वायु और वहाँ की वायु में कितना भेद है ! यह कैसी सुगन्धित और मन को प्रसन्न कर देने वाली है ! अब हम लोग स्वर्ग के पास हैं। वह देखो, मन को मोहने वाली वृक्षों की क़तारें और चमचमाते हुए स्वच्छ महल यहाँ से भी दीख रहे हैं। अब घर पहुँचने में देर नहीं है।

थोड़ी ही देर में कुमारी के महल के सामने विमान उतरा। दोनों प्रेमी हाथ में हाथ दिए फाटक की ओर बढ़े। ओङ्कार ने अपने मन में स्वर्ग की जैसी कल्पना की थी, उससे कहीं बढ़कर उसे पाया। जहाँ देखो वहीं आमोद-प्रमोद की सामग्रियाँ देखने में आती थीं, जिनसे मन आनन्द-सागर में हिलोरें लेने लगता था। कुमारी का आनन्द-भवन बाग़ के बीच में बना था। बाग़ की शोभा अनुपम थी। तरह-तरह के वृक्ष और लता फल एवं पुष्पों से

लदे थे। कई वृक्ष ऐसे थे, जो पृथ्वी पर कहीं देखने में नहीं आते। एक पर फल के स्थान पर मनुष्य के सिर लटक रहे थे। ठीक जैसे मनुष्य का सिर होता है, वैसे ही वे थे—आँख, कान, नाक, सब उसी तरह। विचित्रता यह थी कि वे मुस्कराते थे और काली पुतलियों को नचाते थे। ओङ्कार ने पास जाकर देखना चाहा। कुमारी ने मना कर दिया। इनसे वायु की गति और आँधी-पानी आने की पहचान होती है, उसने ऐसा ही कुछ कहा था। श्वेत सङ्गमरमर का बना हुआ महल सूर्य की रोशनी में चाँदी-सा चमक रहा था। भीतर पहुँचने पर उसकी अपूर्व शोभा देखी। ऐसी चीज़ें पृथ्वी पर कहाँ? बड़े से बड़े अमीर की अट्टालिका इसके सम्मुख ग़रीब की तुच्छ झोपड़ी है। यहाँ की सामान्य से सामान्य वस्तु लाखों रुपयों की सम्पत्ति है।

कई दिनों तक ओङ्कार कुमारी के साथ बड़े सुख से रहा। कुमारी उसे उदासी से बचाने के लिए नित्य स्वर्ग के भिन्न-भिन्न भागों में घुमाया करती थी। वहाँ की चीज़ें दिखलाती थी और उनकी विशेषताएँ कहती थी। ओङ्कार का मन रम गया। उसे घर की याद न रही। एक दिन की बात है, सन्ध्या का समय था। सुगन्धित वायु और भी सुगन्धित हो रही थी। सब स्थानों पर सुनहरा प्रकाश फैला हुआ था। ओङ्कार उत्सुकता से भीतर आकर कुमारी पर गिर पड़ा। कुमारी लेटी थी। ओङ्कार उसके दूसरी ओर अपने

एक हाथ के सहारे उसे घेर और उस पर झुक कर बैठ गया। अहा! कैसा सुन्दर मुख है? सायङ्काल की शोभा के साथ ही साथ इसकी मनोहरता कई गुनी बढ़ गई है। आँखों की पुतलियाँ नृत्य करते समय मानों देखने वाले के हृदय को भी नचा रही हैं। ओङ्कार का मोह अधिक गहरा हो उठा। प्रीति-भरे शब्दों में उसने कहा—प्रिये, तुम बड़ी मनमोहक हो। तुम्हारी रूप-राशि अपार है।

कुमारी—क्या सचमुच?

ओङ्कार—हाँ, बिलकुल सच। मैंने कोई चीज़ ऐसी नहीं देखी, जिसको लगातार देखने से जी न ऊब जाय, पर तुम्हारी यह सुन्दरता! कौन जाने इसमें क्या मोहिनी शक्ति तथा अमृत भरा है? इससे कभी तृप्ति ही नहीं होती। इच्छा होती है, हर घड़ी, हर पल, इस रूप-रस का पान करता रहूँ। इसे छोड़ कर जाने को जी नहीं चाहता।

कुमारी कुछ हँसी; अधर-पल्लवों के खुलने से दन्त-पंक्तियों की अतीव मनोहर आभा दिखाई दी। ओङ्कार के छल्लेदार बालों को छूकर वह उनके साथ खेलने लगी। ओङ्कार ने अपनी चेतना-शक्ति खो दी, उसको कुछ सुध-बुध न रही। उसकी आँखें झपने लगीं। शनैः शनैः उसका मस्तक नीचे झुकने लगा। यहाँ तक झुका कि अन्त में वह कुमारी के कन्धे से जा लगा। कुमारी के सुदृढ़ वक्षस्थल से मोहित युवा की चौड़ी छाती सट गई। भला उस समय

का आनन्द कहीं वर्णन किया जा सकता है! पर वह क्षणिक ही था।

अचानक ओङ्कार की निद्रा भङ्ग हो गई। उसने अपने को तकिए के सहारे पड़े पाया।
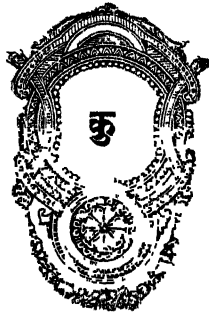
मारी अभी हाथ-मुँह धोकर श्रृङ्गार करने के लिए दर्पण के सम्मुख खड़ी ही हुई थी कि कालिका बड़ी ज़ोर से हँसता हुआ कमरे के भीतर आ पहुँचा। वह मातृ-पितृ-हीन एक तेरह वर्ष का लड़का था। कुमारी अनाथ जान कर उस पर बहुत प्यार करती थी। कालिका भी कुमारी को ही अपना सब कुछ समझता और उसकी माँ के समान भक्ति करता था।

कुमारी ने मुस्कराते हुए पूछा—क्या है रे! इतना क्यों हँसता है?

बड़ी देर तक हँस लेने के बाद कालिका बोला—बड़ा मज़ा हुआ माँ जी! हँसते-हँसते पेट में दर्द होने लगा है।

वह फिर हँसने लगा।

कुमारी ने कुछ क्रोध का भाव दिखाकर कहा—कहता क्यों नहीं? क्या बात है?

इस बार वह कुछ शान्त होकर बोला—आप उठी नहीं थीं, तब एक सेठ का लड़का आपको पूछते-पूछते यहाँ तक आया था। मैंने उसे नीचे के कमरे में बैठा दिया था। थोड़ी देर बाद उसका बाप भी आ धमका। मैंने उसे भी उसी कमरे में भेज दिया। तब तो बड़ा मज़ा हुआ। बाप-बेटे की बड़ी बढ़िया मुलाक़ात हुई। बुड्ढा अपने लड़के पर बहुत गर्म हुआ। कहने क्या लगा कि इतने सवेरे तू दूकान छोड़कर क्यों भाग आया? ढूँढ़ते-ढूँढ़ते हैरान हो गया हूँ। उसके इस प्रकार बातें बनाने पर मुझे ख़ूब हँसी आई। वह मुझ पर भी बिगड़ने लगा। मैं और हँसने लगा। जैसे-जैसे वह मुझ पर तेज़ पड़ता था, वैसे-वैसे मेरी हँसी बढ़ती जाती थी। आख़िर, कुढ़ कर वह अपने लड़के के साथ गाली देता हुआ चला गया। ख़ासी दिल्लगी रही। मेरी हँसी अभी तक नहीं रुकती। ही-ही।

कुमारी बाल सँवारते हुए बोली—अच्छा, वह बात जाने दे। यह तो बता, पहले तू किसी मेम के यहाँ रहता था न?

कालिका—हाँ, रहता तो था।

कुमारी ने हँसकर कहा—तब तो तू क्रिस्तान हो गया होगा?

कालिका का हँसता हुआ चेहरा गम्भीर हो गया। दृढ़ता से उसने कहा—वाह, क्रिस्तान कैसे हो गया? मैं उनके यहाँ सिर्फ़ एक साल तो रहा ही था।

कुमारी—क्रिस्तान तो आदमी एक घण्टे में हो जाता है। तू तो पूरे एक साल तक वहाँ रहा।

कालिका—नहीं, मैं क्रिस्तान नहीं हुआ। वह खुद मुझे हिन्दू कहती थीं। होतीं तो पुछा देता। बड़ी अच्छी थीं।

कुमारी—क्यों, क्या अब मर गई हैं?

कालिका—मर नहीं गईं, विलायत चली गई हैं। जाते समय मुझे पाँच रुपए दे गई थीं। उसके आठ-दस दिन बाद मैं तुम्हारे पास चला आया।

कुमारी—क्या तूने उसके हाथ का छुआ कभी कुछ नहीं खाया?

कालिका—कभी नहीं। उनके पास एक ब्राह्मण भी था। वही मेरे लिए भी रसोई बना देता था।

कुमारी—उसने तुझसे क्रिस्तान होने को कहा था या नहीं?

कालिका—कहा तो था, पर हँसी से। उन्हें मैं बहुत चाहता था। मेरे 'हाँ' करने पर भी उन्होंने मुझे क्रिस्तान नहीं बनाया। बराबर यही सिखाती थीं कि किसी को अपना धर्म नहीं छोड़ना चाहिए। ऐसा करने से बड़ा पाप होता है।

कुमारी—तब तो वह बड़ी अच्छी मेम थी, क्यों?

कालिका—हाँ, बहुत अच्छी थीं।

शृङ्गार पूरा हो जाने पर कुमारी पलङ्ग पर बैठ गई और कालिका से कहा—बैठ, अभी जाना मत। तू ओङ्कारनाथ का घर जानता है?

कालिका—हाँ, जानता हूँ।

कुमारी—वहीं, जहाँ मैं कल रात को गई थी?

कालिका—हाँ।

कुमारी—क़लम-दावात उठा ला। कोई एक किताब भी लेता आ और वह सामने आले में काग़ज़ रक्खा है, उसे भी ले आ।

कालिका ने सब चीज़ें लाकर दे दीं। कुमारी ने एक चिट्ठी लिखी। पूरी हो जाने पर उसे कालिका के हाथ में देते हुए बोली—ले, इसे उन्हीं के हाथ में देना, दूसरे को नहीं। समझता है न?

कालिका—हाँ।

कुमारी—भूलेगा तो नहीं?

कालिका—ज़रा-सी बात क्या भूलूँगा।

कुमारी—शायद कोई दूसरा माँगने लगे और कहे कि लाओ, मैं दे आऊँ, तो न देना। कहना, उन्हीं के हाथ में दूँगा। बाबू ओङ्कारनाथ को अच्छी तरह पहचानता है न?

कालिका—अच्छी तरह। वही न, जो तकिए के सहारे पड़ रहे थे।

कुमारी—हाँ, ठीक है। ये दो आने पैसे हैं। बाज़ार से कुछ लेकर खा लेना। क्या लेगा?

कालिका ने हँस कर कहा—यहीं बग़ल में मैंने हलवाई को ताज़े रसगुल्ले बनाते देखा है। वही लूँगा।

कुमारी—अच्छा जा।
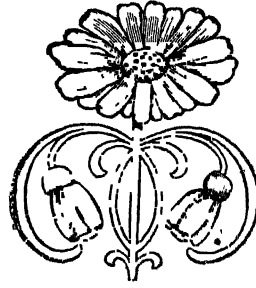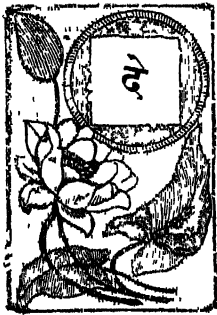
वी ने अपने पति ओङ्कार को झकझोरते हुए कहा—आज क्या हुआ है ? उठते क्यों नहीं ?

ओङ्कार ने करवट बदल कर अँगड़ाई ली। देवी बोलीं—देखो तो, कितना दिन निकल आया है ! नौ बजता होगा।

ओङ्कार—ज़रा तबीयत कुछ खराब मालूम होती है।

देवी ने सशङ्कित-चित्त से पति के माथे पर हाथ फेरा, कहीं कुछ नहीं। हँसकर कहा—वाह, दिल्लगी करते हो क्या ? मुझे तो कुछ नहीं मालूम देता। बिलकुल अच्छे हो। चलो उठो, हलुवा ठण्ढा हुआ जाता है। दूध बड़ी देर से आग पर रक्खा है।

ओङ्कार ने रोगियों के से क्षीण स्वर में कहा—तुम्हें दिल्लगी ही सूझती है; यहाँ जी बेचैन है। बुख़ार भीतरी है; यों बाहर से नहीं जान पड़ता।

इस 'भीतरी बुखार' का मतलब देवी की समझ में नहीं आया। मन में सोचा, जब कहते हैं, तब कुछ न कुछ होगा ही। इसी समय नौकर ने आकर कहा—एक लड़का बाबू जी का पूछता है। एक बड़ी ज़रूरी चिट्ठी लाया है। कहता है, उन्हीं के हाथ में दूँगा!

चिट्ठी का नाम सुनकर ओङ्कार के मन में कुछ कौतूहल हुआ। शरीर में फुर्ती जान पड़ी। सिर उठा कर कहा—उसे यहीं भेज दो।

यह वही कालिका था। हँसते हुए उसने कमरे में प्रवेश किया। एक बार चारों ओर दृष्टि फेंक कर चिट्ठी ओङ्कार के हाथ में दे दी। ओङ्कार ने उसे पढ़ा तो दिल फड़क उठा। मुख कमल के समान खिल गया। आँखें चमक उठीं। उसमें लिखा था!—

"प्यारे!

बड़ी आशा करके यह पत्र भेज रही हूँ। मुझे निराश न करना। कल रात को तुम्हें देख कर मैं बेतरह चञ्चल हो उठी थी। अभी तक मन स्थिर नहीं हुआ। तुम्हारे सुन्दर मुख में क्या जादू भरा है, देखते ही मैं एकदम तुम्हारी हो चुकी हूँ। किसी प्रकार मन नहीं मानता। रात बड़ी मुश्किल से कटी है। अब एक क्षण पहाड़ हो रहा है। तुम्हारी चिन्ता करते-करते थक गई हूँ। प्रेम के कारण न सही, कम से कम मुझ पर दया करके और मेरी अवस्था पर विचार

करके एक बार मेरे पास आओ। मुझे दर्शन दो। और अधिक क्या लिखूँ ?

तुम्हारी प्रेमाकांक्षी,

—कुमारी"

जल्दी-जल्दी ओङ्कार पत्र को दुहरा गया। सन्तोष नहीं हुआ तो फिर पढ़ा और फिर पढ़ा। यह आकाश का सुन्दर फूल तो अचानक आप ही आप टूट कर ठीक हाथ ही पर आकर गिरा है! तबीयत कुछ और ही हो गई। मारे आनन्द के मन प्रफुल्लित हो उठा। पहले की सारी उदासीनता जाती रही। झट पलङ्ग पर से उठकर कपड़े पहनना आरम्भ कर दिया। देवी यह सब बड़े विस्मय से देख रही थी। उसे जाते देख सामने आकर बोली—यह क्या ? हाथ-मुँह भी नहीं धोया। कुछ खाया-पिया भी नहीं। कहाँ चले ?

आँखें मिलते ही ओङ्कार लज्जित हो गया। देवी के मुख पर जैसे व्यंग्य शब्द लिखे हुए थे—'अभी तो तबीयत ख़राब थी!' अपने इस उतावलेपन पर ओङ्कार मन ही मन बहुत खीझा। डरा, जरूर यह कुछ समझ गई है। बात बनाकर बोला—बाहर से मेरे एक मित्र आए हुए हैं। मुझसे मिलना चाहते हैं। आज ही शाम को चले जायँगे।

देवी—मित्र आए हैं तो मिल लेना। शाम ही को न जायँगे। अभी तो सवेरा ही है। हाथ-मुँह धो डालो। थोड़ा-सा खा-पी लो। तब तक यह लड़का बैठा है।

ओङ्कार आँगन में चला गया। इधर देवी के मन में तरह-तरह की शङ्काएँ उठने लगीं। मित्र का पत्र है तो खास उन्हीं के हाथ में देने का क्या कारण है? उसमें मिलने के सिवाय ऐसी क्या बात लिखी होगी? इतने भारी-भारी काम पड़ चुके हैं; तब इतनी उतावली नहीं करते थे, जितनी आज तबीयत खराब रहने पर भी कर रहे हैं। कुछ समझ में न आया। कालिका से पूछा—तेरा क्या नाम है रे?

कालिका ने कुछ गर्व के साथ उत्तर दिया—कालिका-दीन पाँड़े।

वह हँसने लगा। उसके गोल-मटोल चेहरे पर हँसी विचित्र रूप धारण कर लेती थी। देवी हँसने लगी। ठीक ऐसे ही चेहरे उसने दवाइयों के कई विज्ञापनों में देखे थे। एकाएक उसके मन में कोई विचार आया। लड़के की फूली हुई हथेली पर चवन्नी रखते हुए बोली—तेरा तो बड़ा अच्छा नाम है; कालिकादीन पाँड़े, क्यों? तू बड़ा अच्छा लड़का जान पड़ता है। ले, इसकी मिठाई खा लेना।

कालिका ने खुश होकर कहा—आपका चेहरा ठीक मेरी माँ जी के समान है। स्वभाव भी उन्हीं-सरीखा है। जैसे आपने यह चवन्नी दी है, इसी तरह वह भी हरदम कुछ न कुछ दिया ही करती हैं।

देवी—कौन माँ जी?

कालिका—उन्हीं के पास मैं रहता हूँ।

देवी—क्या उन्हीं ने तुझे चिट्ठी लेकर भेजा है ?

कालिका—हाँ ।

देवी—वह तो कहते थे, कोई मित्र आए हैं ।

कालिका कुछ नहीं बोला ।

देवी का मुँह तमतमा उठा । उसने फिर पूछा—वह कौन माँ जी हैं ?

कालिका—वे ही, जो कल रात को यहाँ आई थीं ।

अब आगे कुछ पूछने का साहस नहीं पड़ा । देवी चुप हो रही । थोड़ी देर बाद ओङ्कार आया । बोला—रात को देर तक जागने के कारण तबीयत कुछ सुस्त पड़ गई थी । अब अच्छी है । थोड़ा टहल आने से और भी सुधर जायगी ।

देवी—खाओगे नहीं ?

ओङ्कार—अभी भूख नहीं है । जल्दी ही आता हूँ । वह मेरी चिन्ता में बैठे होंगे ।

देवी ने कुछ क्रोध से पति की ओर देखकर कहा—क्या बिना मित्र से मिले काम नहीं चल सकता ?

ओङ्कार ने हँस कर उत्तर दिया—वाह, तुम भी कैसी हो ! बेचारे बहुत दिनों पर आए हैं । उनसे मिलना ज़रूरी है । न मिलूँगा तो मन में क्या कहेंगे ?

ओङ्कार चला गया । देवी का सर्वाङ्ग जल उठा ।

मारी बड़े उत्साह के साथ ओङ्कार से मिली। हाथ पकड़ कर शय्या पर बैठा लिया। कोमल कर का स्पर्श होते ही ओङ्कार के मन की कली खिल गई। रात का सुखद स्वप्न याद आ गया। उसकी मनोहरता प्रत्यक्ष रूप से सामने आकर उसे विमुग्ध करने लगी। कुमारी बोली—प्यारे, मैं अभी सोच ही रही थी कि तुम्हारा मन भी मेरी ओर ऐसा ही होगा, जैसा मेरा तुम्हारी ओर है।

ओङ्कार—सचमुच यही बात है। तुम्हारे पत्र की बातें ठीक मुझ पर घटित हो जाती हैं।

कुमारी—ईश्वर को हजारों बार धन्यवाद है। उसने मुझे मेरे मन-चाहते से मिला दिया है। अब मैं तुम्हें कभी नहीं छोड़ूँगी। दिन-रात आँखों पर बैठाए रहूँगी। प्यारे, तुम भी मुझे कभी न छोड़ना।

ओङ्कार—कभी नहीं, हम लोगों का सम्बन्ध अटूट जान पड़ता है; नहीं तो एक ही बार के देखने से भला दोनों ओर इतना प्रेम कहाँ हो सकता है !

कुमारी—जान पड़ता है, पूर्व-जन्म में भी हमारा और तुम्हारा साथ था। उस जगन्नियन्ता ने बिछुड़ी हुई जोड़ी फिर मिला दी है।

ओङ्कार—ठीक कहती हो। दो आत्माओं का पूर्वानुराग खण्डित नहीं होता।

कुमारी—पर मुझे एक भय विचलित कर रहा है।

ओङ्कार—क्या ?

कुमारी—तुम्हारा बन्धन सदा के लिए तो किसी दूसरे ही के साथ है।

ओङ्कार—इससे क्या ?

कुमारी—कौन जाने, हमारा-तुम्हारा कब विछोह हो जाय ?

ओङ्कार—यह बात ध्यान में भी मत लाओ।

कुमारी—दशा ऐसी ही है। यदि मैं दोनों के बीच में पड़ूँगी, तो कुशल नहीं जान पड़ता।

ओङ्कार—तुम्हारी यह शङ्का निर्मूल है। क्या एक वृक्ष अपने साथ एक लता लिपटी रहने पर दूसरी की ओर झुक कर उसका प्रेमालिङ्गन नहीं करता ?

कुमारी—मुझे तुम पर पूरा विश्वास है प्यारे ! उस

लता को लिपटी ही रहने दो। मैं केवल यही चाहती हूँ कि तुम मेरे साथ सदैव प्रेम-व्यवहार किया करो। मेरी सदा याद किया करो। कभी भूलो नहीं; केवल यही और कुछ नहीं। बोलो, स्वीकार है न?

ओङ्कार—मैं क्या कहूँ? मेरा हृदय तो तुम्हारे पास है। उसी से पूछ देखो।

कुमारी ने अपने कटाक्ष-पूर्ण नेत्रों से ओङ्कार को देखकर उसे मोहित करते हुए कहा—तुम अपनी पूरी सफ़ाई दे चुके। मुझे भी कुछ कहना चाहिए।

ओङ्कार—इसकी कोई आवश्यकता नहीं। क्या चेहरा देख कर मन का हाल नहीं जान लिया जाता? तुम्हारा निष्कपट, सुन्दर मुख देखकर मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है कि तुम मुझे हृदय से प्यार करती हो।

कुमारी—वेश्याओं का प्रेम कुटिल होता है, यह जगत्-प्रसिद्ध बात है। वे अपने बनावटी प्रेम को, उस पर हाव-भाव का मुलम्मा चढ़ा कर, इस प्रकार सत्य सिद्ध कर दिखाती हैं कि बड़े से बड़े चतुर भी चक्कर में आते हैं और मुँह की खा जाते हैं। क्या आपको इस पर विश्वास नहीं है?

ओङ्कार—ओह! मेरी हृदयेश्वरी! तुम कैसे विशुद्ध हृदय से बातें कर रही हो। तुम्हारे हृदय की सरलता ही स्पष्ट कह रही है कि तुम्हारे और मेरे विषय में यह कदापि सत्य नहीं हो सकता।

कुमारी—कितनी जल्दी तुम मुझ पर विश्वास करने लगे हो! तुम्हारा हृदय कैसा कोमल है! किन्तु, यदि सच-मुच ही मैं झूठी होऊँ तब ?

ओङ्कार—यह बिलकुल असम्भव है। मुख हृदय का दर्पण है। तुम्हारे हृदय का स्वच्छ प्रेम उस पर स्पष्ट झलक रहा है। क्या मैं इसे नहीं समझ सकता? क्या मैं अन्धा हूँ?

कुमारी—देखती हूँ, तुम्हारी मुझ पर असीम दया है। इसका बदला मैं किसी प्रकार कुछ भी देकर नहीं चुका सकती। मेरे पास है ही क्या ? एक हृदय था, वह मैं पहले ही सेवा में अर्पण कर चुकी हूँ। अब मेरा अपना कुछ नहीं है। जब मैं ही तुम्हारी हो चुकी, तब मेरा सब कुछ तुम्हारा हो चुका।

ओङ्कार कुमारी की मीठी-मीठी बातें सुनते-सुनते उसकी गोद में लेट गया। उसकी पतली-पतली उँगलियों के साथ खेलता हुआ दर्शनीय मुख की छटा और अङ्ग-प्रत्यङ्ग की सुघड़ता निहारने लगा—'रूप की खान है। बातें ऐसी मधुर हैं कि दिन-रात सुनता ही रहूँ। ब्रह्मा ने इसको रचने में कितना समय लिया होगा ?'

कुमारी ने कहा—लोग कहते हैं, वेश्याएँ किसी के हृदय के साथ प्रेम करना नहीं जानतीं, पैसे ही से प्रेम रखती हैं; अपने स्वार्थ के अतिरिक्त उनका प्यार किसी पर नहीं होता। वे मूर्ख बात नहीं समझते। प्यार करने के

लायक़ हृदय मिले भी तो। ऐसे कितने मिलेंगे, जिन्हें अपना मन देकर दूसरे का मन लेना मालूम है? मुझे प्यार करना आता है। एक को प्यार करने भी लगी हूँ। सच कहती हूँ, तुम्हारे मुख के सलोनेपन के साथ ही साथ मैंने तुम्हारा हृदय भी परख लिया है। अब मैं केवल तुम्हीं को चाहती हूँ। मेरे पास इतना धन है कि मैं उससे शहर के कई नामी रईसों को मोल ले सकती हूँ। मुझे धन नहीं चाहिए। बस, तुम मेरे होकर रहो, यही मेरी आन्तरिक इच्छा है। परमेश्वर ने हृदय खोल कर दिखाने का कोई उपाय नहीं बनाया; नहीं तो मैं अपनी सत्यता सहज ही साबित कर देती।
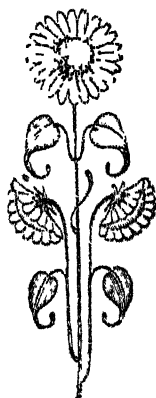
चिन्ता में चूर बैठी हुई देवी को कहीं तीन बजने के पश्चात् ओङ्कार के आने की आहट मिली। तुरन्त ही उसने अपने मुख की उदासीनता को छिपा लेना चाहा। प्रसन्न-मुख से पति से मिलने के लिए तैयार होना चाहा। पर कुछ ही देर बाद उसने देखा कि उसकी यह चेष्टा बिलकुल विफल है। दुःख को दबाना उसने सीखा ही न था। पिता के लाड़-प्यार से पली थी। कोई कहने-सुनने वाला न था। पति के पास भी उसे अब तक किसी प्रकार की चिन्ता का सामना नहीं करना पड़ा था। एकदम सुख में रहने के कारण वह अभिमानिनी हो गई थी, किसी की एक न चलने देती थी। सदैव अपने मन का काम किया करती थी। अपने विरुद्ध चलने वाले पर वह बेतरह बिगड़ पड़ती थी। उसी स्वभाव से प्रेरित होने के कारण अब भी उसके मुख पर

क्रोध के चिह्न प्रकट हो ही गए। ओङ्कार के भीतर आते ही उसने रुखाई से पूछा—मित्र से मिल आए न?

ओङ्कार पत्नी के मन के सन्देह को जान गया। संक्षेप से उत्तर दिया—हाँ।

वह इस बात के रुख़ को बदलना चाहता था; पर देवी सहज ही छोड़ देना पसन्द न करती थी। फिर उसने पूछा—बड़ी देर लगाई?

ओङ्कार—यह तो साधारण बात है। बहुत दिनों से भेंट नहीं हुई थी। अब की बार मिलने पर उन्होंने मुझे जल्दी नहीं आने दिया। आने को हुआ तो कहने लगे, बैठो जल्दी क्या है? कुछ जलपान करके तब जाना। बाज़ार से मिठाई मँगवाई गई। मिठाई खाने के बाद बहुत देर तक बातें होती रहीं। अब छोड़ा है। शाम को फिर स्टेशन तक पहुँचाने जाना पड़ेगा।

देवी—अच्छा! वहाँ खाना-पीना भी हुआ था?

देवी के मुँह से ये शब्द बहुत जल्दी-जल्दी निकल गए। आँखें तन गईं। ललाट सिकुड़ गया।

ओङ्कार ने कहा—जब अनुरोध किया, तब खाना ही पड़ा। बच ही कैसे सकता था? दुःख तो इस बात का है कि खिलाना मुझे चाहिए था और यह उन्होंने किया।

देवी ने कुछ गम्भीर बन कर कहा—ठीक है, मित्र का

अनुरोध नहीं टल सकता। क्या मैं तुम्हारे उन मित्र का नाम जान सकती हूँ? वह कौन सा शुभ नाम है?

वाक्-पटु ओङ्कार को इस प्रश्न के उत्तर देने में कुछ दुविधा जान पड़ी। एक ही सेकिण्ड में क़रीब डेढ़ दर्जन नामों पर विचार दौड़ गया! कौन सा कहूँ? फिर जल्दी से बोल उठा—वही सुन्दरलाल तो हैं।

देवी—सुन्दर भैया?

ओङ्कार—हाँ, वही आए हैं। उन्हें यहाँ तक लाने की मैंने बहुत कोशिश की। पर कहने लगे, अभी कई कामों की झञ्झटों में फँसा हूँ। लौटती बार ज़रूर आऊँगा।

देवी—कहाँ जा रहे हैं?

ओङ्कार—कलकत्ते जाने को कहते थे।

देवी—झूठे कहीं के! सुन्दर भैया होते तो यहीं आकर न ठहरते? तुम्हारे साथ गप्पें लड़ाने की उन्हें फ़ुरसत थी; यहाँ आने के समय कामों की झञ्झटें पड़ गईं; क्यों?

ओङ्कार—यह सब मैं क्या जानूँ?

देवी—गऊ हो न, क्या जानो! झूठ बोलना भर आया है। अजी हज़ार काम रहते हुए भी वह यहाँ तक आकर मुझे बिना देखे जाने वाले जीव नहीं हैं।

ओङ्कार—तुम मानती ही नहीं तो क्या करूँ?

देवी—मानूँ कैसे? सरासर झूठ बोल रहे हो।

ओङ्कार—अपनी सत्यता प्रमाणित करने के लिए मेरे पास कोई प्रमाण नहीं है !

देवी—क्यों, वह पत्र तो है, जो सवेरे उन्होंने उस लड़के के हाथ भेजा था। मैं उनके अक्षर पहचानती हूँ। लाओ, देखूँ।

ओङ्कार—वह तो खो गया।

देवी—ऐं ! खो गया ? इतनी जल्दी खो गया ? ठहरो मैं ढूँढ़ निकालती हूँ।

देवी ओङ्कार के जेब की ओर हाथ बढ़ाती हुई दो पग आगे बढ़ी। ओङ्कार पीछे हट गया और तीखी नज़र से देवी को ताक कर कहा—आज तुम्हें क्या हो गया है ? मुझ पर इतना अविश्वास क्यों करती हो ? पहले कभी ऐसा नहीं किया था। यह बिलकुल नई बात है।

देवी रुक कर बोली—तुमने पहले कभी इस तरह की बहानेबाज़ी नहीं की थी।

ओङ्कार दृढ़तापूर्वक बोला—तो क्या आज मैं बहाना बना रहा हूँ ?

देवी—हाँ, ज़रूर। क्या तुम इस बात को नहीं जानते ?

ओङ्कार—मैं तो अपनी समझ में सच ही कह रहा हूँ।

देवी—तुम्हारी समझ में तो झूठ भी सच है। अच्छा, यदि सच्चे हो तो जेब दिखाने में क्यों हिचकते हो ?

ओङ्कार—क्या तुम मेरा इस तरह अपमान करना चाहती हो ?

देवी—इसमें क्या अपमान ? मेरी शङ्का दूर कर दो।

ओङ्कार—मैं इस तरह खानातलाशी देकर तुम्हारी शङ्का दूर करने में असमर्थ हूँ।

देवी—जब तुम्हारी बातों में कोई सत्यता ही नहीं है, तब इस तरह की बातें करोगे ही। तुम अपनी सत्यता नहीं प्रमाणित कर सकते; पर मेरे पास तुम्हारे झूठे होने का प्रमाण मौजूद है।

ओङ्कार—क्या ?

देवी दौड़ कर टेबिल पर रक्खी हुई किसी पुस्तक के बीच में से तार का एक काग़ज़ ले आई। उसे ओङ्कार को देते हुए बोली—देखो, यह तार कहाँ से आया ? इसे पढ़ो तो।

तार पढ़कर ओङ्कार बहुत लज्जित हो गया। उसका झूठ छिप न सका। अब भाग निकलने की कोई राह न रही। बुरी तरह फँस गया।

देवी—ख़ूब अच्छी तरह पढ़ लो। यह सुन्दर भैया का ही भेजा हुआ है न ? उन्होंने कारणवश अपने लाहौर जाने की बात लिखी है। तार पोस्टऑफ़िस में ग्यारह बज कर पाँच मिनट पर लिया गया है। मुझे यहाँ क़रीब साढ़े बारह बजे मिला है। वह सबेरे ही यहाँ कैसे आ टपके ? मुझसे न छिपाओ। मैं तुम्हारा सब हाल जानती हूँ, किस मित्र के

पास गए थे और अब तक कहाँ रहे ? उसी राँड़ ने, जो कल यहाँ आकर अपनी चटक-मटक दिखा गई है, तुम्हें अपने फन्दे में फाँसा है। मैं पहले ही से कह रही थी, किसी वाराङ्गना को यहाँ न बुलाओ। तुमने मेरी एक न सुनी। आखिर बहक ही गए।

अब ओङ्कार को देवी की अग्नि-मूर्ति के सामने एक क्षण के लिए भी ठहरने का साहस नहीं हुआ। वह उलटे पाँव बाहर के कमरे में चला गया। बिना कपड़े उतारे ही कुछ देर तक कुर्सी पर मुँह लटकाए बैठा रहा। फिर एका-एक उठ खड़ा हुआ और छड़ी घुमाते हुए घर के बाहर निकल गया।

देवी पास के कोने तक जाकर धम से गिर पड़ी। घुटनों के बीच में मुँह छिपाकर रोने लगी। आज तक उसकी आँखों से पानी की बहुत थोड़ी बूँदें निकली थीं। जब कभी हँसते-हँसते बेहाल हो जाया करती थी, तब दो-चार बूँदें टपक पड़ती थीं। शोक की अपेक्षा हर्ष में बहुत कम पानी निकला करता है। न जाने कब से रुके हुए सोते का मुँह आज मानसिक कष्ट के धक्के से बिलकुल खुल गया। बड़े वेग से अश्रु-धाराएँ बहने लगीं। बहुत देर तक वह रोती रही।

अचानक जीवन आकर सामने खड़ा हो गया। कहने लगा—बाई! क्या बात है? आज इस तरह क्यों रो रही हो?

देवी अपनी लाल आँखों से उसकी ओर देखती हुई गीले आँचल से आँसू पोछने लगी।

जीवन—मैं मालिक के सामने का बड़ा पुराना और विश्वासी नौकर हूँ। बूढ़ा हो गया हूँ; फिर भी तुम लोगों को छोड़ने का जी नहीं चाहता। वह मुझे बहुत मानते थे। कभी मैंने उनके साथ किसी तरह का विश्वासघात नहीं किया। तुम लोगों की भलाई करने के लिए मैं हर समय तैयार रहता हूँ। मुझसे अपने दुःख का कारण निस्सङ्कोच होकर कह दो। जहाँ तक बन सकेगा, मैं उसके दूर करने का उपाय करूँगा। कुछ उठा न रक्खूँगा।

कृतज्ञता से देवी का जी भर आया। आँखों में कुछ सफ़ेदी आ गई। धीरे-धीरे उसने कहना आरम्भ किया—जीवन, अब मेरे ससुर नहीं रहे। उनके अभाव में मैं तुम्हीं को अपना पिता समझती हूँ।

जीवन—तुम्हें रोते देखकर मेरा मन न जाने कैसा हो गया है। जल्दी कहो, तुम्हारी मैं कौन सी भलाई कर सकता हूँ? अभी बाबू जी का मैंने कुछ नया ढङ्ग देखा था।

देवी—तुम्हारी दया पर मुझे पूरा भरोसा है; इसी से जी खोल कर अपने मन की व्यथा कहती हूँ।

जीवन—कहो। मैं तुमसे कभी विमुख हुआ हूँ?

देवी—कल जो गाने वाली आई थी, उसे तो जानते ही होगे?

जीवन—जानता हूँ।

देवी—मैंने उन्हें कितना मना किया था। वह नहीं माने, उसे बुलाया ही। तुमको तो सब मालूम है।

जीवन—मालूम है। इससे तुम्हारा क्या मतलब है? मेरी समझ में नहीं आया।

देवी—वही तो मेरी आफ़त हो रही है। उसी के पीछे वह पड़ गए हैं। अभी थोड़ी ही देर हुई, इसी बात पर मुझसे-उनसे बहुत कहा-सुनी हो चुकी है।

जीवन चौंक पड़ा। बोला—अरे! यह ग़जब हो गया!

देवी—ऐसे ही लक्षण दीखते हैं।

जीवन ने देवी को प्रबोध करते हुए कहा—धीरज धरो। घबड़ाओ नहीं। मैं उनको समझाऊँगा। बूढ़े की बात वह अवश्य मानेंगे। मेरा कुछ न कुछ ख्याल जरूर करेंगे। जहाँ तक मुझे विश्वास है, वह मेरे कहने को नहीं टालेंगे।

देवी—ईश्वर करे तुम और सौ वर्ष तक जियो। जब तक मैं जिन्दा रहूँ, मेरी सँभाल करते रहो। तुम्हीं मेरा सहारा हो। मेरे दुःख-सुख की खबर लेने वाला और कौन है?

जीवन ने हँसते हुए कहा—डरो नहीं। मैं जल्दी नहीं मरूँगा। अभी तो बाल पकने शुरू ही हुए हैं।

जीवन चला गया, और अपने साथ देवी का आधा दुःख भी ले गया।

कुमारी को देखने के पश्चात् का देवी पर रहा-सहा आकर्षण भी अब ओङ्कार से अलग हो गया। उसका सारा ध्यान कुमारी ही पर जा लगा। निज गृह में मन पर आई हुई अशान्ति को दूर करने का एकमात्र स्थान कुमारी का क्रीड़ास्थल ही उपयुक्त समझा गया। वह अपने अव्यर्थ मन्त्र के प्रभाव से इस पीड़ा को अवश्य मिटा देने में समर्थ होगी। ऐसा ही हाल था, जैसे कोई अपनी थकान को दूर करने के लिए शराब पीता हो।

दरवाज़े पर पहुँचते ही उसी लड़के पर दृष्टि पड़ी। वह ओङ्कार को देख कर हँसने लगा और हट कर एक तरफ़ हो रहा। ओङ्कार खटपट सीढ़ियाँ पार करता हुआ ऊपर कुमारी के कमरे में जा पहुँचा। वह हाथ का ढासना लगा पलङ्ग पर पड़ी थी। आँखें अधखुली थीं। आहट मिली, कुछ झिझकी, उठी नहीं; उसी तरह लेटी रही। किसी चिन्ता में

लीन थी। मुख को और चिन्तायुक्त बना लिया। ओङ्कार पास आकर ठिठक गया। कैसी अनुपम छवि है! एकटक नयनों से कई क्षणों तक उसे निहारता रहा। अन्त में प्रेम, प्रार्थना और नम्रता टपकते हुए स्वर से कहा—कुमारी!

वह चौंकी और शीघ्रता से उठ बैठी। बड़ी-बड़ी आँखों को और भी फैलाते हुए ओङ्कार की ओर देख कर कहा—तुम आगए? मैं सोचती थी, अब आज दर्शन दुर्लभ हैं।

ओङ्कार मुस्कराने लगा। कहा—तुम्हारे बिना मैं रह कैसे सकता हूँ?

कुमारी—कुछ अच्छा नहीं मालूम देता था। थोड़ी ही देर की जुदाई में मैं मछली की तरह तड़पने लगी थी। प्यारे, क्या कोई ऐसा उपाय नहीं है, जिससे मैं तुमसे एक क्षण के लिए भी अलग न होऊँ?

ओङ्कार उस मनोमुग्धकारी प्रतिमा को खड़ा देखता रहा। कुमारी की बातें अनजाने में उसके कर्ण-कुहर में प्रवेश कर गईं। मुँह नहीं खुला। मन ने उत्तर में कहा—क्या अच्छा हो, यदि ऐसा हो जाय।

कुमारी ने ओङ्कार को खड़े देख कर कहा—हैं! खड़े क्यों हो? बैठ जाओ। वह आराम-कुर्सी खींच लो। यह तो तुम्हारा ही घर है। अब तुम्हीं इसके मालिक हो। मैं तुम्हारी दासी हूँ।

ओङ्कार ने कुर्सी पर बैठते हुए माथे पर हाथ रख कर कहा—तबीयत कुछ ख़राब है। सिर दर्द कर रहा है।

कुमारी—सिर दर्द करता है? दवा दूँ, लगा लो।

ओङ्कार—दवा नहीं चाहिए। एक ऐसी बात हो गई है कि कहते नहीं बनती।

कुमारी—क्या है? कहो!

ओङ्कार—मेरी स्त्री को, मालूम नहीं कैसे, तुम्हारे साथ मेरे मेल-मिलाप की बात मालूम हो गई है।

कुमारी—यह तो बुरा हुआ। फिर भी कोई ज्यादा हर्ज नहीं; एक दिन तो यह होता ही।

ओङ्कार—होता सही, पर यह बहुत जल्दी होगया।

कुमारी—जल्दी हो गया सो अच्छा ही हुआ; नहीं तो हर समय खटका बना रहता।

ओङ्कार—तुम बड़ी निष्ठुर हो।

कुमारी ने प्रेम जतलाते हुए दोनों हाथ प्रेमी के गले में डाल कर कहा—नहीं प्यारे, ऐसा न कहो। मैं निष्ठुर कैसे हुई? थोड़े ही दिनों में तुम्हारी स्त्री के मन की बात ढीली पड़ जायगी। हम दोनों तब आनन्द से मिला करेंगे।

इस तरह दो कमल-नाल गले में पड़ने से और कुमारी की सुगन्धित श्वास गाल में लगने से ओङ्कार को रोमाञ्च हो आया। पुलकित होकर बोला—प्रिये, सच कहता हूँ, मेरी स्त्री तुमसे कुछ कम सुन्दर नहीं है। उसकी आँखों से

भी ऐसी ही ज्योति निकलती है। उसके शरीर के अवयव तुम्हारे-जैसे ही सुघड़ हैं। पर तुम्हारी भाव-भङ्गी में अनोखापन है। तुम्हारी बातचीत में नवीनता है। इससे मैं अपने मन को नहीं रोक सकता। सचमुच ही मैं तुम्हें बहुत चाहने लगा हूँ।

कुमारी—मैंने भी अभी तक तुम्हारे सिवा किसी को अपना मन नहीं दिया है।

ओङ्कार ने प्यार से अपने से लिपटी हुई बाहु-लताओं को कसकर पकड़ लिया। कहा—कुमारी!

कुमारी—हाँ प्यारे!

ओङ्कार—हम-तुम दोनों गङ्गा किनारे किसी कुञ्ज में बैठ कर तसवीर उतरवावें तो कैसा हो?

कुमारी—क्या मेरी तसवीर तुम्हारे हृदय में नहीं है, जो ऐसा कहते हो?

ओङ्कार—है क्यों नहीं?

कुमारी—तब?

ओङ्कार—अगर उतरवा ही लें तो क्या हर्ज है? मेरा मन होता है।

कुमारी—जैसी तुम्हारी इच्छा।

और बहुत तरह की प्रेमपूर्ण बातें करने के पश्चात् ओङ्कार घर आया। जीवन को बुला कर कहा—तुम उसको जानते हो न?

जीवन—किसको ?

ओङ्कार—उसी को। अरे, मैं भूला जाता हूँ। वही तो। हाँ, उस फ़ोटोग्राफ़र को जानते हो न ?

जीवन—किस फ़ोटोग्राफ़र की बात आप कह रहे हैं ? कानपुर शहर में बहुत से फ़ोटोग्राफ़र हैं।

ओङ्कार—मैं उसी की बात कह रहा हूँ। हाँ—वही, जो मूलगञ्ज में रहता है। अच्छा-सा नाम है—ठीक, हरिश्चन्द्र।

जीवन—हाँ, मैं हरिश्चन्द्र फ़ोटोग्राफ़र को जानता हूँ। वह अपने हुनर में पक्का है।

ओङ्कार—जाओ, बुला लाओ।

जीवन जाता-जाता ठहर गया। खड़ा होकर कुछ सोचने लगा।

ओङ्कार ने पूछा—क्या है ? क्या सोच रहे हो ?

जीवन—मैं आपसे एक बात कहना चाहता हूँ।

ओङ्कार—कहो।

जीवन—देखिए बाबू जी, मैं आपके घर का पुराना नौकर हूँ। हमेशा से इस घर की भलाई चाहता आया हूँ। इस समय भी जो कहूँगा, आपके हित के लिए ही। बिना सोचे-समझे ही मुझ पर नाराज़ न होने लगिएगा। मेरी बात को तुच्छ भी न समझिएगा। उस पर ध्यान देकर विचार करिएगा।

ओङ्कार ने सशङ्कित होकर कहा—कहो तो क्या है? मैं तुम्हारी बातें कुछ-कुछ समझ रहा हूँ।

जीवन—इस समय मेरी उम्र सत्तर वर्ष की होने आती है। मैं सारा ज़माना देखे बैठा हूँ। लोगों की सूरत देखते ही उनकी नस-नस टटोल लेता हूँ। मुझमें उड़ती चिड़िया पहचान लेने की शक्ति है।

ओङ्कार कुछ खीझ कर बोला—क्या कहना चाहते हो, कुछ कहो भी तो।

जीवन—आपके बड़ों की कीर्त्ति में कभी किसी तरह का धब्बा नहीं लगा। किसी को उँगली उठा कर यह कहने का साहस नहीं हुआ कि अमुक ने अमुक प्रकार का ख़राब काम किया है। उनका चरित्र सदा उज्ज्वल रहा है।

ओङ्कार—हाँ, आगे कहो।

जीवन—मैं चाहता हूँ कि आप भी उन्हीं की तरह अच्छे और सदाचारी बने रहें। किसी तरह की बुराई में न फँसें।

ओङ्कार—तुमने मुझमें कौन-सा दोष देखा है?

जीवन—आप ख़ुद देख-भाल कर सचेत हो जाइए। मुझसे क्या पूछते हैं?

ओङ्कार ने अनजान बन कर कहा—तुम्हारा असल मतलब क्या है? जान पड़ता है, किसी ने तुमसे मेरे बारे में कोई झूठी शिकायत कर दी है।

जीवन—इशारा मैंने कर दिया है। आप समझदार हैं। बात की तह तक पहुँच जाइए। और जो आप शिकायत की बात करते हैं, सो निरी शिकायत ही नहीं है—मुझे उस पर पूरा विश्वास है। अभी बाज़ार से आते समय मैंने आपको देखा था। आप × × ×।

जीवन कहते-कहते रुक गया। ओङ्कार कुछ नहीं बोला। उसके मुख पर न तो किसी तरह की उदासी थी और न किसी तरह की चञ्चलता। जान पड़ता था, उसने जीवन की बातें सुनीं ही नहीं।

जीवन ने फिर कहा—मैं आपको कुछ अधिक कह कर दुःखित नहीं करना चाहता। कहना सिर्फ़ यही है कि आप सँभल जाइए। जिस राह से जा रहे हैं, उसमें भलाई नहीं है। तुरन्त ही पीछे लौट पड़िए। सब बातें मैं सच्ची और काँटे पर तुली हुई कहता हूँ। उनमें ज़रा भी फ़र्क़ नहीं पड़ने पाता। यह भी वैसी ही है। अच्छा, अब जाता हूँ। मेरी शिक्षा या विनती पर विचार कीजिए। ईश्वर आपका भला करे।

ओङ्कार ने सिर उठा कर कहा—उससे कह देना कि अपने साथ कुछ फ़ोटो नमूने के तौर पर लेता आवे।

जीवन—बहुत अच्छा!

क़रीब एक घण्टे में जीवन ने लौट कर कहा—हरिश्चन्द्र कहीं बाहर गए हुए हैं। उनके भाई मिले हैं। उन्हीं को लिवा लाया हूँ।

ओङ्कार—कहाँ है ?

जीवन—बाहर हैं।

ओङ्कार—भेज दो।

हरिश्चन्द्र के भाई ने सामने आकर बन्दगी की और एक बेञ्च पर बैठ गया।

ओङ्कार ने पूछा—तुम्हारा क्या नाम है ?

वह—जी, मेरा नाम रामलाल है !

ओङ्कार—तुम हरिश्चन्द्र के भाई हो न ?

रामलाल—जी हाँ, मैं उनका भाई हूँ।

ओङ्कार—हरिश्चन्द्र कहाँ हैं ?

रामलाल—कई हफ़्तों से वह कुछ अस्वस्थ रहा करते थे। डॉक्टर की राय से पश्चिम की तरफ़ गए हुए हैं।

ओङ्कार—फ़सली बुख़ार रहा होगा ?

रामलाल—जी नहीं, उनको क्षयी का रोग हो गया था।

ओङ्कार—क्षयी का रोग तो बड़ा बुरा होता है।

रामलाल—भोजन तो इतना थोड़ा करते थे, जैसे कोई बच्चा हो। दिन में एक बार बिना क़ै हुए नहीं रहती थी।

ओङ्कार—फ़ोटो लेना तो अच्छी तरह जानते होगे ?

रामलाल—ख़ूब अच्छी तरह। कलकत्ते में यही काम करता रहा हूँ। अभी यहाँ पाँच-सात दिन हुए बड़े भाई की बीमारी का हाल सुन कर आया हूँ। वहाँ के बड़े-बड़े रईस

जरूरत पड़ने पर मुझे ही याद करते हैं। कई नमूने लाया हूँ। कहिए तो दिखाऊँ।

ओङ्कार—हाँ-हाँ, दिखाओ।

रामलाल ने फ़ोटो दिखाना शुरू किया। साथ ही प्रशंसा के शब्द भी मुँह से निकलते गए—यह कलकत्ते के बड़े मैजिस्ट्रेट योगेश्वर बाबू हैं। कैसे रोबीले और शानदार जान पड़ते हैं। चेहरे की सफ़ाई में किसी तरह का फ़र्क़ नहीं पड़ने पाया है। और यह 'रामा-फ्लोर-मिल' के प्रोप्राइटर हैं। इनका नाम ज्ञानेन्द्रचन्द्र है। कलकत्ते में यह सबसे ज्यादा धनवान् गिने जाते हैं। फ़ोटो में भी उनकी रईसी साफ़ झलकती है। इधर निगाह डालिए। यह सर स्टेनली के दोनों बच्चों का फ़ोटो है। स्वाभाविकता में थोड़ा भी अन्तर नहीं आया है। इसको देखने से जान पड़ता है, जैसे बच्चे देखने वाले की तरफ़ दौड़ आना ही चाहते हों। यह फ़ोटो मैंने यहीं आकर लिया है। अभी परसों ही की बात है। यह बाबू ईश्वरप्रसाद जी की पत्नी हैं। कैसी लुनाई है! ऐसी ख़ूबसूरत स्त्री मैंने आज तक नहीं देखी। उस दिन जलसे में आपके यहाँ जो कुमारी बाई आई थीं, उनसे यह लाख दर्जे बढ़ कर हैं। ज़रा देर तक बिना पलक मारे देखिए, तसवीर में भी आपको सजीवता का अंश मिलेगा। आँखों के कोर कनपटी तक फटे चले गए हैं। पतले होंठों की लालिमा दिखाने में मैंने कुछ भी कसर नहीं रख छोड़ी।

ऐसा सुन्दर फ़ोटो मैंने कभी नहीं खींचा। इसके बनाने में मेरा मन ख़ूब ही लगा और मैंने इसके पीछे बहुत मिहनत की है।

ओङ्कार के मन में वह बैठ गई। कुमारी उसके सामने तुच्छ जँचने लगी। उसका मन उस समय रसिक भौंरा हो रहा था। किसी भी सुन्दर फूल को देखा कि उसका रस लेने को मन चाहने लगा। मन की गति ही तो है; जिस तरफ़ ढल जाय। कोई सुन्दरता को स्वर्गीय वस्तु मानता है और पवित्र समझ कर उसकी अर्चना करता है। कोई दूसरी ही तरह उसे अपने व्यवहार में लाना चाहता है। रामलाल ने उसके बाद जो फ़ोटो दिखलाए, उनको देखने में ओङ्कार का मन नहीं लगा। वह उसी सुन्दरी के ध्यान में तल्लीन रहा।

रामलाल के जाते समय ओङ्कार ने उससे सब फ़ोटो खरीद लिए और कल दोपहर के बाद आने के लिए कह दिया।

रात को दो बजे तक ओङ्कार तसवीर में अङ्कित उस माधुरी-मूर्त्ति को देखता रहा।

श्वरप्रसाद जानता था कि उसका पिता अन्त समय का टिमटिमाता हुआ दीपक है। कुछ ही देर में बुझ जायगा और तमाम घर में अन्धकार पैदा कर देगा। फिर भी जी नहीं माना। एक ख़ुराक दवा और पिला दी। आशा ही मनुष्य को सच्चे मित्र के समान काम दिया करती है। दवा बड़ी गर्म थी। सारे शरीर से पसीना चुहचुहाने लगा। गला सूख गया। वृद्ध रोगी ने क्षीण स्वर से पानी माँगा। ईश्वरप्रसाद ने पास बैठी हुई अपनी स्त्री चन्द्रा की ओर देखा। चन्द्रा ने सुबाला को गोद से उतार, काँच के गिलास में पानी दिया। ईश्वरप्रसाद ने पिता को उठा कर पानी पिलाया। पानी पीने के बाद फिर लेट कर वृद्ध ने कहा—ईश्वर, वृथा आशा के वश में होकर अब मुझे दवा मत पिलाना। इसके पीने से

मुझे बड़ी तकलीफ़ होती है। अब मैं नहीं बच सकता। मुझे शान्ति से मरने दो। मैं साफ़ देख रहा हूँ कि बहुत दूर पर परमात्मा के दूत मुझे लेने के लिए चले आ रहे हैं। जब वे चल दिए हैं, तब लौटेंगे नहीं।

ईश्वरप्रसाद की आँखें भर आईं। रोते हुए उसने पिता का हाथ पकड़ लिया। कहा—आप यह क्या कह रहे हैं? मुझे इस तरह निराश न कीजिए।

वृद्ध ने कहा—छिः! यह क्या? रोते हो? नन्हे से बच्चे तो हो नहीं। सब कुछ समझते-बूझते हो। संसार का नियम मालूम ही है। जो आया है वह अवश्य जायगा, किसी का पिता सब दिन नहीं जीता। फिर रोना कैसा? जो सदा से होता आया है, वह अब भी होकर रहेगा। रोकर तुम मुझे बचा नहीं सकते।

ईश्वरप्रसाद के मुँह से शब्द नहीं निकले। गीली आँखों से पिता की ओर देखता रह गया। बड़े अनुभवी पुरुष को भी सङ्कट के समय नादान हो जाना पड़ता है।

वृद्ध ने फिर कहा—किसी तरह की चिन्ता मत करो। ख़ूब धन है, दौलत है, मौज करो। तुम तीस वर्ष के हो गए हो। संसार का कार्य अच्छी तरह चला सकते हो। सौभाग्य से सुन्दर स्त्री मिली है। एक कन्या है। इनके साथ आनन्द से रहो। देखो, मेरी याद करके बहुत दिनों तक दुःख न पाना।

सुबाला पाँच वर्ष की थी, कुछ अधिक समझदार नहीं थी। अपनी माँ और बाबू जी को रोते देख कर वह भी माँ की गोद में मुँह छिपा कर आँसू बहाने लगी। वृद्ध ने पुकार कर कहा—सुबाले !

माँ ने उसे उठा कर खड़ा कर दिया। कहा—जाओ, बाबा बुला रहे हैं।

सुबाला धीरे-धीरे बाबा की ओर चली। उसके मन में डर समाया हुआ था। समझती थी, बाबा ही ने कुछ ऐसा किया अथवा कहा है, जिससे माँ और बाबू जी दुखी हो रहे हैं। शायद उससे भी कुछ कहें। पर जब वृद्ध ने उसे बड़े प्रेम से पास बैठा कर पुचकारना आरम्भ किया तब उसकी मति पलट गई। सोचने लगी, कुछ दूसरी ही बात होगी।

थोड़ी देर में रोगी की तबीयत कुछ अच्छी जान पड़ने लगी। वह सुबाला को छाती से टिका कर अपने लिए रखा हुआ साबूदाना उसे खिलाने लगा। सुबाला बालिका-सुलभ चञ्चलता से यहाँ-वहाँ की बातें करने लगी—"कल अनुसूया मुझसे मेरी चित्रों वाली किताब माँगती थी। मैंने नहीं दी। अपनी चीज किसी को क्यों दूँ ? एक दिन मैंने उससे बिल्ली का बच्चा माँगा था, उसने देखने को भी नहीं दिया। बाजार में एक बहुत अच्छा खिलौना देखा है, आज उसे जरूर खरीदूँगी। तुम्हें दिखाऊँगी। देखोगे तो कहोगे। मेरे पास पैसे हैं। ये देखो ! (कुरती में पैसे खनक उठे) उस दिन

मैं बाबू जी के साथ अजायबघर गई थी। वहाँ तो ख़ूब बड़े-बड़े शेर थे, सब कोई डरते थे। रूपा रोने लगी थी। मैं ज़रा भी नहीं डरी। क्यों बाबा, क्या सचमुच शेर आदमी को खा जाता है? सावित्री की बहिन ऐसा ही कहती थी।"

उसी समय ग्वालिन ने बाहर से चिल्ला कर कहा—बाबू जी! दूध।

सुबाला चट पलङ्ग पर से उतर पड़ी। कहने लगी—बाबा, मैं तुम्हारे लिए दूध ले आऊँ? वह ज़ोर से भागी। माँ ने झपट कर पकड़ लिया। कहा—जूठे मुँह कहीं नहीं जाना होता।

माँ ने जल्दी-जल्दी मुँह धोकर पोंछ दिया।

सुबाला बड़ी जल्दी दूध लिए हुए लौट आई। लोटा धरती पर रख कर बोली—कोई आया है, बाबू जी! तुमको पूछता है। बाबा को भी पूछता है।

ईश्वरप्रसाद बाहर गया। जिसको देखा, वह कोई पैंतीस या छत्तीस वर्ष का एक युवक था। चेहरा कुछ परिचित-सा जान पड़ा। ठीक ध्यान में नहीं आया।

आगन्तुक ने हँस कर पूछा—कुशल है?

ईश्वर—सब कुशल ही है।

आगन्तुक—आप मुझे ठीक से नहीं पहचानते होंगे। आपके पिता मुझे अच्छी तरह जानते हैं। सुना है, वह बीमार हैं?

ईश्वर—उन्हें खाट पकड़े एक महीने से ऊपर हो गया। दो-तीन दिन से दशा बहुत ख़राब है।

आगन्तुक—डॉक्टर आता है?

ईश्वर—आता है; पर कुछ फ़ायदा नहीं दीखता।

आगन्तुक—उन्हीं को देखने आया हूँ। जब कभी वे जबलपुर जाते हैं, मेरे ही यहाँ ठहरते हैं। मुझे तो परसों ही उनकी बीमारी की ख़बर लगी है। जानता तो और पहले आता।

ईश्वर—आइए, भीतर चले आइए।

दोनों भीतर गए। चन्दा किसी और के आने की आहट पाकर दूसरे कमरे में चली गई। आगन्तुक ने दौड़ कर वृद्ध के पैर पकड़ लिए। वृद्ध ने उसे देख जल्दी से कहा—कौन? केदारनाथ!

केदारनाथ—हाँ चाचा, मैं ही हूँ।

वृद्ध—कब आए? इस समय तो कोई गाड़ी नहीं आती।

केदार—अभी ही चला आ रहा हूँ। गाड़ी इलाहाबाद के आगे एक स्टेशन पर कई घण्टे ठहर गई थी, इसी से कुसमय में आया हूँ।

वृद्ध—ऐसा क्यों हुआ था?

केदार—अभी कुछ दिन हुए, एक पुल पर से माल-गाड़ी गिर पड़ी थी। वहीं कुछ ख़तरा था।

वृद्ध—रास्ते में कोई तकलीफ़ तो नहीं हुई ?

केदार—नहीं, कुछ नहीं। आपके आशीर्वाद से बड़े आराम से आया हूँ।

वृद्ध ने ईश्वरप्रसाद की ओर देखकर कहा—ईश्वर, ये तुम्हारे बड़े भाई हैं।

दोनों भाई प्रेम से मिले।

फिर वृद्ध ने सुबाला से कहा—सुबाले, तेरे दादा आए हैं।

सुबाला ने यह नया शब्द सुन कर कुछ चकित होकर कहा—दादा !

केदारनाथ ने केला, नारङ्गी और अङ्गूर से भरा हुआ रूमाल सुबाला के सामने खोल कर बिछा दिया। उसने ख़ुश होकर खाने में मन लगा दिया। बीच-बीच में दादा की ओर एक निगाह फेंक देती थी।

दवा देने के कुछ देर बाद नींद अवश्य आती थी, वृद्ध की आँखें झपने लगीं। वह सो गया।

वह सोना फिर अन्तिम सोना हुआ। दूसरी बार आँख खोल कर वृद्ध कभी नहीं सोया। शाम तक नाक खरखराती रही। रात को दस बजे तक लोगों ने उसे सजीव पाया। डॉक्टर आकर कह गया, अभी इनसे बोलो मत। ये बड़ी सुख की नींद में हैं। परमात्मा चाहेगा तो इनका रोग एक-

बारगी ही दूर हो जायगा और यह सब कष्टों से छुटकारा पा जायँगे। डॉक्टर के कथन का गूढ़ मर्म कोई नहीं समझ सका। भगवान् जाने, रात में किस समय वृद्ध का प्राण-पखेरू संसार की माया-ममता त्याग कर आकाश की ओर उड़ गया। सवेरे निर्जीव पञ्जर मिला। हाय-हाय मच गया। पास-पड़ोस की स्त्रियाँ आकर कुहराम मचाने लगीं। बहुत सी रोने में बहुत प्रवीण थीं। चट आँसुओं की धार निकालने लगीं। कई एक जब इसमें कृतकार्य न हो सकीं, तब अञ्चल के छोर से सूखी आँखों को रगड़ने लगीं। यहाँ तक रगड़ा कि खून उतर आया। कुछ लोग ईश्वर-प्रसाद के पास बैठ कर उसे समझाने लगे। बहुत-सी लोक-परलोक की बातों का बखान कर डाला। बहुत सी पुराणों की कथाएँ कहीं, न कोई किसी का बाप है, न कोई किसी का बेटा। सब माया है। कहीं कुछ नहीं है। दुःख करना वृथा है। रोकर कोई मुर्दे को जिन्दा नहीं कर सकता। यदि ऐसा होता हो तो खूब रोओ। हम नहीं मना करेंगे। बीती को भूल जाओ। आगे क्या करोगे, सो देखो। निराश मोह में पड़ना ठीक नहीं है। और भी सैकड़ों तरह से प्रबोध दिया। केदारनाथ बहुत विलाप कर रहा था। जितना ही लोग उसे समझाते थे, उतना ही वह शोक से अधीर हुआ जाता था। अब जीकर मैं क्या करूँगा? मेरे एक चाहने वाले थे, वह चले ही गए। मेरा भी मर जाना अच्छा

है। क्या करूँ क्या न करूँ? विष खा लूँ या पत्थर पर सिर पटक दूँ? पानी में डूब मरना ही अच्छा है। उनके बिना मैं नहीं रह सकता। हे परमात्मा, मुझे भी उठा ले। जान पड़ता था, वह रो-रोकर पागल हो जायगा।

सी तरह दुःख-सुख से ईश्वरप्रसाद का एक महीना बीत गया। समय के साथ ही साथ स्मृति भी दूर होती जाती है। पिता के मरने का शोक कुछ कम हुआ। कदाचित् सृष्टिकर्त्ता ने सृष्टि का सौन्दर्य दुःख, कष्ट और चिन्ताओं में ही समझा है। एक फफोला फूटा ही था कि दूसरा उभर आया। एक दुःख दूर होते न होते दूसरी ऐसी बात हो गई, जिससे ईश्वरप्रसाद का हृदय अत्यन्त क्षुब्ध हो गया। दोपहर ढल चुकी थी। ईश्वरप्रसाद अपने बैठकख़ाने में अकेला सिर झुकाए बैठा था। थोड़ी देर बाद केदारनाथ आ पहुँचा। कुछ देर तक यहाँ-वहाँ की बातें हुईं। मौक़ा पाकर सिलसिले के साथ केदारनाथ ने सब सम्पत्ति के बँटवारे का ज़िक्र छेड़ दिया। ईश्वरप्रसाद अचानक अवाक् हो गया। ऐसी बात के आने की आशङ्का

कभी स्वप्न में भी नहीं की थी। जल्दी से कोई उत्तर नहीं सूझा। मिनटों तक विचार करता रहा। 'क्या इसीलिए यह अब तक इतना घरौआ दिखाता आया है? बड़ी देर के बाद अपने को सँभाल कर गम्भीरता से उसने पूछा—कैसा बँटवारा?

केदारनाथ ने तत्क्षण उत्तर दिया—चाचा अब नहीं रहे। मेरा और आपका रास्ता दूसरा-दूसरा है। एक में रहने से नहीं बन सकता। इसी से मैं चाहता हूँ कि हम लोग धन का अपना-अपना हिस्सा अलग कर लें।

ईश्वरप्रसाद बड़े ध्यान से सुनता रहा। वह समझ नहीं सका कि किस प्रकार इस बात का विरोध किया जाय। अन्त में स्पष्ट शब्दों में बोला—पिता के इस धन पर आपका कोई हक़ नहीं है। इस पर एकमात्र मेरा ही अधिकार है।

केदार ने दृढ़ता से कहा—क्यों, क्या मैं और आप दोनों भाई-भाई नहीं हैं? हिस्सा-बाँट तो किसी प्रकार रुक नहीं सकता। चाचा की सम्पत्ति पर जिस प्रकार आपका अधिकार है, उसी प्रकार मेरा भी।

ईश्वरप्रसाद उत्तेजित हो उठा। स्वर में कुछ तेजी लाकर बोला—कभी नहीं; ऐसा नाता तो अड़ोस-पड़ोस में भी बहुत लग सकता है। बहुत से काका-मामा और भाई-बहनोई निकल आवेंगे। तब क्या उनको भी हिस्सा देना पड़ेगा? क्या जाने, किस तरह आप मेरे भाई होते हैं।

आप हमारे वंश में नहीं हैं। आपको एक पाई भी नहीं मिल सकती।

केदार—मैं नहीं जानता था कि आप अपने मन में मुझे इतना पराया समझ रहे हैं। मैं आपको सगे भाई से भी बढ़कर मानता हूँ।

ईश्वर—अपना धन लुटाने के लिए कोई किसी को अपना नहीं समझ सकता। अभी आप मुझसे नाता जोड़ रहे हैं। यदि मैं कङ्गाल होता तो आप मेरी ओर फूटी आँख से भी न देखते। देखा, मुट्ठी गर्म होगी, पल्ले में कुछ आवेगा, हक़ जमाने आ गए।

केदार—हक़दार न होता तो आपसे कहता ही नहीं। ऐरे-ग़ैरे कभी ऐसा नहीं कर सकते।

ईश्वर—समझता हूँ। सिर्फ़ कहने ही से कोई किसी के माल का मालिक नहीं बन जाता। ऐसा ही होता तो सभी कोई रिश्ते-नातेदार बन कर लूट-पाट मचाने लगते—अन्धेर हो जाता।

केदार—मैं धीरे से समझा कर कहता हूँ। आप झगड़ने पर आमादा हुए जाते हैं। मैं नहीं चाहता कि आपस में रार उठे।

ईश्वर—रार तो आप ही कर रहे हैं। इस तरह दूसरे के अधिकार पर हस्तक्षेप करना क्या रार उठाना नहीं है?

केदार—जान पड़ता है, आप मेरा हिस्सा नहीं देना

चाहते। पर मेरा मेरा ही है, यह अच्छी तरह ध्यान में रखिए।

ईश्वर—आपका कुछ नहीं है।

केदार—है या नहीं, सो मैं सिद्ध कर दूँगा। जब आप झगड़ा करने पर तुले हुए हैं, तब यही सही।

ईश्वर—जिस तरह बने, सिद्ध करिए। सच्चा कभी झूठा नहीं हो सकता। आप हज़ार करें, एक कौड़ी नहीं मिलेगी।

केदार—देखा जायगा।

बखेड़ा बहुत बढ़ गया। केदारनाथ भीतर आकर बेग में अपनी चीज़ें समेट-समेट कर भरने लगा। उसे उठा कर चला। दरवाज़े पर सुबाला खड़ी मिली। उसे इस तरह बाहर जाते देख वह बोली—दादा, कहाँ जाते हो?

केदारनाथ इस छोटी बालिका को, कुछ ही दिनों तक साथ रहने पर भी, बहुत प्यार करने लगा था। उसका भोला सुन्दर मुख उसे बड़ा भला लगता था। मीठी-मीठी बातें बहुत रुचती थीं। ईश्वरप्रसाद के साथ उसका झगड़ा हुआ था, पर इस पर उसका प्रेम-भाव वैसा ही था। सुबाला को गोद में उठाकर थोड़ी देर तक प्यार किया। कई बार उसका मुख चूमा। फिर जल्दी से घर के बाहर निकल गया।

ईश्वरप्रसाद ने चन्दा से अपने और केदारनाथ के बीच में हुई सब बातें सुना दीं। वह बेचारी पति को कुछ सलाह

न दे सकी। फूटे भाग्य को कोस कर आँखों में आँसू भर लाई।

ईश्वरप्रसाद ने कहा—देखती हो, कैसी दुनिया है। कैसे-कैसे आदमी यहाँ रहते हैं?

दोनों ओर से मुक़दमे की तैयारियाँ होने लगीं। बड़े-बड़े वकील और बैरिस्टर खड़े किए गए। फुसला-बहला कर गवाह जुटाए जाने लगे। शहर भर में इस मुक़द्दमे की धूम मच गई। कई हफ़्तों तक लोगों के चर्चा करने का यह मुख्य विषय रहा। जिसके मुँह से सुनो, यही बात निकलती थी। घर-बाहर और गली-कूचे में इसी पर टीका-टिप्पणी होती दिखाई पड़ती थी। खूब ज़ोर-शोर से मुक़दमा चला। हज़ारों रुपए कचहरी देवी की भेंट हुए। दिन-दिन भर दौड़ा-दौड़ लगी रही। अन्त में ईश्वरप्रसाद का पक्ष सबल ठहरा, वह जीत गया। केदारनाथ को कुछ नहीं मिला। मारे शर्म के उसका मुँह नीचा हो गया। पर उसके हृदय में इस अपमान का बदला लेने की एक पक्की गाँठ पड़ गई।
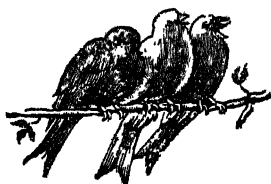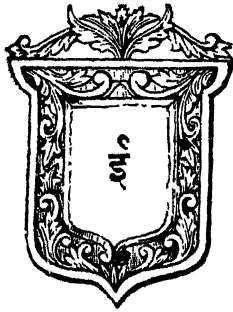
श्वरप्रसाद ने सब झगड़ों से फ़ुरसत पाकर ख़ुशी-ख़ुशी ठेकेदारी का काम आरम्भ कर दिया। उसके कई पुश्त से यही धन्धा चला आ रहा था, इसलिए ईश्वरप्रसाद को कुछ कठिनता नहीं हुई। पिता के साथ रहने से उसे काम की सब बातें मालूम होगई थीं। बहुत से लोग उसे जानते-पहचानते थे। काम सुगमता से चल निकला और कुछ समय तक बड़े मज़े से चलता रहा। जिस काम को हाथ में लिया, उसमें लाभ छोड़ नुक़सान नहीं हुआ। सुख और शान्ति के दिन आए समझ कर मन में बहुत मुदित हुआ, पर यहाँ तो पत्ते की ओट पहाड़ छिपा रहता है। सुख अपने पीछे विपत्ति को छिपा कर तब आता है, नहीं तो उसकी शोभा ही नष्ट हो जाय।

एक बार ईश्वरप्रसाद ने रेलवे-कम्पनी से पुल बनाने

का ठेका लिया। बात डेढ़ लाख में तय हुई। उसने वह काम एक वर्ष के भीतर पूरा कर देने की रसीद लिख दी। पक्की लिखा-पढ़ी हो जाने पर पुल बनना शुरू हो गया। धीरे-धीरे काम चलने पर भी आठ महीने में वह पूरा हो गया। पूरे पच्चीस हज़ार की रक़म बचत में रही। सिर्फ़ एक बात बाक़ी रह गई—इञ्जीनियर आकर उसे पास कर दे। काम मज़बूत और साफ़ बना था। किसी तरह की आशङ्का नहीं थी।

अपनी शक्ति के अनुसार तो मनुष्य सब कुछ करता ही है, पर भाग्य को कोई क्या करे? आठ तारीख़ को इञ्जीनियर आने वाला था। सात की रात ईश्वरप्रसाद के लिए प्रलय की रात हो गई। घनघोर घटा छा गई। मूसलाधार पानी बरसने लगा। डर से काँपते हुए लोग घर के भीतर जा छिपे। बच्चों ने माँ की गोद में शरण ली। बड़े-बूढ़े कहने लगे, हमारी इतनी बड़ी उम्र हो गई, इस तरह का विकट पानी कभी नहीं बरसा। कच्चे मकान गिर कर ढेर हो गए। पक्के मकानों से पानी टपकने लगा। कई पुराने पक्की जड़ वाले वृक्ष उखड़ गए। चार बजे सवेरे तक जल-वृष्टि उसी प्रकार होती रही। सवेरे सुनने में आया, कई गाँव बह गए हैं। वरुण देवता के नैवेद्य में करोड़ों का माल अर्पित हो चुका है। कई जानें होम हो गई हैं। जल-पान करके ईश्वरप्रसाद पुल की हालत देखने को घर से

बाहर निकला। लोग सकपकाए-से आगे-पीछे और दाहने-बाएँ देख रहे थे। प्रकृति ने कई घण्टे के अनवरत परिश्रम के पश्चात् क्लान्ति से शान्ति-रूप धारण कर लिया था। ईश्वरप्रसाद अपनी करुण दृष्टि यहाँ-वहाँ फेंकता हुआ आगे बढ़ा। चलते-चलते अपने निर्दिष्ट स्थान पर जा पहुँचा! वहाँ पहुँच कर देखता क्या है कि वह छोटा सा नाला एक बड़ी नदी बन गया है। ऊँची-नीची ज़मीन को उसने अपने फेनदार मैले पानी से छिपा लिया है! पुल का कहीं पता नहीं है। जैसे किसी ने सिर पर घड़ों ठण्ढा पानी उड़ेल दिया हो, वह ठिठुर कर रह गया। पैर-तले की मिट्टी खिसक गई।

ईश्वरप्रसाद की सारी आशा मिट्टी में मिल गई। उसे बड़ा भारी धक्का पहुँचा। इतने पर भी उसने अपनी मान-मर्यादा के ख़याल से और अपने धन्धे को चलतू बनाए रखने के विचार से काम में दुबारा हाथ लगा दिया। बड़े प्रयत्न और अपनी विपत्ति-गाथा रोने के पश्चात् उसे तीन महीने का समय और मिला। वे तीनों महीने बरसात में निकल गए। अब आठ महीने का काम चार महीने में पूरा करना था। मन में साहस किया। जी-जान से जुट गया। मज़दूरों की संख्या बढ़ा दी। ख़ुद दिनभर छाता लगाए यहाँ से वहाँ घूमता फिरता। फुर्ती करने के लिए बारम्बार लोगों को ताकीद करता। तमाम शरीर पसीने से

सराबोर हो जाता था, तब भी ज़रा देर के लिए दम न लेता। कहीं लोग ढिलाई न करें, किसी को चिलम-तम्बाकू पीने के लिए भी दो मिनट की छुट्टी न मिलती थी। बस, काम करो। एकदम काम में ही ध्यान लगाओ।

शाम को थका-माँदा जब ईश्वरप्रसाद घर आता, चन्दा कहती—भाड़ में जाय ऐसा रोज़गार। आराम करने की कौन कहे, इसमें तो खाने-पीने की भी फ़ुरसत नहीं मिलती। सवेरे से गए-गए शाम को कहीं दिया-बत्ती के बाद घर आना होता है। दोपहर को सब एक घण्टे के लिए विश्राम लेते हैं। तुमको वह भी नसीब नहीं। यह भी कोई धन्धा है! बैल के समान कोल्हू में नधा रहना पड़ता है।

ईश्वरप्रसाद स्त्री को समझा कर कहता—थोड़े ही दिनों की और कसर है, फिर यह कुछ न होगा।

चन्दा ने एक दिन फिर कहा—मुझसे तुम्हारी यह शरीर-तोड़ मिहनत नहीं देखी जाती। वहाँ कई देख-रेख करने वाले तो हैं। वे ही सब कर लेंगे। तुम्हारे मौजूद रहने की ऐसी कौन सी ज्यादा ज़रूरत है?

ईश्वर—बिना अपने मरे स्वर्ग नहीं मिलता। मैं वहाँ न जाऊँ, तो एक दिन का काम चार दिन में हो। क्षण भर में सब यहाँ का वहाँ हो जाय। देख-रेख करने वाले ख़ुद ही जहाँ-तहाँ खिसक जायँ। कोई लेटा है तो कोई गप्पें लड़ा

रहा है। कोई अपने बच्चे को ही खिला रहा है। तब समय के भीतर कैसे काम हो सकेगा ?

चन्दा—कब तक काम पूरा हो जाना चाहिए ?

ईश्वर—माघ तक।

चन्दा—माघ तक न पूरा हुआ, तब क्या होगा ?

ईश्वर—कम्पनी हर्जाना वसूल कर सकती है।

चन्दा—हर्जाना कितना होगा ?

ईश्वर—इसका कुछ ठीक नहीं है, जितना हो जाय। माघ का महीना बीत जाने पर जितने दिन अधिक लगेंगे, उतना ही वह अधिक होगा।

चन्दा—कहाँ तक बढ़ सकता है ?

ईश्वर—हज़ार, दो हज़ार, दस हज़ार।

चन्दा—लाख, दो लाख।

ईश्वर—क्या हुआ ?

चन्दा—वाह ! डेढ़ लाख का तो ठेका है। दो लाख हर्जाना कैसे लग जायगा ?

ईश्वर—एक पैसे के पीछे सैकड़ों रुपए बिगड़ जाया करते हैं।

चन्दा—तब तो ख़ैरियत नहीं दीखती। घर-बार बिकने की नौबत आती मालूम पड़ती है।

ईश्वर—नहीं, ऐसी कोई डर की बात नहीं है। देखती तो हो, किस तरह तन-मन से लगा हुआ हूँ।

चन्दा—हाँ, सो तो है।

ईश्वर—पर नुक़सान जरूर होगा।

चन्दा—इसमें क्या शक है?

ईश्वर—पानी में सब सामान तित्तर-बित्तर हो गया था। कुछ मिला, बहुत-सा नहीं मिला। इसके सिवा काम करने वालों को उनकी मजदूरी भी गाँठ से देनी पड़ेगी।

चन्दा—जब से उस चाण्डाल केदारनाथ का पैर इस घर में पड़ा है, तब से इसकी कुछ भलाई नहीं होती। आफ़त पर आफ़त गिरती जाती है। मणि उठाते-उठाते सर्प हो जाता है। बुरा हो जाय उसका!

ईश्वरप्रसाद ने कान पर हाथ रखकर कहा—राम-राम! हमें किसी का बुरा न सोचना चाहिए। परमेश्वर सब देखता है। वह सब ठीक कर लेगा।

चन्दा—कब से तो परमेश्वर देख रहा है।

ईश्वर—कभी न कभी हमारे दिन फिरेंगे ही।

बहुत परिश्रम करने पर भी काम नियत समय के भीतर पूरा न हो सका, एक महीना अधिक बीत गया। अच्छा काम, ईश्वरप्रसाद की उसमें अविराम तत्परता, आकस्मिक दुर्घटना आदि का विचार करने पर कम्पनी की ओर से हर्जाना माफ़ कर दिया गया। तिस पर भी ईश्वरप्रसाद को एक लाख से कम का घाटा नहीं सहना पड़ा। वैसे तो देखने में वह कई लाख का आदमी जान पड़ता था, पर एक लाख

के निकल जाने से ही सब उजड़-सा गया। सोने का घर मिट्टी दीखने लगा। सारा वैभव जाता रहा। ईश्वरप्रसाद अब मामूली आदमी रह गया।

मनुष्य का भी कैसा अनोखा स्वभाव है। जिस चीज़ को वह चाहता है, उसका दूसरे के हाथ में रहना नहीं देख सकता। यदि मैं ही उसके सुख का उपभोग नहीं कर सकता, तो वह दूसरा ही क्यों करे? केदारनाथ ने यह समाचार सुना तो उसके दिल की दाह मिट गई। ख़ूब अघाकर उसने साँस ली। प्रसन्नता सीमा के बाहर हो गई। मन ही मन कहा—अब कहीं जाकर मेरे मन को शान्ति मिली है।
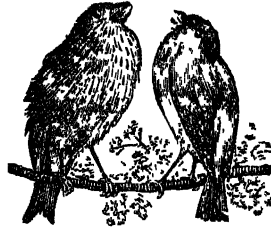
क दिन चन्दा अपने दुर्भाग्य पर बैठी रो रही थी। सुबाला बाहर कहीं खेलने गई थी। अचानक दरवाजा ठेल कर एक युवती स्त्री धड़धड़ाती हुई भीतर आ पहुँची। चन्दा चौंक पड़ी। उठ खड़ी हुई। तुरन्त ही उसने आने वाली को पहचान लिया। जल्दी से बोल उठी—कौन? मानिक!

मानिक का सुन्दर लाल चेहरा और भी लाल हो रहा था। उस पर उत्तेजना छाई हुई थी। भीषण प्रतिहिंसा की झलक दिखाई पड़ती थी। मुँह से आग की लपट निकालते हुए उसने कहा—हाँ बहिन, मैं ही हूँ।

चन्दा अपनी बहिन की यह विचित्र दशा देखकर अत्यन्त भयभीत हुई। सहमे हुए स्वर में कहा—तुम्हारा मैं यह क्या हाल देख रही हूँ?

मानिक फड़कते हुए होंठों से बोली—मेरा हाल ? मेरा हाल जानना चाहती हो ? अच्छा, कहूँगी। इसीलिए यहाँ आई हूँ।

चन्दा—थोड़ा शान्त हो लो बहिन। मुझे तुम्हें देखकर बड़ा डर मालूम होता है।

मानिक ने अट्टहास करके कहा—डर लगता है ?

चन्दा—तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ। थोड़ा बैठ जाओ। चित्त को स्थिर कर लो।

मानिक—नहीं, डरो नहीं। मैं तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ूँगी। तुम्हें मुझसे डरने का कोई कारण नहीं है। जिन पर मेरा क्रोध है वे दूसरे हैं। और क्या कहा ? स्थिर ? मेरे चित्त की स्थिरता अभी कोसों दूर है। जब तक मैं एक-एक को न देख लूँगी, तब तक स्थिर नहीं हो सकती।

चन्दा समझ नहीं सकी, क्या बात है। अपनी प्यारी बहिन की यह हालत देख कर वह रो पड़ी।

मानिक उसे रोते देखकर उससे लिपट गई। कहा—बहिन, मेरी प्यारी बहिन, रोओ नहीं। लो, मैं शान्त हुई जाती हूँ। अब मेरी तरफ़ देखो। मैं बिलकुल शान्त हूँ। क्या करूँ ? रहा नहीं जाता। तुम्हारी भी यदि मेरी-जैसी अवस्था होती, तो तुम भी अपने मन को न रोक सकतीं। बैठ जाओ। बैठो।

मानिक ने स्वयं बैठकर चन्दा को बैठाया। उसके आँसू

मति भ्रष्ट हो गई थी। दया-माया का नाम न रह गया था। मेरा ब्याह क्या हुआ, कन्या-विक्रय का ख़ासा व्यापार था। चारों ओर दलालों की कैसी धूम मची हुई थी। केदार— उस केदारनाथ—से मैं समझ लूँगी। वह दलालों का मुखिया था। उसी की करनी से मेरे सिर पर विपत्ति आई है।

केदारनाथ का नाम सुन कर चन्दा थरथरा गई। सिर से पैर तक झनझना उठी।

मानिक ने देख लिया। पूछा—बहिन, क्या है? इस तरह क्यों काँप उठीं?

चन्दा ने सावधान होकर कहा—कुछ नहीं, तुम्हारी बातें सुन कर ही ऐसा हुआ है।

मानिक—मेरी बातें सुनकर ऐसा होना असम्भव नहीं, पर इसके साथ ही साथ कुछ दूसरा कारण भी है। कहो, मुझसे किसी तरह का दुराव न रक्खो। मैं एक बड़े भारी काम का अनुष्ठान करने वाली हूँ। उसके होने के साथ ही साथ तुम्हारी सब इच्छाएँ भी पूर्ण होंगी। तुम्हारे सब कष्ट मैं दूर भगा दूँगी। बोलो, क्या बात है?

चन्दा ने आरम्भ से अन्त तक समस्त विपत्ति का संक्षेप में वर्णन कर दिया।

मानिक ने दाँत पीसते हुए कहा—मैं जानती हूँ, केदार-नाथ बड़ा पाजी आदमी है। उसका सब पाजीपन निकाल दूँगी। जितना ही वह लोभी है, उतना ही मैं उसे निराश

कर दूँगी। कहीं पैर रखने का ठौर न मिलेगा। पानी पीने के लिए मिट्टी का सकोरा भी पास न बचेगा।

चन्दा—यह सब क्या बक रही हो?

मानिक ने गम्भीर होकर कहा—क्या तुम समझती हो कि मैं ये सब बातें झक में आकर कह रही हूँ? मुझसे कुछ करते-धरते नहीं बनेगा, ऐसा मत सोचो। मुझे अपने ऊपर पक्का विश्वास है। एक दिन ऐसा ज़रूर आवेगा, जब मैं केदारनाथ से बदला ले चुकूँगी। पिता ने मुझे ठीकरे के समान एक ख़ूसट के ऊपर फेंक दिया था। वह जीते होते तो उनको भी न छोड़ती। और दूसरे कई लोग भी नहीं बचेंगे। मैंने सब बातें विचार ली हैं। कैसे क्या करूँगी, यह भी निश्चित कर लिया है। मेरे काम में कोई रुकावट नहीं पड़ेगी और न कोई रुकावट डाल ही सकता है। जो मेरे बीच में आवेगा, उसको मैं मसल डालूँगी।

मानिक ने अन्त का वाक्य कहते-कहते दोनों हाथ की मुट्ठियाँ कस कर बाँध लीं। फिर उनको ज़ोर से लड़ा दिया।

चन्दा को मानिक की बातों में पागलपन का प्रलाप भले ही जान पड़ा हो, पर इसमें सन्देह नहीं कि उस पर उसका आतङ्क पूरी तौर से बैठ गया। धीरे से उसने कहा—वही कहो। क्या कह रही थीं?

मानिक—हाँ, सुनो। मेरा ब्याह, या जो कुछ उसे कहो,

मेरे रोते-कलपते रहने पर भी, समाप्त हो गया। किसी को मुझ पर दया नहीं आई थी। उसी दिन से मेरे दुःख के दिन आरम्भ हुए। फिर मुझे सुख नहीं मिला। मेरे पति के पास अतुल सम्पत्ति थी। उसे लेकर मैं क्या चाटती ? वह मेरे किस काम की थी ? बूढ़ा बहुत ही निर्बल और रोगी था। उसमें लकड़ी टेक कर चलने की भी शक्ति नहीं थी। तब से पूरे दो वर्ष उसने खाट पर ही बिताए। अन्त तक नहीं उठा। उसको मरे आज तीसरा दिन है !

चन्दा ज़ोर से रो पड़ी। पर मानिक की आँखों में आँसू नहीं आए। उसके मुख का भाव वैसा ही दृढ़ और प्रति-हिंसा-पूर्ण बना रहा।

चन्दा के कुछ देर तक रोकर शान्त हो लेने के बाद मानिक ने फिर कहा—बूढ़े का धन बिलकुल ही वृथा न जायगा। इसके द्वारा मैं अपने दुश्मनों से बदला लूँगी। इसी धन के द्वारा बूढ़ा मुझसे विवाह कर सका था। इसी के रहने से मुझ पर विपत्ति का पहाड़ गिरा था। अब इसी धन से, इसी के द्वारा मैं इस प्रकार की विपत्ति की जड़ खोद फेंकूँगी। काँटा काँटे से ही निकलता है। जितने धनी हैं, कोई भी अत्याचार करने के लिए न रहने पावेगा। सबको लूट लूँगी। फिर इस तरह कोई किसी की लड़की को नहीं खरीद सकेगा। थोड़े ही दिनों के बाद मेरा कहना सच हो जायगा। कामलोलुप, व्यभिचारी और अबोध बालिकाओं का जीवन

नष्ट करने वाले धनी नष्टप्राय हो जायँगे। उनको बिलकुल ही शक्तिहीन करके छोड़ूँगी।

अन्त के कई वाक्य मानिक एक ही साँस में कह गई। ज़ोर से हाँफी चलने लगी। कुछ ठहर कर शान्त हो वह बोली—बहिन, मुझे तुमसे एक प्रार्थना करना है।

चन्दा—कहो।

मानिक—पहले मान लेने का वादा करो, तब कहूँगी।

चन्दा ने बिना किसी हिचकिचाहट के कहा—तुम तो मुझे अच्छी तरह जानती हो। मेरा तुम पर असीम प्यार है। हर समय मैंने तुम्हारी इच्छा पूर्ण की है। अब भी जो कहोगी, उसे मैं ज़रूर करूँगी।

मानिक ने कृतज्ञता से चन्दा की ओर देखकर कहा—बहिन, तुम सच ही मुझ पर बहुत प्यार करती हो। मेरे काम को बिना सुने हुए ही तुमने उसे करने का वचन दे दिया है। पर मैं तुमको कष्ट देने के लिए कोई वैसा कड़ा काम नहीं बताऊँगी। बात यह है कि मेरा पति बहुत धन-वान् था। उसके घर से मैं नौ लाख की जमा ले आई हूँ। इस समय भी वह मेरे पास है। बहुत से नोट और बहु-मूल्य जवाहरात हैं। इनको मैं अपने पास रक्खूँगी। इनके सिवा अभी बहुत बाक़ी बचा है। कई मकान, मोटर, घोड़ा, गाड़ी, बग्घी इत्यादि बहुत सी चीजें हैं। ज़ेवरों से कई सन्दूक़ भरे पड़े हैं। मैं चाहती हूँ, उन सबको तुम ले लो।

यह लो, यह काग़ज़ अपने पास रक्खो। इसमें सब चीज़ें तुमको मिलने की बात लिखी है। लो, सोच-विचार में मत पड़ो।

चन्दा की छाती में जैसे किसी ने ज़ोर से घूँसा मार दिया हो। वह कई पग पीछे हट गई। बोली—नहीं, यह नहीं होगा। मैं दूसरे का धन अपने काम में नहीं लगाना चाहती।

मानिक को चन्दा के ये शब्द असह्य हुए। उसकी पत्थर की आँखों से भी इस समय पानी निकल पड़ा। हिचकियाँ बँध गईं। जैसे-तैसे अटकते हुए बोली—यह क्या बहिन! क्या तुम मुझे दूसरी समझती हो? मैंने कभी ऐसा नहीं सोचा था। हे परमात्मा! क्या मैं किसी की नहीं हूँ? क्या सारा संसार ही मुझसे अलग है? बहिन, मैं तो तुम्हें अपनी समझती हूँ। तुम मुझे पराई कैसे समझने लगीं?

चन्दा को तत्क्षण अपनी भूल मालूम हो गई। आह! मैं अपनी बहिन के साथ अन्याय कर बैठी हूँ। तुरन्त ही वह उसके गले से जाकर लग गई। बोली—बहिन, मुझे क्षमा करो। अपराध हुआ।

मानिक ने आँखें पोंछते हुए पूछा—क्या तुम मेरी प्रार्थना स्वीकार करती हो?

चन्दा—हाँ, स्वीकार करती हूँ। पर तुमको इसके सम्बन्ध में मेरी एक बात माननी पड़ेगी।

मानिक—मानूँगी।

चन्दा—यह कह दो कि इस धन को मैं चाहे जिस तरह से काम में लाऊँ, तुम्हें किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होगी।

मानिक—तुम इसे चाहे जिस तरह से काम में लाओ। यह बात बिलकुल तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है। बस कि और कुछ?

चन्दा—बस।

मानिक के कुछ कहने के पहले ही ईश्वरप्रसाद सुबाला को गोद में लिए हुए आ पहुँचा। मानिक ने आगे बढ़ कर उसे प्रणाम किया। ईश्वरप्रसाद ने उसे देख, प्रसन्न होकर कहा—मानिक, तुम यहाँ कैसे आईं?

मानिक ने ईश्वरप्रसाद की गोद से सुबाला को लेकर कहा—यों ही तुम लोगों को देखने का मन हुआ; चली आई। अच्छे तो हो?

ईश्वर—हाँ, अच्छा हूँ। तुम तो अच्छी हो?

मानिक ने मन की तीव्र वेदना छिपा कर हँसते हुए कहा—देखो न, कैसी हृष्ट-पुष्ट हो गई हूँ।

ईश्वर—हृष्ट-पुष्ट तो नहीं हुईं।

मानिक—दुबली तो नहीं हूँ।

ईश्वर—अब तो कुछ दिनों तक रहोगी?

मानिक—नहीं, कल ही चली जाऊँगी।

ईश्वर—क्यों, इतनी जल्दी ?

मानिक—हाँ, कुछ ऐसा ही काम है।

ईश्वर—तुम्हारी यह आदत ही है कि कम से कम मेरे यहाँ तुम अधिक समय तक कभी नहीं ठहरतीं।

मानिक ने मुस्कराकर कहा—तुम भी तो मेरे यहाँ कभी नहीं आते।

ईश्वरप्रसाद ने भी मुस्कराकर उत्तर दिया—क्या यह उसी का उचित बदला है ?

मानिक—जैसा समझो।

ईश्वर—जान तो ऐसा ही पड़ता है।

बहुत देर तक ईश्वरप्रसाद अपनी साली के साथ हँसता-बोलता रहा। चन्दा अधिक नहीं बोली। वह चकित थी, मानिक किस प्रकार अपने हृदय में इतना बड़ा दुःख छिपा कर इस तरह खुल कर बातें कर रही है। सुबाला बड़ी नट-खट थी। बीच-बीच में बहुत बाधा देती थी। विवश होकर मानिक को बारम्बार उसे चुम्बन का दण्ड देना पड़ता था।
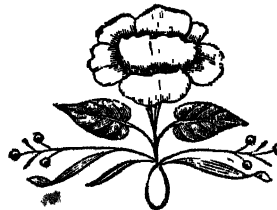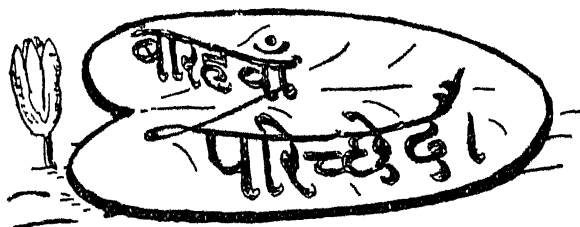
या-बत्ती हो चुकी थी। धुँधलापन फैल गया था। मानिक ने गङ्गा-किनारे टहलते हुए एक मनुष्य से पूछा—क्या यहाँ कोई नाव मिल सकेगी?

उस मनुष्य ने बेपरवाही के साथ उत्तर दिया—वह क्या सामने ही मोटू मल्लाह की झोपड़ी दीखती है।

मानिक झोपड़ी की ओर चली। मोटू दरवाज़े पर ही बैठा हुआ चिलम पी रहा था। मानिक को किसी और से कुछ पूछताँछ करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। सीधे उसके पास जाकर बोली—तुम्हीं मोटू मल्लाह हो न?

मोटू गुड़गुड़ी रख कर खड़ा हो गया। बोला—हाँ, मैं ही मोटू मल्लाह हूँ। कहिए, क्या काम है?

मानिक—मुझे उस पार जाना है?

मोटू—इस समय तो नाव बन्द है। शाम के बाद बिना किसी बड़ी ज़रूरत के मैं कभी नहीं खोलता।

मानिक—तो इस समय नहीं चल सकोगे ? मुझे बड़ी ज़रूरत है।

मोटू—कुछ ज़्यादा इनाम मिलने की आशा हो, तो चाहे जिस समय चल सकता हूँ।

मानिक—कितना चाहते हो ?

मोटू—वैसे तो एक ही आने में खेवा लगा देता हूँ, पर इस समय एक रुपए से कम नहीं लूँगा।

मानिक—मैं पाँच रुपए दूँगी ? चलो।

पाँच रुपए का नाम सुनकर उसे बड़ी ख़ुशी हुई। साथ ही बड़ा अचम्भा हुआ। जब मैं एक ही रुपए पर राज़ी हूँ, तब यह पाँच क्यों दे रही हैं ? शायद कोई बड़ी अमीर हैं। मोटू कुछ देर तक फुर्ती दिखाता हुआ यहाँ से वहाँ दौड़-धूप करता रहा। फिर बोला—अभी थोड़ी ही देर हुई, नाव छोड़ कर चला आता हूँ। भूख ज़ोर से लगी है। ख़ैर, कुछ परवाह नहीं। चबैना बाँधे लेता हूँ। नाव पर ही आत्माराम को सन्तुष्ट कर लूँगा।

मानिक—चलो, जल्दी करो।

मोटू चटपट चबैना बाँध, दो लग्गियाँ उठा कर गङ्गा-किनारे आया। मानिक पहुँचते ही नाव पर सवार होगई। थोड़ी देर ठहर कर मोटू ने पूछा—क्या नाव खोल दूँ ?

मानिक ने उत्तर दिया—हाँ, खोल दो।

मोटू ने विस्मय से पूछा—अरे! क्या आप अकेली ही उस पार जायँगी? और कोई साथ नहीं है?

मानिक ने शान्तिपूर्वक कहा—न, और कोई नहीं है। मैं अकेली ही जाऊँगी।

नाव खोल दी गई। एक ओर मानिक बैठी थी, दूसरी ओर मोटू जा बैठा। डाँड़ चलाने लगा। नाव चलने लगी। गङ्गा का पाट चौड़ा था। दूसरा किनारा दूर था। मोटू तानें लेता हुआ और रह-रह कर चने कड़कड़ाता हुआ मस्त चला जा रहा था। मानिक से चुपचाप बैठे न रह गया। वह मोटू से यहाँ-वहाँ की निरर्थक बातें करने लगी। कई प्रश्न पूछ डाले। यहाँ पर कब से रहते हो? तुम्हारे और कोई नातेदार हैं या नहीं? वे कहाँ रहते हैं? नाव से प्रति दिन कितनी आमदनी हो जाती है? आधी दूरी खतम हो जाने पर मानिक ने थैली निकाल कर मोटू के हाथ पर पाँच रुपए रख दिए। मोटू ने रुपयों से भरी थैली देखी, तो लार टपक पड़ी। मन ललचा गया। कुभाव पैदा हो गया। यहाँ तो यह बिलकुल अकेली है। सब माल-मता छीन यदि इसे गङ्गा में बहा दूँ, तो किसी को भी कानोंकान खबर न होगी। मौज करूँगा। मेरा कोई क्या कर लेगा? तरह-तरह की बातें विचारने लगा। बड़ी देर तक सोच-विचार करने के बाद मोटू ने डाँड़ छोड़ दिए, नाव को धार में जाने दिया। मानिक से उसके मन का भाव छिपा न रहा। चन्द्रमा के धीमे

प्रकाश में मोटू का चेहरा बड़ा भयावना दीखता था। कालेपन ने उसकी विभीषणता और बढ़ा दी। मानिक तनिक भी नहीं सहमी। निर्भीकता से उसने पूछा—क्यों डाँड़ छोड़ दिए?

मोटू ने लापरवाही दिखाकर कहा—थक गया हूँ। जरा दम ले लूँ।

मानिक को उसके थकने की बात पर हँसी आ गई। दिन-दिन भर हाथ चलाता रहता है, तब कुछ नहीं होता, आज इतने ही में थक गया। शायद थैली को देखने से यह शिथिलता आ गई है।

मोटू ने कुछ सोचकर मानिक के मुख की ओर देखते हुए कहा—आप बड़ी अमीर जान पड़ती हैं?

मानिक—हाँ, हूँ तो। क्यों?

मोटू—कुछ नहीं; योंही।

मानिक—कुछ कैसे नहीं? शायद थैली आँखों में गड़ गई है?

मोटू लज्जित नहीं हुआ। सदा की तेज़ आवाज में वह बोला—यही बात हो तब?

मानिक—तब क्या? ऐसा होना स्वाभाविक है। लोभ किसे नहीं सताता?

मोटू—तब आप क्या करेंगी?

मानिक—मेरी बात क्यों पूछते हो? तुम बोलो, थैली लेने के लिए क्या करोगे?

मोटू—क्या करूँगा ?

मानिक—हाँ ! तुम्हारा अब क्या इरादा है ?

मोटू—यह तो कहिए, आप किस साहस पर नाव पर अकेली चली आई हैं ? उस पार मीलों तक सुनसान और भयानक मैदान है। वहाँ जाकर आप क्या करेंगी ?

मानिक—यह पीछे पूछना। अभी यह बताओ, मुझे गङ्गा में फेंक देने का विचार तो नहीं है ?

मानिक की बातचीत का ढङ्ग इस प्रकार का था कि मोटू को अपनी हिम्मत घटती हुई मालूम पड़ी। उसके प्रश्न का उत्तर देना कठिन हो गया। कुछ समय के बाद बड़ी मुश्किल से बोला—आप विचित्र प्रकार की साहसी स्त्री जान पड़ती हैं। ऐसी स्त्री मैंने और कहीं नहीं देखी।

मानिक हँसने लगी।

मोटू से न रहा गया। फिर कहा—यदि मेरा विचार सच ही आपको गङ्गा में फेंक देने का हो, तब आप अपना बचाव किस तरह करेंगी ?

मानिक ने चोली के भीतर से एक पञ्च-नली पिस्तौल निकाल कर मोटू के सामने तान दी। कहा—तुम ऐसा कर ही नहीं सकते। ऐसा करने के पेश्तर ही मैं तुम्हारी खोपड़ी उड़ा दूँगी।

यह देख मोटू हक्का-बक्का हो रहा। यहाँ तो लेने के देने पड़ना चाहते हैं। डरी बिल्ली की तरह दब कर रह गया।

मानिक ने कड़ी आवाज़ से कहा—क्या इसी बिरते पर किसी को लूट लेना चाहते हो ?

मोटू—मैं ख़ुद हैरान हूँ, आपको अपना बिरता किस तरह समझाऊँ ? मैंने अपने मन में इस तरह की कमज़ोरी कभी नहीं पाई थी। हर समय मौक़े पर जान लड़ा देने को तैयार रहता था। आज मुझे न जाने क्या हो गया है ? आपके सामने सिर उठाने का साहस नहीं होता। इस पिस्तौल से मैं भय नहीं खाता। जब आपकी ओर देखता हूँ, जब आपकी बातें सुनता हूँ, तब यही जान पड़ता है, जैसे कोई अनोखी शक्ति आप में से निकल रही हो और मुझ पर अपना असर डाल रही हो। उसी से मैं परास्त हो गया हूँ। आगे बढ़ने का हौसला जाता रहा है। सच कहता हूँ, ऐसा मुझे कभी नहीं हुआ। ईश्वर ही जाने यह कैसा रहस्य है।

क्या जाने, मानिक ने मोटू की ये बातें सुनीं या नहीं। मोटू के चुप होने पर उसने कहा—मुझे जल्दी उस पार जाना है। डाँड़ उठाओ।

मोटू ने तुरन्त ही इस आज्ञा का पालन किया। डाँड़ उठा कर ज़ोर-ज़ोर से चलाने लगा। शीघ्र ही नाव उस पार पहुँच गई। मानिक कूद कर उतर पड़ी। मोटू नाव पर सिर झुकाए खड़ा रहा।

मानिक ने पूछा—गाँव यहाँ से कितनी दूर होगा ?

मोटू—यही कोई आठ मील के क़रीब होगा।

मानिक—तब तो तीन घण्टे का रास्ता है। अभी आठ बजा होगा। चाँदनी रात है। ग्यारह बजे तक पहुँचूँगी।

मोटू—रास्ता बड़ा ख़तरनाक है।

मानिक क्या गङ्गा की बीच धार में पड़ी हुई नाव से भी अधिक ख़तरनाक है?

मोटू—ओह! वह बात जाने दीजिए। मैं आपसे विनती करता हूँ, उसका ज़िक्र न छेड़िए।

मानिक—कैसा ख़तरा है, बोलो?

मोटू—डाकुओं का भय है।

मानिक—तुम भी तो किसी डाकू से कम नहीं हो। हर समय जान लड़ा देने को तैयार रहते हो। तुम्हीं ने मेरा क्या कर लिया? मैं डाकुओं से नहीं डरती। उन्हीं की खोज में जा रही हूँ।

मानिक ने दृष्टि गड़ाकर मोटू की ओर देखा। वह उसी की तरफ़ आश्चर्य से आँखें फाड़-फाड़ कर देख रहा था।

मानिक ने मुस्करा कर कहा—जान पड़ता है, तुम भी डाकुओं में मिले हुए हो। उनकी ख़ूब ख़बर रखते हो। अच्छा, मैं तुमसे कुछ देर तक बातें करूँगी, नीचे उतर आओ। किसी तरह का डर मन में न रक्खो। मैं तुम्हारी बुराई नहीं चाहती।

मोटू नाव छोड़ कर रेत पर आ गया। दोनों बैठ गए।

मोटू ने कहा—कौन जाने, क्या बात है। सब बातें आप ही आप मेरे मुँह से निकली पड़ती हैं। जो कुछ पूछना हो, पूछिए। मैं सब बातों का साफ़-साफ़ और सच्चा उत्तर दूँगा। दूसरे किसी के सामने शायद मेरे मुँह से 'डाकू' का शब्द ही न निकलता।

मानिक—क्यों? शायद इसलिए कि तुम भी एक डाकू ही हो?

मोटू ने धीरे से कहा—हाँ।

मानिक—रोज़गार का बहाना बताने के लिए नाव चलाते हो; पर पैसा दूसरे ही प्रकार से पैदा होता है।

मोटू—ऐसा न करूँ तो दूसरे ही दिन बाँध दिया जाऊँ। सब कोई तब सन्देह न करने लगेंगे कि कुछ कमाता-धमाता है ही नहीं; खाने को कहाँ से लाता है?

मानिक—ठीक है। अब जिस तरह साफ़ मन से तुम बातें कर रहे हो, उसी तरह मैं भी करूँगी। असल बात यह है कि मैं डाकुओं का एक दल बनाना चाहती हूँ। उसके द्वारा मैं अपने कई शत्रुओं से बदला लूँगी। मेरे साथ रहने से डाकुओं को भी कुछ कम लाभ नहीं होगा। ऐसी अच्छी तरह दलबन्दी करूँगी और ऐसी सफ़ाई के साथ कहीं पर डाका डालने की सलाह दूगी कि सब लोग बड़े प्रसन्न होंगे। इसके सिवा मेरे पास बहुत सा नक़द माल भी है। वह सब मैं अपने साथी डाकुओं में बाँट दूँगी। इतना अधिक रुपया

मेरे पास है कि तुम लोगों में से किसी ने स्वप्न में भी न देखा होगा। एक लाख जानते हो कितना होता है ?

मोटू—ओह ! एक लाख तो बहुत होता है।

मानिक—ऐसे-ऐसे मेरे पास नव लाख रुपए हैं।

मोटू—बाप रे! नव लाख ! नव लाख तो हम लोग निन्यानवे बार जन्म लेकर डाका डालने पर भी नहीं देख सकेंगे।

मानिक—इतना बहुत-सा धन मैं उन डाकुओं में बाँट देने को तैयार हूँ, जो मेरे दल में सम्मिलित रहेंगे। अच्छा, बतलाओ तो, तुम कितने डाकुओं को जानते हो ?

मोटू—हम सब मिलकर इस समय पच्चीस डाकू हैं। जिस गाँव को आप जा रही हैं, वहीं पर हमारा सरदार जोखिमसिंह रहता है। आपने शायद सुना भी हो।

मानिक हँसकर बोली—जोखिमसिंह ! नाम तो बहुत अच्छा है। पर तुम लोग हो थोड़े।

मोटू—जब आपके पास इतना रुपया है, तब डाकुओं की कमी नहीं रहेगी। आप चाहेंगी, तो दर्जनों डाकू नित्य आपकी सेवा में हाज़िर हुआ करेंगे। इसका ज़िम्मा मुझ पर छोड़ दीजिए। हमारा सरदार बड़ा होशियार आदमी है। बात की बात में वह सारे देश में डाकू ही डाकू पैदा कर सकता है। जब से उसका भाई पकड़ कर फाँसी पर लटका दिया गया है, तब से वह बहुत-कुछ ढीला पड़ गया है।

मोटू की आँखों में आँसू आ गए। उन्हें पोंछ कर वह

फिर कहने लगा—पहले यह दल बहुत बड़ा था। सब लोग जोखिमसिंह का नाम सुन कर थरथर काँपने लगते थे। भाई के दुःख से उसकी शक्ति क्षीण हो गई है। अब वह डाके के काम में अधिक उत्साह नहीं दिखाता। बहुत से लोग उसका अनमनापन देखकर छँट गए हैं।

मानिक—देखती हूँ, तुम्हें जोखिमसिंह से बड़ा प्रेम है।

मोटू—मैं उसमें और अपने में कोई भेद नहीं समझता।

मानिक—तब तो ठीक है। नाव को यहीं पड़ी रहने दो। तुम भी जोखिमसिंह के पास मेरे साथ चलो। तुम्हारे साथ चलने से मुझे बड़ी सुविधा होगी और काम भी तुरन्त हो जायगा।

मोटू मुस्तैदी से बोला—मैं तैयार हूँ।

मानिक—तो फिर चलो। आगे हो लो। मैं रास्ता नहीं जानती।

मोटू खड़ा होकर कुछ सोचने लगा।

मानिक ने कहा—चलो न!

मोटू कुछ हिचकते हुए बोला—आज्ञा हो तो मैं एक विनती करूँ।

मानिक—क्या है?

मोटू—आठ मील बहुत दूर होता है। आप थक जायँगी। यदि मेरे कन्धे पर सवार होना पसन्द करें, तो मैं घोड़े से भी तेज दौड़ कर इसी समय आपको वहाँ पहुँचा दूँ।

मानिक कुछ हँसी। मोटू के कन्धे पर सवार होगई। वह सच ही हवा के समान दौड़ चला। उसके दौड़ने में इतना हलकापन था कि मानिक को कुछ भी कष्ट नहीं हुआ। ऐसा जान पड़ता था, जैसे वह मोटर पर बैठी हुई भागी चली जाती हो। मुश्किल से पौन घण्टा बीता होगा कि मोटू गाँव में पहुँच गया। उस समय भी उसके श्वास की गति बिलकुल स्वाभाविक थी, जैसे कुछ परिश्रम ही न किया हो। मानिक ऐसा कुशल साथी पाकर बहुत प्रसन्न हुई। जब जोखिमसिंह का घर पास आगया, तब मोटू मानिक को उतार कर पैदल ले चला। दोनों जल्दी ही एक साफ़-सुथरे कच्चे मकान के पास पहुँच गए।

जोखिमसिंह घर पर मौजूद नहीं था। दरवाज़े पर ताला पड़ा हुआ था। मोटू ने कहीं से चाभी लाकर ताला खोल डाला। भीतर ले जाकर मानिक को बड़े आदर से बैठाया। मोटू ने सोचा, वह भूखी होगी। घर में कुछ खाने का सामान नहीं था। पड़ोस में किसी के यहाँ से कुछ फल और दूध ले आया और मानिक के सामने रख दिया। मानिक इस आतिथ्य-सत्कार को अस्वीकार न कर सकी। फल खाकर दूध पी लिया। स्वस्थ होकर ठीक से बैठने के पश्चात् मोटू से कहा—जोखिमसिंह कहाँ गया हुआ है? कुछ पता है? किसी से पूछो, वह कब तक आएगा?

मोटू मानिक के पैरों पर गिर पड़ा। कहा—मुझे क्षमा

करिए। मैंने आपसे एक बात छिपा ली थी। मैं ही वह जोखिमसिंह हूँ। साधारण लोगों में मेरा नाम मोटू मल्लाह प्रसिद्ध है।

मानिक ने उसे उठाते हुए कहा—देखो, यह बात याद रखो कि मैं झूठ बोलने वाले को कभी माफ़ नहीं कर सकती।

मोटू की आँखें लाल हो गईं। उसने कहा—मैं भी आपस में झूठ बोलने वाले का सिर काट लेता हूँ। मैंने आपसे झूठ नहीं बोला था, केवल अपने को छिपाया था। उस समय मुझे आप पर पूरा विश्वास नहीं था। अब, जब आप मेरी खोज में यहाँ तक आ गई हैं, मैं आप पर पक्का भरोसा रखता हूँ। भविष्य में आपसे किसी तरह का दुर्भाव नहीं रक्खूँगा।

मोटू के निष्कपट व्यवहार से मानिक बहुत आनन्दित हुई। कहा—मोटू, तुम्हारे इस मोटू नाम की अपेक्षा मुझे सरदार जोखिमसिंह का नाम ही अधिक अच्छा लगता है। मैं तुम्हें जोखिमसिंह ही कह कर पुकारा करूँगी।

जोखिमसिंह ने हँसते हुए कहा—जैसी आपकी इच्छा!

मानिक—अच्छा, तो जोखिमसिंह! अब तम अपने सब साथियों को बुलाने का प्रबन्ध करो। मैं एक बार उनको देखना चाहती हूँ।

जोखिमसिंह—दो बजे तक सब आकर आपकी सेवा में उपस्थित हो जायँगे। मैंने चार आदमियों से सबको

अपने घर पर इकट्ठा होने की बात कह दी है। आप अब आराम करें। समय पर जगा लूँगा।

मानिक के मन में एक विचित्र प्रकार की शान्ति का प्रकाश फैल गया था। हृदयाकाश में आशा की लम्बी डोर चारों ओर छितरा गई थी। वह जोखिमसिंह के बताए हुए स्थान पर जाकर बिस्तरे पर लेट गई। लेटते ही नींद आ गई।

छुटपन ही से मानिक बड़ी ज़बर्दस्त नींद में सोया करती थी। वह बेख़बर पड़ी थी। डाकू एक-एक, दो-दो करके आए। जोखिमसिंह उन्हें अन्दर करता गया। समय तक सब पहुँच गए। ठीक दो बजे आकर जोखिमसिंह ने मानिक को जगाया। कहा—सब हाज़िर हैं, चलिए।

मानिक उठ पड़ी। जोखिमसिंह उसे घर के और भीतरी हिस्से में ले गया। ऊपर खुली हुई छत पर जाने के लिए ज़ीना बना था। वहीं वह ठहर गया। ज़ीने के बग़ल की दीवार पर दो खूँटियाँ लगी थीं। दाहिनी तरफ़ की खूँटी पर टँगे हुए कपड़ों को उतार कर अलग रख दिया। कपड़ों को अलग रखने के बाद खूँटी को ज़ोर से भीतर ठेल दी। फिर दीवार पर कस कर एक लात मारी। लकड़ी का एक तख़्ता दोनों ओर दो कीलों के सहारे आड़ा हो गया। भीतर उजाला दिखाई दिया। दोनों चले और गुप्त दरवाज़े को बन्द करते हुए कई डण्डे सीढ़ियाँ उतर कर नीचे पहुँचे। चौबीस

डाकू एक क़तार से बैठे थे। सबने एक साथ उठ कर मानिक का अभिवादन किया। मानिक ने सबके उत्तर में एक बार सिर हिला दिया। कमरे में उत्तर की तरफ़ एक विकराल काली की मूर्त्ति स्थापित थी। मूर्त्ति के सामने दक्षिण की ओर एक चबूतरा था। उस पर मख़मली गद्दी लगी हुई थी। उस पर सुन्दर रेशमी झालरदार एक तकिया रक्खा था। मानिक बड़े सम्मान के साथ उस पर बैठा दी गई। आज्ञा पाकर दूसरे डाकू भी बैठ गए। कुछ देर तक सन्नाटा रहा। फिर सरदार जोखिमसिंह मानिक के सामने आ हाथ जोड़-कर बोला—आपको अपनी अधिकारिणी मानने के पहले मेरे सब साथी नौ लाख की रक़म देखना चाहते हैं। आशा है, आप उनकी उत्सुकता दूर कर देंगी। आपसे बातचीत करने के लिए सब लोगों ने मिलकर मुझे अपना प्रतिनिधि चुना है। इस समय मैं आपसे जो बातें करूँगा, उन्हें आप सबकी ओर से कही हुई ही समझिएगा।

मानिक धीर भाव से बोली—मैं सबको समझदार और होशियार समझती हूँ, पर इस बात से मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि मुझसे इस प्रकार का बेढङ्गा प्रश्न पूछा जाता है। क्या कोई हर समय इतनी बड़ी रक़म अपने पास रख-कर घूमता-फिरता रह सकता है? वह गङ्गा के किनारे एक स्थान पर सुरक्षित रक्खी है। चाहे जब मैं उसे लाकर तुम लोगों के सुपुर्द कर सकती हूँ।

जोखिम—क्या आप उस अगाध सम्पत्ति का पता जानने की हमारी धृष्टता क्षमा करेंगी ?

मानिक ने बिना किसी दुविधा के पता बता दिया। कहा—बड़े देवालय के ठीक पश्चिम तरफ़ क़रीब सौ पग गङ्गा के किनारे-किनारे जाने से एक बड़ा बड़ का पेड़ मिलता है। उसी के नीचे वह जमा गड़ी है। चिन्ह के लिए मैं एक बड़ा सा पत्थर वहाँ रख आई हूँ। तुम लोगों को भरोसा न आता हो तो कोई एक आदमी वहाँ जाकर उसे ले आ सकता है।

जोखिम—हमें आप पर पक्का भरोसा है। वह जमा लाकर आपको दे दी जायगी। जिस प्रकार से ठीक समझें, आप उसे काम में ला सकती हैं। आपकी सेवा करने में ही हम अपना सौभाग्य समझेंगे। आपकी इस सहृदयता ने हम सबको अपने वश में कर लिया है। अब आप आज्ञा दीजिए, हम लोग आपको अपनी स्वामिनी मानने की रस्म पूरी करें।

मानिक—हाँ, तुम लोग अपनी रस्म पूरी करो।

पहले सरदार ने जाकर काली की मूर्त्ति को प्रणाम किया। उस मूर्त्ति के एक हाथ में काँच का एक प्याला रक्खा था। उसमें एक बड़ी सुई पड़ी थी। सरदार ने सुई उठा ली। बाईं बाँह ऊपर चढ़ाकर उसने वह सुई कलाई में चुभा दी। हाथ प्याले के ऊपर ले गया। सुई निकाल

ली। रक्त की एक बूँद प्याले में टपक पड़ी। फिर वह मूर्ति को प्रणाम कर अपने स्थान पर चला आया। सरदार के पश्चात् दूसरा डाकू उठा। उसने भी यही किया। उसी प्रकार हरएक डाकू ने बारी-बारी से उठ कर अपने बाएँ हाथ में सुई गड़ा रक्त की एक बूँद प्याले में डाल दी।

इतना हो जाने पर सरदार फिर मानिक के सामने हाथ जोड़कर आ खड़ा हुआ।

मानिक ने पूछा—अब क्या करना होगा? क्या मैं भी ऐसा ही करूँ?

सरदार—आप काली की मूर्त्ति के पास जाइए। अपना माथा नवाइए। प्याले को उठाकर उसका सब रक्त माता के पैरों पर डाल दीजिए। उसके बाद अपनी दाहिनी कलाई में से एक बूँद रक्त माथे पर टपका फिर सिर झुका दीजिए।

मानिक ने जाकर माथा नवाने के पश्चात् पच्चीस डाकुओं के रक्त से भरा हुआ प्याला उठा लिया। सरदार के कहने के अनुसार सब रक्त मूर्त्ति के पैरों पर उड़ेल दिया। फिर उसने ख़ून से भरी हुई लाल सुई उठा ली। अपनी दाहिनी क़लाई में ज़ोर से उसे घुसेड़ दिया। सुई के निकलने पर रक्त की कई बूंदें छलछला कर मूर्त्ति के माथे पर गिर पड़ीं। सब डाकू हुङ्कार मार कर एक साथ चिल्ला उठे—माता की जय!

मानिक माता को सिर झुका कर चबूतरे पर आ बैठी। रस्म पूरी हो गई।

सरदार ने मानिक से नम्रतापूर्वक पूछा—हम लोग ज़रूरत पड़ने पर आपका कौन-सा नाम लिया करें ?

मानिक कुछ देर तक सोच कर बोली—प्रतिदानिनी, प्रतिफला या इसी तरह का कोई नाम चुन लो।

सरदार—आप हमें किसी कारण से अपना असली नाम नहीं बतलाना चाहतीं। हम लोगों को उसके जानने की कोई ज़रूरत भी नहीं है। अब आप हम सबकी स्वामिनी हैं। हम सब आपके सेवक हैं। सब कोई आपको स्वामिनी जी के नाम से ही सम्बोधन किया करेंगे।

सब फिर एक स्वर से चिल्ला उठे—स्वामिनी जी की जय !
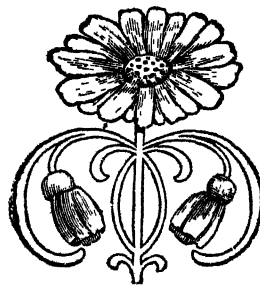
श्वर ने संसार में चलने के लिए दो मुख्य मार्ग बनाए हैं। एक अच्छे कर्मों का और दूसरा बुरे कर्मों का। इन दो मार्गों ही से मनुष्यों की परीक्षा होती है। अच्छे कर्मों का मार्ग जैसा कहने में अच्छा है, वैसा ही चलने में कठिन है। उसमें अनेक बाधाएँ भरी हुई हैं। देखने में यह बड़ा भयावना और नीरस है; किन्तु इतना अवश्य है कि इस पर चलने वालों को अन्त में अच्छा फल मिलता है। इसके सर्वथा विपरीत बुरे कर्मों का मार्ग देखने में बड़ा ही सुहावना और मनमोहक है। हर एक का मन इसी पर चलने को लालायित रहता है। इससे अन्त में मिलने वाले बुरे फल का विचार, वह जानते हुए भी भूल जाता है। इन दो मार्गों में कितना अनोखापन भरा हुआ है! फिर भी अच्छा अच्छा ही है और बुरा बुरा ही। ओङ्कार कुछ बच्चा नहीं था। विद्वान् था, सब समझता था। मौक़ा पड़ने पर दूसरों को अच्छी-अच्छी शिक्षाएँ देता था। वह

भी धोखा खा गया। कुमारी उसे अपने कौशल से कुपथ में घसीट ले गई। जब एक बार ओङ्कार को रसिकता का आनन्द मिल गया, तब वह उसमें इतना लीन हो गया कि पीछे लौटने की सुधि जाती रही। आगे ही बढ़ता गया। एक सुन्दरी के पश्चात् दूसरी पर दृष्टि पड़ी। यह पहली की अपेक्षा कहीं अधिक कमनीय थी। मन कैसे मानता? उसे पाने की चिन्ता करने लगा। कुमारी की याद एक तरह से भूल ही गया। जब कभी उसका ध्यान आ जाता था, तो वह उसे बिलकुल तुच्छ समझकर तुरन्त मन से निकाल देता था। तसवीर वाली मूर्ति इस प्रकार हृदय पर जमकर बैठ गई कि उसके आगे संसार की दूसरी बातों को वहाँ स्थान न मिला। एकमात्र उसी का ध्यान रह गया। जब देखो तब वही; और कुछ नहीं।

दूसरे दिन रामलाल आज्ञानुसार दोपहर के समय ओंङ्कार के पास आया। ओङ्कार के हृदय पर तो दूसरी ही मूर्त्ति विराजमान हो गई थी; रामलाल की कोई ज़रूरत नहीं समझी। उसके हाथ पर पाँच रुपए रख कर कहा—लो, यह तुम्हारा इनाम है। अभी जाओ, फिर कभी काम पड़ने पर तुम्हें बुला भेजूँगा।

वह चला गया। पाँच रुपए पा जाने पर भी उसके मन में दुःख बना ही रहा। शायद एक अच्छा फ़ोटो खींच देने पर कुछ अधिक लाभ हो जाता।

ओङ्कार ने कुमारी के पास जाना बन्द कर दिया। हर समय चित्र से ही बात किया करता था। कहीं घूमने जाने पर उसी के विषय में विचार दौड़ाता था। उठते-बैठते और खाते समय सोचता, वह मुझे कैसे मिलेगी? सोते रहने पर भी उसी का स्वप्न देखा करता था। कई दिनों तक सोचते-सोचते थक गया। उसके मन में उससे मिलने का कोई ठीक उपाय नहीं स्थिर हुआ। एक दिन वह सोने के कमरे में पड़ा-पड़ा अपने हृदय की अधीश्वरी के सुखद स्वरूप की कल्पना कर रहा था। जीवन बाहर बैठा हुआ अपने दो-चार यार-दोस्तों को कहानी सुना रहा था। उसने एकाएक बिगड़ कर कहा—कोई 'हूँकी' देता ही नहीं, जाओ, अब मैं नहीं कहूँगा। सुनना ही नहीं था, तब क्यों बार-बार कहते थे—कहो-कहो?

एक ने विनती करते हुए कहा—नहीं भाई, हम सब तो सुन रहे हैं, कहो। हाँ, तब उस राजकुमार ने क्या किया? मैं हुँकारी भरता हूँ—हुँ!

जीवन—बस, यहीं पर क़िस्सा ख़तम हो गया।

एक—जाओ यार, तुम तो ज़रा से में मुँह फुला लेते हो!

जीवन—किसी को न मालूम हो तो क्या कहे?

एक—और किसी को चाहे न मालूम हो, पर तुम क़िस्सा कहने में पूरे उस्ताद हो।

जीवन मुस्कराया। कहने लगा—देखो, अच्छी तरह

सुनो। बड़ी बढ़िया कहानी है। हूँकी देते जाना। इतना समझे रहना कि उधर हूँकी बन्द हुई और इधर कहानी।

एक—कहोगे भी।

जीवन—तो जब राजकुमार का मन उस साहूकार-ज़ादी से अटक गया, तब वह उससे मिलने का कोई उपाय सोचने लगा। कहो—हुँ!

एक—हुँ!

जीवन—सबेरे मालिन उसे गजरा देने आई। राज-कुमार ने उससे अपने मन का हाल कह दिया।

एक—हुँ!

जीवन—मालिन बड़ी चालाक थी। वह दूसरों के लिए कई चिड़ियाँ अपनी चालबाज़ी के पिंजड़े में फँसा चुकी थी। इस फ़न में वह एक नम्बर की उस्ताद और चलता-पुर्ज़ा थी। हँसती हुई सब सुनती रही।

ओङ्कार कहानी का यह अंश सुन कर उठ बैठा। उसकी उत्सुकता बढ़ गई। मन में धीरे से कहा—मुझे भी इस चालाक मालिन की तरह कोई कुटनी खोजना पड़ेगा।

जीवन कह रहा था—राजकुमार के मन की थाह पाकर वह ज़ोर से ठठा कर हँसती हुई बोली, यह तो कोई बड़ी बात नहीं है। कुछ इनाम मिले तो अभी एक सहल-सा उपाय बता दूँ। राजकुमार ने उसे अपने गले में पड़ी हुई सोने की ज़ञ्जीर उतार कर दे दी। इस क़ीमती माल

पर मालिन ने ख़ुश होकर कहा—जहाँ वह साहूकारज़ादी रहती है, वहीं अग़ल-बग़ल में कहीं एक मकान किराए पर ले लो। फिर तो रोज़ ही छत पर से देखादेखी हुआ करेगी। थोड़े दिनों के बाद अनायास ही तुम्हारी मनोकामना पूर्ण हो जायगी।

ओङ्कार का अङ्ग-अङ्ग फड़क उठा। बोला—इस कहानी का नायक राजकुमार मैं ही बनूँगा।

उस समय रात हो चुकी थी। कुछ हो न सकता था। किसी तरह करवटें बदलते-बदलते उसे बिता दी। सवेरा होते ही आवश्यक कार्यों से निबट कर मकान की खोज में निकल पड़ा। ईश्वरप्रसाद का घर पाने में कठिनता नहीं पड़ी। उसके बग़ल में तो कोई ख़ाली मकान नहीं मिला, पर ठीक सामने ही एक बँगला था। उसमें कई महीनों से कोई न रहता था। ओङ्कार उसी समय बँगले के मालिक के पास पहुँचा। बोला—आपका जो वह बँगला ख़ाली पड़ा है, उसे मैं किराए पर लेना चाहता हूँ।

मालिक—चलिए, अभी आपको दिखा दूँ, पसन्द कर लीजिए।

ओङ्कार—मैंने बाहर से देख लिया है, पसन्द है।

मालिक—भीतर भी अच्छी तरह देख लीजिए। मुझे इस समय फ़ुरसत है। एक-एक कमरे की अच्छी तरह जाँच कर लीजिए।

ओङ्कार—भीतर से देखने की कोई ज़रूरत नहीं है। चाहे जैसा हो; मुझे पसन्द है। आप क्या किराया लेंगे ?

मालिक—कुछ महीने हुए, उसमें मिसेज़ हर्वर करके कोई एक मेम रहती थीं। उनसे मुझे पचास रुपए मासिक मिला करता था। इससे कम में मैं उसे नहीं उठा सकता। उनके जाने के बाद कई किराएदार आए। उन्होंने चालीस पैंतालीस देने को कहा। मैंने नहीं दिया। जब एक बार किराया पचास रुपए तक चढ़ गया है, तब मैं उसे उससे कम में देना पसन्द नहीं करता। भले ही वह वर्षों तक ख़ाली पड़ा रहे। मेरे पास पचास रुपए महीने की रसीदों की नक़ल मौजूद हैं। कहिए तो ले आऊँ।

ओङ्कार—जितना आप कहते हैं, उतना ही दिया जायगा। मैं कल से ही उसमें आ जाना चाहता हूँ।

मालिक—आप अभी से डेरा डाल दीजिए। यह लीजिए चाबी।

ओङ्कार ने हाथ आगे बढ़ा दिया।

गुच्छे से चाबी निकालते हुए उसने कहा—एक महीने का किराया मुझे पेशगी मिलना चाहिए।

ओङ्कार ने चाबी लेकर कहा—आज शाम तक आपको मिल जायगा।

उसी समय से ओङ्कार बँगले को सजाने के प्रबन्ध में लग गया। कई चीज़ें अपने घर से उठा लाया। बहुत सी

नई बाज़ार से ख़रीद लीं। वह किस तरह से सुसज्जित हो और लोगों की दृष्टि, विशेष कर उस सुन्दरी का ध्यान, उस ओर देखते ही आकर्षित हो जाय, इस पर उसने अपनी सब अक़्ल ख़र्च कर दी। स्वयं ख़ूब बन-ठनकर क़ीमती कपड़े पहन चमचमाते हुए बूट पर छड़ी मारते हुए आता। अकारण ही कई बार बँगले से बाहर निकलता और इधर-उधर चक्कर काटता। किसी तरह वह मुझे देखे और मैं उसे देखूँ। कई बार उसके मन में आता कि सुन्दरी मेरे बनाव-शृङ्गार पर रीझकर मुझे कहीं से छिप कर देख रही है। वह और भी शान के साथ अकड़ कर चलने लगता। दिन का बहुत सा समय वह बाहर आराम-कुर्सी पर बैठकर सिगरेट पीते हुए बिताता था। सिगरेट पीना उसने हाल ही में सीखा था। बैठे-बैठे क्या करें? चलो धुआँ ही उड़े। घर पर ओङ्कार का पैर टिकता ही न था। वहाँ के लिए वह अब नारद मुनि से भी बढ़कर हो गया था। बस भोजन करने जाता और तुरन्त ही वापस लौट आता। कभी-कभी तो वह बँगले पर ही बाज़ार से कुछ मँगवाकर खा लेता था; घर बिलकुल ही न जाता था।

देवी ओङ्कार के इस नए प्रपञ्च का हाल नहीं जानती थी। उसे यही मालूम था कि गाने वाली ही उन्हें स्वर्ग दिखा रही है। स्त्रियाँ सब कुछ सह सकती हैं। उनकी सहनशीलता अपार होती है। उनके टुकड़े-टुकड़े कर डालो, स्वीकार है।

भभकती हुई आग की भट्ठी में झोंक दो, परवा नहीं। विषैली सुई से उनके शरीर में सहस्रों छिद्र बना दो, मुँह से सी न करेंगी। पर अपने पति का पराई स्त्री से प्रेम करना वे कभी नहीं देख सकतीं। देवी मन ही मन बड़े भारी कष्ट का अनुभव कर रही थी। यह ज्वाला बड़ी भीषण थी। शरीर को झुलसाए देती थी; पर प्राण नहीं निकलते थे। कई दिनों तक यन्त्रणा सहती रही। एक दिन उलझ पड़ने पर उतारू हो गई। ओङ्कार से कहा—जान पड़ता है, तुम अब अपने इस आवारापन को नहीं छोड़ोगे। जन्म-भर मुझे जलाते ही रहोगे।

देवी ने अनजान में छेड़ा था। कहीं वह इस नई बात को भी तो नहीं ताड़ गई? कुछ देर के लिए ओङ्कार बहुत व्याकुल हो गया। मुँह से आवाज़ नहीं निकली।

देवी ने फिर कहा—मैं जानना चाहती हूँ कि इस राक्षसी से तुम्हारा पीछा कभी छूटेगा भी या नहीं?

ओङ्कार को कुछ साहस हुआ। बोला—तुम वृथा ही भ्रम में पड़ी हो। मेरा उससे कोई सरोकार नहीं है।

देवी—सामने आकर आँखों में धूल झोंकना चाहते हो? उस दिन उसने लड़के के हाथ चिट्ठी भेजी थी; याद होगा। तुम मित्र से मिलने का बहाना करके चले गए थे। दिन भर मज़े में गहरी छनी थी। अभी भी दिन-दिन भर घर से लापता रहते हो। मुझे क्या नन्हीं-सी बच्ची समझ रक्खा

है ? मानों कुछ समझती ही नहीं । झूठी बातों में बहला देना चाहते हो । मैं बिलकुल नासमझ नहीं हूँ । एक बार तुम्हारी धूर्त्तता साबित हो चुकी है । किस साहस से उस पर पानी फेरना चाहते हो ? समझते होगे, कुछ दिन बीत गए हैं ; यह उन बातों को भूल गई होगी । मैं उन्हें भूली नहीं हूँ । अब तक तुम्हारे छिछोरपन का घाव मेरे हृदय पर बना हुआ है, भरा नहीं है । जब तक तुम राह पर नहीं आते, तब तक वह बना ही रहेगा ।

ओङ्कार—क़सम खाकर कहता हूँ, मेरा उससे कोई सम्पर्क नहीं है । तुम्हें यक़ीन न हो, तो उसके घर पर पहरा बैठा दो । देखोगी कि मैं वहाँ कभी नहीं जाता । अभी हाल ही में गङ्गा-किनारे एक बँगला किराए पर लिया है । वहीं मैं अपना ऑफ़िस रखना चाहता हूँ । नए मकान में सब चीज़ें जुटाने में ज़रा दिक़्क़त पड़ती है । इसी से दो-चार दिनों से फ़ुरसत नहीं मिलती । और कोई बात नहीं है । मैं सच कहता हूँ । मुझ पर विश्वास करो ।

देवी—तुममें कितनी सत्यता भरी हुई है, सो मैं अच्छी तरह जानती हूँ । अभी तक वर्षों से तुम्हारा ऑफ़िस यहाँ था, काम में कभी कोई बाधा नहीं पड़ी । अब क्या हो गया ? दूसरे स्थान पर ऑफ़िस हटा ले जाने की ऐसी कौन सी ज़रूरत आ पड़ी है ? सीधी बात न कह कर वही गोल-माल करना जानते हो ।

ओङ्कार—गोलमाल कुछ नहीं है। तुम्हारा मुझ पर सन्देह हो गया है; इस कारण सब गोलमाल मालूम पड़ता है।

देवी—तो क्या मेरा यह सन्देह झूठा है?

ओङ्कार—बिलकुल झूठा है। वृथा ही तुम मुझ पर दोष मढ़ रही हो।

देवी—वृथा ही?

ओङ्कार—हाँ।

देवी—अच्छा, दिन भर कहाँ रहते हो? देखो, सच बोलना।

ओङ्कार—कहता तो हूँ एक बँगला किराए पर लिया है। वहीं काम की अधिकता के कारण रह जाता हूँ। एक दिन टहलते-टहलते उधर निकल गया था। उसे देखा, पसन्द आ गया। ले लिया। चलो, तुम्हें दिखा दूँ। वहाँ गङ्गा की अच्छी बहार है। खूब मन लगता है। जब उसे ले ही लिया है, तब कैसे खाली पड़ा रहने दूँ। इसी से ऑफ़िस वहाँ हटा लिया है।

ओङ्कार ने बड़ी दृढ़ता से बातें की थीं। देवी को उनमें मिथ्यापन की बू नहीं मालूम दी। उसे कुछ-कुछ विश्वास हो गया। फिर भी सन्देह समूल नष्ट नहीं हुआ। ओङ्कार के जाने के बाद उसने जीवन को बुलाया। कहा—जीवन, देखो तो तुम्हारे बाबू जी कहाँ जा रहे हैं? उनके पीछे-पीछे जाओ। राह में अपने को प्रकट न करना। मौक़ा पड़ने पर

चाहे सामने हो जाना। पूरा पता लेकर आना। कहाँ जाते हैं, क्या करते हैं, समझे न ?

जीवन—ख़ूब अच्छी तरह।

देवी—और सुनो, उनका नया दफ़्तर भी देख आना। देख आना वहाँ क्या काम करते हैं ?

जीवन—अच्छा।

बँगले में पहुँचने के थोड़ी देर के बाद ओङ्कार ने जँगले से जीवन को इसी तरफ़ आते देख लिया। समझ गया, देवी ने उसे मेरे पीछे यहाँ तक भेजा है। कुर्सी खींचकर वह टेबिल के पास बैठ गया। दो-चार बहियाँ सामने रख लीं। उनके पन्ने बार-बार उलटने लगा। मुख पर बेचैनी का भाव बना लिया, जैसे रुपयों की कोई भारी रक़म ग़ायब हो गई हो और बहुत कोशिश करने पर भी हिसाब न मिलता हो।

जीवन ने भीतर पहुँच कर आश्चर्य से कहा—बाबू जी, आपने कब से यहाँ अड्डा जमा लिया ? मुझे कोई ख़बर ही नहीं। अपना पहचाना हुआ आपके नाम का साइन-बोर्ड बाहर देख कर यहाँ चला आया हूँ।

ओङ्कार—कुछ ही दिन हुए इसे लिया है। दफ़्तर का सब काम यहीं पर उठा लाने का विचार है। हिसाब-किताब और लिखना-पढ़ना सब यहीं हुआ करेगा। बँगला तो अच्छा है न ? कैसा साफ़-सुथरा और ख़ूबसूरत है। जाओ सब जगह देखो तो सही।

थोड़ी देर में जीवन सब देख-भाल कर हँसता हुआ लौट आया। बोला—हाँ, बँगला तो बहुत अच्छा है। जगह-ज़मीन भी अच्छी है। गङ्गा का किनारा है। पर एक बात ज़रा कुछ ठीक नहीं जँचती।

ओङ्कार—क्या ?

जीवन—यही कि घर से थोड़ा दूर पड़ता है। पास होता तो अच्छा रहता।

ओङ्कार—ऐसा कुछ दूर नहीं है, सिर्फ़ दस मिनट का रास्ता है। साइकिल पर दो ही मिनट लगते हैं। यह दूरी कुछ दूरी नहीं कही जाती।

देवी आशा लगाए बैठी थी। एक घण्टा बीतने पर जीवन आया। सन्तोष दिखाकर बोला—उन्होंने गङ्गा के किनारे एक बँगला लिया है। कहते थे, लिखने-पढ़ने का काम यहीं करूँगा। कोई शङ्का की बात नहीं है। उन्हें वहाँ रहने दीजिए। बँगला तो खूब सजा है। बाहर-भीतर सब तरह से अच्छा है। एकाएक भीतर जाने की मेरी हिम्मत नहीं पड़ी थी। फिर चला गया। बड़ी देर तक बातें कीं।

जीवन की बातें सुनकर देवी को कुछ धीरज हुआ, मन में निश्चिन्तता आई।

चौदहवाँ परिच्छेद

दूर-दूर रहने से नहीं चलेगा। ज़रा और पास घुसना चाहिए। ओङ्कार ने ईश्वरप्रसाद से घनिष्टता करने की ठानी। अधिक आत्मीयता दर्शाने से उनके घर में आने-जाने की कोई रोक-टोक न रह जायगी। मनमोहिनी से मिलने का सुअवसर प्राप्त होगा। ओङ्कार ने एक बड़ा ज्योनार करने का विचार किया। दिन स्थिर हुआ। कार्ड छपवाए गए। और-और हित-मित्रों के साथ ईश्वर-प्रसाद के यहाँ भी उसके नाम का कार्ड भेजा गया। नामी-नामी स्थानों से सुन्दर स्वादिष्ट मेवे मँगवाए गए। ज्योनार के दिन अनेक प्रकार की नई-नई मिठाइयाँ आगतों के लिए बनीं। नियुक्त घड़ी आ गई। सब मित्रगण समय तक धीरे-धीरे आ पहुँचे। ओङ्कार का मुख्य प्रयोजन तो ईश्वरप्रसाद से था! उसी के लिए यह सब किया गया था। वही नहीं आया। ओङ्कार ने घड़ी की ओर देखा, तीन बजे हैं। यही

नहीं आ गए ? किन्तु फिर वहीं निराशा। ज्योनार समाप्त होने को हुई। ईश्वरप्रसाद की छाया नहीं मिली। साढ़े चार बजने को कुछ मिनट बाक़ी थे। अचानक ओङ्कार की दृष्टि सामने खिड़की पर पड़ी। बहुत दिनों की परिचित सोना सुबाला को गोद में लिए भीतर झाँक रही थी। झपट कर वह बाहर आया। आँखें फैला कर हँसते हुए पूछा—अरे सोना ! तुम यहाँ कहाँ ?

सोना मुस्करा कर बोली—मैं तो यहाँ डेढ़ साल से हूँ।

ओङ्कार ने आश्चर्य से कहा—डेढ़ साल से !

सोना—हाँ, इससे भी कुछ ज्यादा ही हुआ होगा।

ओङ्कार—कभी दिखाई नहीं दीं ?

सोना—मुझे क्या मालूम कि तुम भी यहीं हो। मैं तो तुमको यहाँ देख कर चकित हो रही हूँ। लखनऊ कब छोड़ा ?

ओङ्कार—लखनऊ छोड़े बहुत दिन हो गए। मुद्दत से यहाँ रहने लगा हूँ।

सोना—जब से तुम्हारे ससुर मरे, तब से वहाँ तुम्हारी चिट्ठी-पत्री भी नहीं जाती थी। फिर मुझे तुम्हारा ठीक पता-ठिकाना कैसे मालूम होता ? मैं अब तक यही जानती थी कि तुम लखनऊ में ही हो।

ओङ्कार—और तो सब राज़ी-खुशी हैं ?

सोना का मुख म्लान हो गया। सिर नीचा करके कहा—कहाँ? मुझ पर दैव रूठा है—मैं विधवा हो गई हूँ।

दूसरे की व्यथा सुनने से ओङ्कार का हृदय एक बार ज़ोर से धड़क उठा। सहानुभूति मिले हुए शब्दों में कहा—ओह! तुमने कुछ भी सुख नहीं भोगा। निर्धनता के कारण माता-पिता ने तुम्हें एक अयोग्य और दमे के असाध्य रोग से पीड़ित मनुष्य के साथ बाँध दिया था। तुम ऐसी सुन्दरी को किसी बड़े रईस के घर में देना था।

सोना—सब भाग्य से होता है।

ओङ्कार ने यह शोक-भरी बात बदल कर कहा—यह तो ईश्वरप्रसाद की लड़की है। तुम्हारे पास क्यों है? नाम सुबाला ही है न?

सोना—हाँ, यह ईश्वरप्रसाद जी की लड़की सुबाला है। पति के मरने के बाद से मैं इन्हीं के यहाँ रहने लगी हूँ। आख़िर पेट के लिए कुछ करना चाहिए ही। बैठे-बैठे कैसे चल सकता है? यह पत्र उन्होंने आपको देने के लिए दिया है। कहा है, तबीयत कुछ ख़राब है। ज्योनार में नहीं शामिल हो सकता। माफ़ी माँगी है।

ओङ्कार ने पत्र खोल कर पढ़ा। उसमें भी यही विनय के साथ अपने न आ सकने की असमर्थता बतलाई थी। काग़ज़ को जेब में रख कर वह बोला—सोना, तुम सुबाला के साथ इसी बग़ल के कमरे में बैठो, मैं अभी आता हूँ।

देखो जाना मत। मुझे देर नहीं लगेगी। बहुत सी बातें करनी हैं।

सब लोग खा-पी चुके थे। जल्दी-जल्दी पान-इलायची देकर तथा दो-चार मीठी बातें करके ओङ्कार ने उनको बिदा कर दिया। फिर वह सोना के पास आ पहुँचा। सोना का घर ओङ्कार के श्वशुर के घर के पास ही था। वह उसकी स्त्री से दो-चार वर्ष जेठी थी; तो भी ओङ्कार उससे कोई दूसरा नाता न मान कर साली के समान ही व्यवहार किया करता था। सोना इससे कुण्ठित अथवा सङ्कुचित नहीं होती थी। दो में से कोई भी हँसी-दिल्लगी करने में न हिचकता था। पास बैठे हुए बड़ी देर तक खुल-खुल कर बातें करने में वे लीन रहा करते थे। सोना बड़ी रसिक स्त्री थी। अपनी सजावट की ओर अधिक ध्यान देती थी। बालों में बहुधा सुगन्धित तेल लगाती, उनमें फूल खोंसती, धोती को ख़ूब चुनकर पहनती और बड़ी चञ्चलता से झूम-झूम कर चला करती थी। विधवा हो जाने पर भी उसके ये गुण उसमें बने ही रहे। लोच के साथ बातें करना नहीं छूटा। पहनाव-ओढ़ाव में फ़र्क़ नहीं पड़ा। हर समय बढ़िया, बड़े पाढ़ की, रङ्गीन धोती पहने रहती थी। आँखों में सुरमा लगा रहता था। जिस समय ओङ्कार कमरे में आया, वह एक बड़े दर्पण के सम्मुख खड़ी होकर अपने लहरदार बालों को सँवार रही थी। बार-बार हटा देने पर भी वे माथे पर झुक पड़ते थे।

ओङ्कार ने हँसकर कहा—शृङ्गार हो रहा है क्या ?

सोना—तुम्हारा आईना बहुत अच्छा है। चेहरा ख़ूब साफ़ दीखता है।

ओङ्कार—सुन्दर भी दीखता है।

सोना—झूठी बड़ाई करना तो कोई तुमसे सीख ले।

ओङ्कार—झूठ नहीं; बिलकुल सच। आओ, मेरे साथ आईने में अपना मुँह देखो। मैं एक-एक करके सब बारी-कियाँ बताऊँगा, तब तुम समझ सकोगी।

सोना—चलो, रहने दो। मैं जैसी हूँ, वैसी हूँ। तुम्हारे कुछ कहने-कहाने से क्या होना-जाना है ?

ओङ्कार—होना-जाना क्यों नहीं है ? तब तुम जान जाओगी कि तुम्हारे मुख में कितनी सुन्दरता, सरसता और लावण्य है। तब तुम्हारा गर्वीला मुख और भी गर्व से भर उठेगा। अपने को सुन्दर अनुभव करने-मात्र से सुन्दरता चौगुनी खिल उठती है। जिस समय मुख पर हृदय का भाव फूट निकलता है, उस समय उसमें बहुत मनोहरता आ जाती है। तुम्हीं कहो, क्या मैं झूठ कहता हूँ।

जब कोई स्त्रियों की प्रशंसा करने लगता है, तब वे भागने का नाम बड़ी जल्दी ले लेती हैं। सोना ने कहा—तुम्हारी फ़ालतू बातें कौन सुनने बैठे ? समय भी तो चाहिए। अब जाती हूँ। बहुत देर होगई। फिर आऊँगी।

ओङ्कार—वाह! यह भी अच्छी रही। नाराज़ होगईं क्या?

सोना ने हँस कर कहा—नाराज़ काहे को होऊँगी? तुम्हीं बताओ, मुझे आए कितनी देर हो गई है?

ओङ्कार—अभी कुछ देर नहीं हुई। मैं तुम्हें जाने नहीं दूँगा। बैठो, ज़रा देर और बैठ लो।

ओङ्कार ने सोना का हाथ पकड़ कर खींच लिया। सोना ने चिल्ला कर कहा—बैठती हूँ, बैठती हूँ। हाथ छोड़ दो।

ओङ्कार ने हाथ छोड़ दिया। कुर्सी पर बैठते हुए कहा, बैठो तो फिर। सोना धरती पर बैठ गई। बोली—यही तो तुम्हारा अच्छा नहीं लगता। देखो, चूड़ी टूट गई है। खून निकल आया है।

ओङ्कार ने झुक कर देखा। सचमुच ख़ून निकल आया था। घाव अधिक गहरा नहीं था। जेब से रूमाल निकाल कर ख़ून पोंछ दिया। कहा—कुछ नहीं है। ज़रा-सा खुरच गया है।

सोना ने तिनक कर कहा—तुम्हारे लिए कुछ नहीं है। यहाँ समूचा हाथ झनझना रहा है।

ओङ्कार ने चोट के स्थान पर ज़रा सा दबा दिया। रूमाल पानी से तर करके बाँधते हुए कहा—अच्छा हो जायगा।

सोना—अच्छा तो हो ही जायगा, पर तुम्हारी इस तरह की हँसी मुझे ज़रा भी नहीं सुहाती।

ओङ्कार—अच्छा भई, अपराध हुआ। क्षमा करो।

सोना—पहले तो खुचुर कर बैठे, अब क्षमा करो! अब जरा भी नहीं बैठूँगी। यह चली।

ओङ्कार राह रोक कर खड़ा हो गया। धीमे स्वर से बोला—विनती करता हूँ, अभी मत जाओ। सिर्फ पाँच मिनट और ठहरो। नहीं तो समझूँगा, तुम सच ही मुझ पर नाराज़ हो गई हो, फिर नहीं रोकूँगा।

सोना—ओङ्कार की बात से मुस्करा पड़ी। बैठते हुए कहा—तुम्हारी खातिर और थोड़ी देर के लिए बैठी जाती हूँ। फिर ज़िद नहीं करना। मालिक की तबीयत ख़राब है। शायद मेरी कोई ज़रूरत पड़े।

ओङ्कार सुबाला के हाथों में केलों का एक गुच्छा थमा कर सोना के सामने बैठ गया। वह बोला—क्या उनकी तबीयत बहुत ख़राब है? इतनी जल्दी क्या होगया? कल ही तो मैंने उन्हें देखा था। बिलकुल चङ्गे थे।

सोना ने सुबाला को गोद में बैठा लिया। एक केला छील कर उसके मुँह में रखते हुए बोली—ऐसा कोई शारीरिक रोग मुझे भी नहीं दीखता।

ओङ्कार—तो क्या है?

सोना—उदास रहा करते हैं।

ओङ्कार—उदास क्यों रहते हैं? तुम तो जानती होगी।

सोना—अभी कुछ ही दिनों में उन पर बहुत सी आफ़तें

पड़ गई हैं। उनके पिता नहीं रहे। एक मुक़द्दमा उठ खड़ा हुआ था। उसमें जाने कितना रुपया स्वाहा हो गया। एक पुल बनाने का ठेका लिया था। उस ठेके ने उनका सब हर लिया। एक लाख रुपए का घाटा हुआ।

ओङ्कार ने दुखित होकर कहा—बहुत बुरा हुआ।

सोना—बेचारे बड़े भले आदमी हैं। जान पड़ता है, परमात्मा अच्छे-अच्छे आदमियों को ही ढूँढ़ कर कष्ट देता है। न किसी का लेना, न किसी को देना; अपने काम से काम रखते हैं। बेमतलब किसी की तरफ़ आँख उठा कर ताकते तक नहीं। इतने पर भी भगवान् ने दुःख से उनका नाता जोड़ दिया है। माला की गुरियों की तरह उनका कभी अन्त नहीं होता।

ओङ्कार सोना के मुख की ओर टकटकी लगाए सुनता रहा।

सोना कुछ रुक कर फिर कहने लगी—जैसे अच्छे वह हैं, वैसी ही मालकिन भी हैं। जिस समय मैं पहले-पहल दीन अवस्था में उनके पास गई थी, उन्होंने मुझे दुरदुराया नहीं था, बड़े ध्यान से मेरी दुःख-कहानी सुनी थी। फिर दया करके मुझे अपने पास रख लिया था। तब से अब तक मुझ पर बड़ा प्रेम करती आई हैं। इतने दिन हो गए, कभी एक बात भी कड़ी नहीं कही। ऐसी अच्छी तरह बोलती हैं कि क्या कहूँ। मुझे दासी समझतीं ही नहीं। इस तरह व्यवहार

करती हैं, जैसे उनका कोई घरू आदमी हो। मुझे उनकी देख-रेख करनी चाहिए, वह मेरी देख-रेख किया करती हैं। बार-बार पूछा करती हैं, किसी चीज़ की ज़रूरत तो नहीं है? ज़रूरत पड़ने पर निस्सङ्कोच माँग लिया करना। ऐसी भलमनसाहत बिरलों में ही देखने में आती है।

ओङ्कार—मैंने भी तुम्हारी मालकिन की बड़ाई सुनी है।

सोना—वह बड़ाई करने के क़ाबिल ही हैं।

ओङ्कार—उनका अच्छा सा तो नाम है। अरे,...देखो।

सोना—उनका नाम चन्दा है।

ओङ्कार—हाँ-हाँ, चन्दा।

सोना—जैसा नाम है, वैसी ही अमित कान्ति भी है।

ओङ्कार—वह बड़ी सुन्दर हैं।

सोना—क्या ऐसी-वैसी? उनकी ऐसी सुन्दरता बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं के ऊँचे-ऊँचे महलों में भी नहीं देखने को मिलेगी। मैंने बहुतों को अपनी ख़ूबसूरती का दम भरते देखा है। सच कहती हूँ, कोई उनके पैर का धोवन भी नहीं है।

ओङ्कार—क्या तुमने कुमारी के नाम की किसी गाने वाली को देखा है?

सोना—कुमारी को मैं नहीं जानती। इतना दावे के साथ कह सकती हूँ कि उनका जोड़ मिलना कठिन है; कठिन ही नहीं, वरन् असम्भव है। इसी सुबाला ही को न देखो। ठीक उन्हीं को पड़ी है। कैसा बर्फ़ के समान सफ़ेद और

मक्खन की तरह मुलायम चेहरा है। आँखें देखो, कितनी बड़ी और चमकदार हैं।

ओङ्कार—सुबाला बड़ी होने पर चन्दा ही निकलेगी।

सोना—और नहीं क्या ? यह तो होगा ही। राह चलने वाले इसे देख कर इतने मोहित हो जाते हैं कि बिना गोद में लिए नहीं रहते।

ओङ्कार के हृदय में अचानक एक विचित्र विचार उत्पन्न हुआ। यदि किसी तरह सोना वश में हो जाय, तो चन्दा के पाने में कुछ न कुछ सुविधा अवश्य होगी। इससे बड़ी सहायता मिलेगी। असम्भव नहीं, यह मेरी इच्छा पूर्ण करा देने में समर्थ हो सके। ओङ्कार अभी ही से अभीप्सित विजयाह्लाद में मग्न हो गया। आशा की सैकड़ों बिजलियों ने एक साथ चमक कर उसके मार्ग में सहसा प्रकाश फैला दिया। क्षण ही भर में उसने अपना सङ्कल्प स्थिर कर डाला। सोना से बोला—सोना, देखो बुरा नहीं मानना। एक बात पूछता हूँ।

सोना—पूछो।

ओङ्कार—सुन्दरता किसे कहते हैं ? वह कैसे पहचानी जाती है ?

सोना—जो आँखों को अच्छा लगे, वही सुन्दर है।

ओङ्कार—यही बात है न !

सोना—इसके सिवा दूसरी हो ही क्या सकती है ?

ओङ्कार—यदि ऐसा ही है, तो मेरे सामने चन्दा की बड़ाई मत करो। मेरी आँखों में एक दूसरी ही मूर्त्ति समा गई है। उसके रहते मैं किसी अन्य के रूप की प्रशंसा नहीं सहन कर सकता। मेरे लिए उसके आगे सब तुच्छ हैं। सारी सृष्टि के सौन्दर्य को मैं उसी में व्याप्त समझता हूँ। वह सुन्दरता की खान है। मनोहरता की साक्षात् प्रतिमा है।

सोना ज़ोर से खिलखिला कर हँस पड़ी। कहा—सिर कुछ गर्म हो उठा है क्या? कैसी पागलपन की बातें कर रहे हो!

ओङ्कार—दुनिया का दस्तूर यही है। तुम्हारा कुछ दोष नहीं। प्रेमी को सब पागल करके ही मानते हैं।

सोना उसी प्रकार हँसते हुए बोली—अच्छा! तब तो जान पड़ता है, तुम प्रेमियों की पहली क़तार में पहुँच गए हो। मजनूँ और फ़रहाद तुम्हारे सामने कुछ नहीं हैं। भला मैं भी तो सुनूँ, तुम्हारी वह मनमोहनी कौन है?

ओङ्कार—तुम तो अभी से मेरी हँसी उड़ाती हो। जो कहूँगा, उस पर विश्वास कैसे करोगी?

सोना—विश्वास तो शायद सचमुच नहीं करूँगी। तुम ऐसी बातें ही करते हो।

ओङ्कार ने एक साँस फेंक कर कहा—विश्वास ही न होगा तो कहने से क्या लाभ?

सोना को यह बात कुछ बुरी लगी। मुँह बनाते हुए

उसने कहा—मैं तुम्हें बिना लाभ के कोई बात कहने के लिए बाध्य नहीं करती। कहो या नहीं, मुझे इसकी परवा नहीं। किसी की बात सुनने के लिए मैं इतनी उत्सुक नहीं रहा करती।

ओङ्कार अपने दाहिने कन्धे पर सिर लटकाए दृष्टि ऊपर को किए था। सोना झपट कर कमरे से बाहर हो गई। पीछे-पीछे सुबाला भी चली गई।

न ही मन गुनगुनाते हुए ओङ्कार ने कहा—खिड़की कभी खोली ही नहीं गई क्या ? बँगला बनने के बाद से यों ही बन्द पड़ी है। राई बराबर यहाँ से वहाँ नहीं होती।

बहुत देर तक प्रयत्न करने पर भी जब वह नहीं खुली, तब क्रोध में आकर ताक़त भर उसे अपनी ओर को खींच लिया। भड़ाके का शब्द हुआ। दोनों पल्ले पटापट करके दीवार से भिड़ गए। चन्दा अपने मकान के दुमञ्ज़िले में खड़ी खिड़की के बाहर लगे हुए छड़ों में से एक को पकड़े हुए बाहर झाँक रही थी। आवाज़ सुन कर चौंक पड़ी। उधर देखा तो ओङ्कार से आँखें मिल गईं। ओङ्कार अचानक अपने चित्त को चुरा लेने वाली को देख कर फूला अङ्ग न समाया। बहुत दिनों तक भूख से

तड़पते रहने पर मानों किसी क्षुधा-ग्रस्त मनुष्य ने पकवानों से भरा थाल पा लिया हो ; जैसे किसी अकिञ्चन को स्वर्ग का राज्य मिल गया हो। बड़ी देर तक वह चन्दा को देखता रहा। भूतल पर इस प्रकार की सुन्दरता है, यह उसने कभी न विचारा था। चन्दा का मुख-कमल सचमुच चन्द्र के समान चमक रहा था। उसकी आँखों की ज्योति तीर के सदृश सीधी आकर हृदय को छेद रही थी। पान से रचे हुए लाल अधर हृदय का ख़ून किए डालते थे। उभरे हुए वक्षस्थलों के कारण छाती चौड़ी होकर बड़ी भली दीखती थी। वहाँ से पतली कमर तक एकदम ढाल था। बनाने वाले ने बड़ी कारीगरी की थी। नितम्ब फिर कुछ चौड़े होकर जाँघों के साथ सुघड़ता से मिल गए थे। कदली-खम्भ की तरह धीरे-धीरे पतली होती हुई जाँघों ने घुटनों से अपना संयोग किया था। ओङ्कार की दृष्टि एक बार चन्दा के सब अङ्गों पर पड़ कर उसके मुख पर स्थिर हो गई; अनिमेष नेत्रों से उसे निहारता रहा। पहले तो चन्दा उसी प्रकार खड़ी रही, पर जब उसने ओङ्कार को एकटक अपनी ही ओर देखते पाया, तब वहाँ से हट गई। उसका यह असभ्य व्यवहार अच्छा नहीं लगा। चन्दा के हट जाने पर ओङ्कार व्याकुल हो उठा। अपनी तीव्र दृष्टि से दीवार को फोड़ डालने की चेष्टा की। कहाँ गई ? देर तक आँखें फाड़कर ढूँढ़ता रहा। उसकी दशा उस समय उस मनुष्य के समान हो गई, जो स्वप्न में रत्न पाने पर

नींद टूटने के पश्चात् अचेत अवस्था में उसे खाट पर टटोलता हो। उस पूर्णिमा के चाँद को देखने का उद्योग विफल हुआ। अमावस्या आ गई। आँखों के सामने अँधेरा छा गया। उसी समय सहसा दूज का छोटा चन्द्र एक तारे के साथ उदित हुआ। सुबाला सोना की गोद में हँसती हुई जा रही थी। ओङ्कार जल्दी-जल्दी नीचे उतर आया। सुबाला को इशारा किया। वह मचल कर सोना की गोद से उतर पड़ी और आकर ओङ्कार का हाथ पकड़ कर खड़ी हो गई। सोना भी आई। मुस्कराकर कहा—मुझे बुलाने का तुमने यह अच्छा ढङ्ग निकाला है।

ओङ्कार—मैंने तुम्हें नहीं बुलाया, आप ही आई हो।

सोना—आप ही आई हूँ?

ओङ्कार—हाँ।

सोना—तो फिर जाती हूँ।

ओङ्कार—आई हो तो बैठ लो।

सोना—तुम तो इस तरह कह रहे हो, जैसे मुझ पर कोई एहसान करते हो।

ओङ्कार—मैं क्या एहसान करूँगा? तुम्हारे ही मुझ पर अनेकों एहसान हैं। बैठो।

सोना—जब मेरा कोई काम ही नहीं है और तुमने मुझे नहीं बुलाया, तब क्यों बैठूँ? चला जाना ही अच्छा है।

सोना घूम पड़ी। ओङ्कार ने हँस कर कहा—तुम तो सच ही चल पड़ीं। अच्छा, बुलाया है। आओ, कुछ काम है।

सोना ने सामने होकर पूछा—क्या काम है ?

ओङ्कार—यही थोड़ी देर बातें करो। तुम्हारी बातें बड़ी अच्छी लगती हैं। कहो, कहाँ से आ रही हो ?

सोना ओङ्कार को कौतूहलवश करती हुई बड़ी देर तक हँसती रही। फिर कहा—मेरे आने की कहानी बड़ी मज़ेदार है। सुनाऊँ ?

ओङ्कार—सुनाओ। मैं ध्यान से सुनूँगा।

सोना—एक दिन मैंने मालकिन को अङ्गूर खाते देखा था। किसी से कुछ माँगने की मेरी आदत नहीं है। किसी को कुछ खाते देखती हूँ, तो उसके पास खड़ी भी नहीं होती। मेरा स्वभाव है कि मुझे कोई कुछ देता है, तो मैं नाहीं कर देती हूँ। जीभ ही तो है। उस समय मचल गई। मेरी भी अङ्गूर खाने की इच्छा हुई। मालकिन ने मुझे देख कर कुछ अङ्गूर देने चाहे। स्वभाव-वश सिर हिलाकर मैं वहाँ से चल दी। आज बाज़ार जाकर पूछा। एक के पास अङ्गूर के बहुत से डिब्बे रक्खे थे। क़ीमत पूछी, आठ आने बताए। तुरन्त अठन्नी फेंककर एक डिब्बा ख़रीद लिया। घर आकर खोला, तो उसमें पहला भरा था। कुल तीस ठो छोटे-छोटे अङ्गूर निकले। पैसे का एक भी न पड़ा। अमृत तो था नहीं। तबीयत झल्ला गई। उन्हें किसी तरह हँसते-रोते खा

लिया। फिर छूछा डिब्बा लेकर कुँजड़े के पास पहुँची। कहा, वाह जी! यह क्या है? तुमने मुझे भोली जानकर ख़ाली डिब्बा ही थमा दिया।

ओङ्कार ने ठहाका लगाकर कहा—अच्छी दिल्लगी रही!

सोना—सुनो तो; तब कुँजड़े ने कहा, ऐसा कभी नहीं हो सकता। डिब्बा कभी ख़ाली नहीं निकल सकता। मैं क्रोध दिखाकर बोली, तो क्या मैं झूठ कहती हूँ? वह कुछ डरा। बोला, तुम्हें झूठी भी नहीं बना सकता। देशावर से ऐसा ही आया होगा। मैं क्या करूँ? मैंने कहा, देशावर से मुझसे क्या मतलब? मैं तुमको जानती हूँ। अङ्गूर के लिए आठ आने पैसे दिए थे, कुछ ख़ाली बाँस के डिब्बे के नहीं। मैं बहुत तेज़ी के साथ बातें कर रही थी। दो-चार खोटी-खरी और सुनाने पर उसने वह डिब्बा बदल कर मुझे दूसरा भरा हुआ दे दिया। उसी को लिए चली आ रही हूँ। यह देखो। इसे मैंने वहीं खोल कर देख लिया था। पचास अङ्गूर हैं।

ओङ्कार ने हसते हुए कहा—तुम तो बड़ी धूर्त्त औरत हो।

सोना—अभी जानते क्या हो? बिना धूर्तता के संसार में रहना कठिन है। मैं बिना कारण किसी को दुख देना नहीं चाहती। यह लुटेरे को दण्ड दिया गया है।

ओङ्कार—और यह दण्ड बड़ी सुन्दरता के साथ काम में लाया गया है।

सोना ने अङ्गूर निकाले। तीनों जनों ने बाँट कर हँसते-हँसते खाया।

चन्दा की याद सोना की लच्छेदार बातों में अभी तक छिपी हुई थी, उसके चले जाने पर फिर वही चिन्ता सवार हो गई। एक स्थान पर बैठे रहने में मन नहीं लगा। उठ कर कमरे में इधर-उधर घूमने लगा। इससे भी जी ऊब गया, तब घर जाने की ठहराई। कपड़े पहने। बाहर निकलते समय हठात् कुमारी का स्मरण आ गया। चलो वहीं चलूँ, ज़रा देर मन बहलेगा। बहुत दिनों से नहीं गया। होता आऊँ। सुर्य ज़ोर से तप रहा था, छाता लगाए रहने पर भी जल्दी पसीने से तर हो गया। साइकिल क्यों न लेता आया? ज़रा सी स्पीड तेज़ कर देता तो सरसराते हुए जाकर वहीं उतरता। ज्यों-त्यों करके कुमारी का घर आया। कालिका बाहर दालान में बैठा हुआ एक दूसरे लड़के के साथ गोटी खेल रहा था। ओङ्कार को देखते ही छुई के निशान मिटा और गोटियों को यहाँ-वहाँ फेंक उठ खड़ा हुआ। कुछ देर तक खड़ा हँसता रहा। फिर कुमारी को ख़बर देने के लिए भागा। जाकर जल्दी-जल्दी बोला—माँ जी, बाबू आए हैं।

कुमारी—कौन बाबू?

कालिका—वही बाबू, जो बहुत दिन से नहीं आए। पहले ख़ूब आते थे।

कुमारी समझ गई, इसका मतलब ओङ्कार से है। जल्दी से धोती सुधार ली और बालों को समेट लिया। कुर्सी पर बैठ कर दरवाज़े की ओर देखने लगी। ओङ्कार के आने पर दौड़ कर हाथ पकड़ लिया। कहने लगी—क्या कोई ऐसा भी करता है। इतने दिनों तक बिलकुल ख़बर नहीं ली—मरती हूँ या जीती ?

ओङ्कार ने कालिका को चले जाने का इशारा करके कुमारी से कहा—क्या करूँ ? तुमसे कुछ छिपा थोड़ा ही है। आजकल मेरी स्त्री बड़ी सावधान रहती है। हर समय मुझे नज़र तले रखती है। कहीं आने-जाने नहीं पाता। आज तो बिल्ली के भागों छींका टूटा। वह पड़ोस में किसी मिलने-वाली के यहाँ गई हुई है। मौक़ा पाकर मैं यहाँ खिसक आया हूँ।

कुमारी—तुमसे भले ही अड्डे पर का कबूतर बन कर रहा जाता है, मैं तो कभी न रहूँ।

ओङ्कार—तुम बिलकुल स्वतन्त्र हो, मेरी बात दूसरी है।

कुमारी—यह भी एक ही कही। पुरुष से बढ़ कर स्त्री कहीं स्वतन्त्र हो सकती है ? तुम चाहो तो मनमाना करो। न जाने कैसे दब्बू बन कर रहते हो !

ओङ्कार—तुम्हें मेरी स्त्री से डाह होता है क्या ?

कुमारी—मेरा किसी से डाह करने का स्वभाव नहीं है। पर जब अपने जीवन-धन का दिन में एक बार भी दर्शन नहीं कर पाती, तब जरूर ही कुछ न कुछ बुरा लगता है।

कुमारी की बातचीत में नशे सरीखा प्रभाव था। ओङ्कार ने रूमाल निकाल कर मुख पर का पसीना पोंछा, फिर कोट उतार कर घायल की तरह पलङ्ग पर जा लेटा।

चन्दा का फ़ोटो भीतर की जेब में रक्खा था। संयोग से वह गिर पड़ा। कुमारी उसे उठाकर उत्सुकतापूर्वक देखने लगी। पूछा, यह किसका फ़ोटो है। बड़ी सुन्दर जान पड़ती है।

ओङ्कार चौंक पड़ा। उसका हृदय धड़क उठा। झपट कर कुमारी के हाथ से फ़ोटो छीनते हुए कहा—छोड़ो, यह तुम्हारे काम का नहीं है।

कुमारी जल उठी। पर वह अपने मन का भाव छिपाने में अत्यन्त कुशल थी। मुस्कराकर कहा—मालूम होता है, इसी रमणी के प्रेम-पाश में तुम फँस गए हो। मुझे मन से उतार दिया है। इसी से कई दिनों तक दर्शन भी नहीं दिए।

ओङ्कार ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। जाकर कोट पहन लिया। बोला—मुझे एक बात याद आ गई है। एक

मित्र के यहाँ बुलावा है। अब समय हो चुका, जाता हूँ। फिर आऊँगा।

ओङ्कार लम्बे-लम्बे डग बढ़ाकर चला गया। कुमारी देखती रह गई।
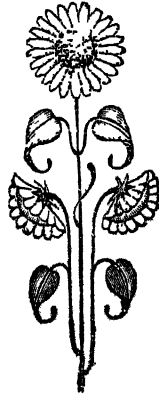
नपुर में और आसपास के दूसरे नगरों में अचानक बड़ी सनसनी फैल गई। लोगों की स्थिरता जाती रही। दिन-दहाड़े घर से बाहर निकलना भयप्रद हो गया। रात में नींद हराम हो गई। डर के मारे एक समय का खाना दूसरे समय नहीं पचता था। लोग पीपल के पत्ते की तरह चौबीसों घण्टे काँपा करते थे। पता नहीं, कब क्या हो जाय? स्वामिनी का नाम सुनते ही होश उड़ जाते थे। पुलिस-विभाग ने शान्ति क़ायम करने का कठिन उद्योग किया। दिन-रात में शहर के कई चक्कर काटे जाते थे। नाके-नाके पर एक-एक के स्थान पर दो-दो कॉन्सटेबिल तैनात कर दिए गए थे, रह-रह कर सीटी बजा करती थी। फल कुछ नहीं निकला। न जाने कौन लोग शैतान की तरह आकर अपना काम कर जाते थे। अफ़सरों के सामने कई घटनाएँ

घटीं। कोई कुछ नहीं कर सका। कर्मचारीगण देखते ही रह जाते थे। सच तो यह है कि डर के मारे उनकी भी आँतें निकली पड़ती थीं।

किन्तु यह अत्याचार सब पर नहीं किया जाता था। बेचारे ग़रीब, धार्मिक, सज्जन पुरुष और अनाथ विधवाएँ सर्वथा बचती रहती थीं। कुटिल, पाखण्डी, धूर्त्त, धर्मध्वजी, अत्याचारी, व्यभिचारी, दुराचारी और असहायों का रक्त चूस-चूस कर समृद्धिशाली बने हुए नर-पिशाचों की नाकों दम आ गया। गुण्डों और छैलों की विशेष रूप से ख़बर ली गई। रात को दो-दो बजे तक गलियों में घूम-घूम कर टप्पा, ठुमरी और अश्लील ग़ज़लें गाने वालों की टाँगें बेकाम कर दी गईं। मुफ़्त का माल ठूँस-ठूँस कर खाने के कारण फूले हुए तोंद पिचका दिए गए। यह सब काम करने वाले बड़े निडर थे। स्वामिनी जी के अनुचर ज़ोर-ज़ोर से मुहल्ले भर को काँपते हुए स्वामिनी जी की जय बोलते थे। जाते समय चिल्लाकर कह जाते थे, स्वामिनी जी की आज्ञानुसार यह दण्ड दिया गया है। यदि फिर कभी सत्य-मार्ग छोड़ोगे अथवा अबोध बालिकाओं, विधवाओं और दुर्बल सती स्त्रियों पर आँख उठाओगे, तो प्राण हर लिए जायँगे।

एक मनुष्य कहीं से चार-पाँच कन्याओं को उड़ा कर कानपुर लाया। मन चले रईसों के हाथ उनको बेच डालने की बात पक्की की। रात को उसके घर डाका पड़ गया।

अन्याय से अपहरण किया हुआ सञ्चित धन लूट लिया गया। कन्या-विक्रेता पर बेभाव की मार पड़ी। चेता दिया गया कि भविष्य में ऐसा कभी नहीं करना। कन्या ख़रीदने की हामी भरने वालों की भी बड़ी दुर्गति हुई। कौड़ी के तीन कर दिए गए।

गङ्गा में माल से लदी किसी धनिक की नाव चली जा रही थी। सन्ध्या होते-होते लुट गई। ख़ाली नाव पेंदे में छेद कर के डुबा दी गई। उस पर के सब सवार लोग सिर पर पैर रख कर भागे।

एक दिन शहर भर की वेश्याओं के पास एक-एक पत्र पहुँचा। हर एक पत्र में पाँच-पाँच सौ रुपए के नोट रक्खे थे। पत्र में पवित्र जीवन एवं सच्चरित्रता की महिमा का बखान करते हुए अनेक अच्छी-अच्छी हिदायतों के साथ लिखा था—इज़्ज़त से रहो, वरना चेहरा बिगाड़ दिया जायगा।

बूढ़ों के ब्याह में हर समय उपद्रव खड़ा हो जाता था। कोई अनमेल-विवाह न होने पाता। सब प्रबन्ध तहस-नहस कर दिया जाता था। कई बार तो ऐसा हुआ कि बूढ़े के स्थान पर उसी कुल-गोत्र का कोई सुयोग्य युवा किन्हीं अदृश्य हाथों द्वारा लाकर खड़ा कर दिया गया। सम्पूर्ण क्रियाएँ उसी के साथ सम्पन्न हुईं। कन्या की फेरी उसी के साथ दी गई।

किसी कन्या का पिता अपनी पुत्री के विवाह में अधिक व्यय न कर सकने के कारण बहुत चिन्तित हो रहा था।

लोगों के कटु वाक्य क्षण-क्षण में सहने पड़ रहे थे। दैवात् उसे अपने घर में कई हज़ार की थैली मिली। तब तो दिल खोल कर धूमधाम से विवाह किया गया।

एक अनाथ दरिद्र स्त्री के बच्चे भूख से तड़प रहे थे। बार-बार खाने को माँगते थे। पास कुछ नहीं था। क्या दिया जाय ? बेचारी आँसू बहा रही थी। दूसरे दिन उसकी मड़ैया अनाज के बोरों से भर गई। वह मालामाल हो गई।

इसी तरह अनेकों बार स्वामिनी की प्रेरणा से दुष्टों का दमन और अनाथों की सहायता की गई।
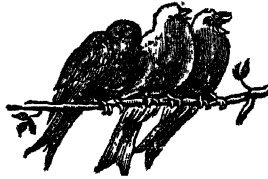
श्वरप्रसाद को गङ्गा-किनारे टहलने जाते देख ओङ्कार उसके पीछे हो लिया। यह अवसर अच्छा और बड़े सुभीते का है। दो-चार बातें हो सकेंगी। पैर बढ़ा कर वह उसके पास पहुँच गया और बन्धुत्व दिखाते हुए बोला—कहिए, घूमने के विचार से निकले हैं क्या?
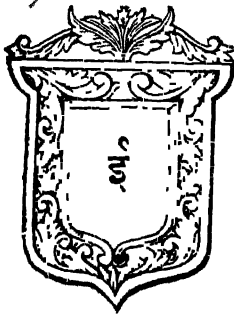
ईश्वर—सन्ध्या के समय गङ्गा के किनारे घूमने के अतिरिक्त और क्या काम हो सकता है?

ओङ्कार—यह तो ठीक है। मैंने सोचा था, शायद एक पन्थ दो काज हो।

ईश्वर—नहीं, कोई कार्य नहीं। अकेले बैठे-बैठे किसका जी नहीं ऊब जाता? इच्छा हुई, गङ्गा की सैर करूँ। चला आया।

ओङ्कार—आप बाहर दीखते नहीं, नहीं तो थोड़ी देर के लिए मैं ही आपके पास आ जाया करता। ठीक सामने बिलकुल पास रहता हूँ। आपने बातचीत करने का मुझे कभी अवसर ही नहीं दिया। आज आपके साथ इस तरह बातचीत करते हुए टहलने में मैं अपना परम सौभाग्य समझता हूँ।

ईश्वर—स्वास्थ्य कुछ बिगड़ा रहता है, इसी से विवश हूँ। आपने मुझे किसी से मिलते-जुलते न देखा होगा।

ओङ्कार—उस दिन मेरे यहाँ ज्योनार हुई थी। आपके न आने का मुझे बड़ा खेद रहा।

ईश्वर—मुझे भी बड़ा दुःख है कि मैं आपका प्रथम अनुरोध भी पूर्ण करने में समर्थ न हो सका।

बातें करते हुए दोनों बग़ीचे में पहुँचे। देर तक इधर-उधर टहलते रहे। कभी वृक्षों के नीचे से झुक कर निकलते, कभी फूलों के पास से निकल जाते। ओङ्कार ने गुलाब के दो खिले हुए फूल तोड़े। एक ईश्वरप्रसाद के हाथ में देकर कहा—कवियों ने गुलाब को फूलों का राजा माना है। सुन्दरता में निश्चय यह अद्वितीय है। पर सुगन्ध तो मुझे बेले की अच्छी लगती है। चम्पे की मिठास भी मन को प्रसन्न किए बिना नहीं रहती।

ईश्वर—बहुत दिनों की खोज-ढूँढ़ के पश्चात् विद्वानों ने जो बात निर्धारित कर दी है, उसकी सत्यता में सन्देह

नहीं। शायद हम लोग इसकी परख न जानते हों। सब झगड़ों से अलग होकर यदि देखा जाय, तो सीधी बात यह है कि अपनी-अपनी रुचि के अनुसार सब चीजें भली और बुरी हैं। लाख कोई कहे, दूध गुणकारी है; हितकारी है। कहता रहे। जब हमें हज़म ही नहीं होता, तब कैसे मान लें ?

ओङ्कार ने हँसकर कहा—आपने पूर्ण सन्तोषजनक उत्तर दिया है।

आठ बजते ही ओङ्कार बँगले पर लौटा। सोना बाहर की सीढ़ी पर बैठी हुई सुबाला को खेला रही थी। सुबाला देखते ही पिता के पास दौड़ गई। ओङ्कार ने सोना से कहा—आओ, भीतर चली आओ।

सोना अँगड़ाई लेकर उठी। एकाएक उसके हृदय में न जाने क्या हो गया। वह ज़ोर से काँप उठा। अज्ञात भय तथा संशय का भाव उसमें समा गया। प्रत्यक्ष कारण कुछ नहीं था। सोना का मन घर जाने को हुआ। इसी समय किसी मोह ने आकर धर दबाया। पाँव नहीं उठे। सोना न भीतर जाती थी, न घर ही। संशय और मोह में तुमुल आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। दोनों पक्ष सबल थे। किसी की विजय न होती थी। पलड़े दोनों बराबर थे, कोई झुकता न था। इतने में हवा का एक झोंका आया। मोह के पलड़े में धक्का लगा। वह नीचे झुक गया। सोना नहीं

जानती थी, हृदय में यह उथल-पुथल क्यों हो रही है? वह चकित थी।

ओङ्कार ने ताला खोला। मोमबत्ती जला कर कहा—आओ न, बाहर क्यों खड़ी हो?

कमरे में प्रकाश देख कर चित्त प्रफुल्लित हो गया। अज्ञात भय जाता रहा। सोना भीतर गई। ओङ्कार ने कोट उतार कर खूँटी पर टाँग दिया। बाएँ हाथ की कुहनी तकिए पर टिका, हथेली पर सिर रख, लेट गया। सोना से बोला—सोना! आज तुम और दिनों से अधिक सुन्दर दीखती हो। मुख पर मोहनी छाई हुई है।

सोना की आँखों में मोमबत्ती की ज्योति का प्रतिविम्ब पड़ा। वे चमक उठीं। कहा—क्यों हँसी करते हो?

ओङ्कार—हँसी नहीं, सोना, सत्य कहता हूँ। मेरे हृदय में बैठ कर देखो—सत्यता में सन्देह नहीं रहेगा।

सोना ने हँसकर कहा—ऐ है! क्या कहना है? इस तरह की चिकनी-चुपड़ी बातें न करो तो काम ही न चले। अभी उस दिन कहते थे, मेरी आँखों में दूसरी मूर्त्ति समा गई है। मुझसे किसी की बड़ाई न करो। आज खुद ही अनाप-शनाप बक रहे हो।

ओङ्कार—ओह! अभी तक तुम मेरा अन्तःकरण नहीं टटोल सकी हो। अच्छा, बोलो तो भला, मेरे हृदय में स्थित वह कौन-सी मूर्त्ति हो सकती है?

सोना—मैं क्या जानूँ ? तुम जानो, तुम्हारी मूर्ति जाने। मुझे क्या पड़ी है, जो इस खोज-ढूँढ़ में सिर पटकूँ ?

ओङ्कार—जानना चाहती हो ?

सोना—मैं पूछती नहीं। कहोगे तो सुन लूँगी।

ओङ्कार—कई दिनों तक मन में बात रक्खी। अब नहीं रख सकता। विश्वास करो या नहीं, पर कहे देता हूँ। मेरे मानस-मन्दिर में निवास करने वाली तुम्हीं हो।

ओङ्कार का सोना से हँसी करने का नाता था। ओङ्कार की हर एक बात को सोना हँसी समझती थी। किन्तु इसको वह योंही न उड़ा सकी। यह बड़ी गम्भीरता से कही गई थी। ओङ्कार की आँखों की ओर देखा। वे मद से भरी थीं। मुख पर चाह की चिकनाई झलकती थी। सोना का अन्तःशरीर काँप उठा।

सोना विधवा थी, पूर्ण युवती थी, रूपवती थी। उसकी अवस्था बड़ी भयानक थी। अपनी वासनाओं की भली-भाँति पूर्त्ति न होने के कारण उसके मन में भीतर ही भीतर आग सुलग रही थी। घी का छींटा पड़ते ही भभक उठी। ओङ्कार को अपने ऊपर अनुरक्त देख सोना प्रलोभन में पड़ गई। सब कुछ होने पर भी वह कुलटा नहीं थी। उसको धर्म का ज्ञान था, कर्तव्य से परिचित थी। सत्य का प्रकाश नेत्रों के सम्मुख घूम गया। वह सँभल गई। कुछ क्षणों के पश्चात् वही स्वाभाविक हँसी हँस कर बोली—रूपक का अभ्यास

तुम्हीं को अधिकता से है। मानस-मन्दिर! मानस किसे कहते हैं ? मानुष तो नहीं ? मेरी समझ में नहीं आया।

ओङ्कार—मानस का मतलब मन से है।

सोना—तब यह हुआ मन का मन्दिर। यही न ?

ओङ्कार—हाँ।

सोना—मन के मन्दिर में मेरा निवास कराने की अपेक्षा अच्छा होता, यदि तुम मुझे चित्त के चबूतरे पर बैठाते।

ओङ्कार ने देखा, बात दूसरी ही ओर ढली जाती है। मुख पर गम्भीरता का भाव लाया। होंठ को दाँतों से दबा कर हँसी को रोक लिया। सोना के मुख पर दृष्टि गड़ा कर कहा—तुम बड़ी कठोर हो।

सोना—कठोर कहाँ हूँ ? कहते चलो, तुम्हारी बातों में बड़ा मजा आता है।

ओङ्कार बड़े पसोपेश में पड़ गया। सोचा, इसको वश में लाना जरा टेढ़ी खीर है। पारे की तरह छटकती है। हाथों में आती ही नहीं। पर इसको मुट्ठी में किए बिना चन्दा का मिलना सहज नहीं है। यह तो, जैसे बने, करना ही पड़ेगा। किसी पुस्तक में ओङ्कार ने पढ़ा था कि कोई प्रेम दिखाते हुए यदि आगे बढ़ता है, तो प्रेमिका उसी वेग से पीछे हटती है। प्रेमिक जब ठहर जाता है, तो प्रेमिका भी रुक जाती है। उसके पीछे हटने पर वह आगे बढ़ने लगती है। जिस समय प्रेमिका आगे बढ़ रही हो, उस समय यदि प्रेमिक

झपट पड़े तो मिलन शीघ्र हो जाता है। एक बार इसी का प्रयोग क्यों न कर देखूँ? ओङ्कार किसी नाटक-कम्पनी में न रहा था, परन्तु किसी अवसर पर मनमाने तौर से मुख के उतार-चढ़ाव का भाव बनाने में देर न लगती थी। चाहे जब हँसने और रोने में अभ्यस्त ही था। उसने रोनी सी सूरत बना ली और कहा—अब क्या कहूँ? नहीं कहूँगा, तुम तो × × ×।

सोना—मैं तो तुम्हारी बातों का मर्म समझती ही नहीं। भाई, तुम ठहरे विद्वान्; मैं हूँ मूर्ख स्त्री। तुम्हारी विद्वत्ता की बातें कैसे समझ सकती हूँ? यहाँ तो वही हाल है कि 'भैंस के आगे बीन बाजे, भैंस बैठ पगुराय।'

ओङ्कार कुछ नहीं बोला। नीचे सिर करके दो-चार बार पलकों से आँखों को दबा कर उनमें पानी लाने का उद्योग किया।

सोना—बोलते क्यों नहीं? मैं मौन का अर्थ समझती हूँ, विदा। नहीं बोलोगे तो चली जाऊँगी।

ओङ्कार फिर भी चुप हो रहा। सिर उठा कर छल-छलाए हुए नेत्रों से उसकी ओर देखा, जैसे दया की भिक्षा माँग रहा हो।

सोना ने कहा—किसी की इच्छा न रहते हुए भी जबर्दस्ती बैठना मैंने नहीं सीखा। लो, जाती हूँ।

सोना ओङ्कार की ओर पीछे घूम-घूम कर देखती हुई

द्वार लाँघ गई। बाहर पहुँची तो पैर काठ हो गए। उन्हें न जाने क्या हो गया। आगे उठते ही न थे। मोह ने फिर अपना प्रभाव दिखाया। ओङ्कार की छल-जलपूर्ण आँखों ने हृदय को द्रवीभूत कर दिया। उसे ऐसी शोचनीय अवस्था में छोड़ जाना ठीक नहीं। मेरा यह काम पशुवत् होगा। वह पीछे लौटने पर विवश हो गई। द्वार पर आकर भीतर झाँका। ओङ्कार की टकटकी दरवाज़े पर लगी थी। किवाड़ से टिक कर सोना ने पूछा—आऊँ या नहीं? ओङ्कार ने धीरे से कहा—आओ।

सोना पास गई। उसके बठते समय ओङ्कार ने बाँह पकड़ कर उसे पलङ्ग पर खींच लिया। सोना के सारे शरीर में बिजली दौड़ गई। वह शिथिल पड़ गई। पलङ्ग पर गिर पड़ी। ओङ्कार ने उसे उठा कर छाती से टिका कर बैठा लिया। दाहिना हाथ उसकी कमर से लपेट दिया। प्रेम से पगे शब्दों में बोला—सोना! मरे को क्यों मार रही हो? मुझे अपनाओ। मेरे प्रेम का तिरस्कार मत करो। तुम्हारे बिना मैं नहीं रह सकता। मुझ पर दया करो। जब तक तुम्हें फिर नहीं देखा था तब तक कुछ नहीं था; अब देख लेने पर मन की बाढ़ नहीं रुकती। वही पहले का दृश्य आँखों के सामने नाचने लगता है। मेरे हृदय में वही पुराना प्रेम जाग्रत हो उठा है। क्या तुम पिछली बातें भूल गई हो? वे भूलने लायक़ नहीं हैं। अहा! जब तुम सीढ़ियों पर पैर पटकते

हुए आती थीं, तब मैं कितना पुलकित हो उठता था। बहुत दिन बीत चुके हैं, पर स्मृति अभी तक बनी है। आपस का हँसना-बोलना, एक दूसरे को रिझाने का प्रयत्न करना, रूठना और मनाना, क्या ये सब बातें कभी विस्मृत हो सकती हैं ? हम दोनों आपस में एक-दूसरे को किस तरह चाहते थे ? एक दूसरे को देखे बिना नहीं रह सकता था। तुम एक न एक बहाना करके नित्य मेरे पास आती थीं। ज़रा सी देर हो जाने से मैं कैसा व्याकुल हो जाता था ? तुमसे मिलने के लिए कोई उपाय नहीं उठा रखता था। बाहर जाते समय तुमसे बिदा होकर जाता था। लौटने पर प्रथम तुम्हारे मुख-दर्शन की अभिलाषा रहती थी। याद है, स्त्रियों के झुण्ड में बैठी रहने पर किस तरह मैं तुम्हें खोज निकालता था। पहली बार देखने पर ही मेरी दृष्टि तुम पर पड़ जाती थी। एक बार तुम दिन भर नहीं आईं। यह तुमने जान-बूझ कर मेरा मन टटोलने के लिए किया था। रात को आईं, तो नीचे ही बैठ रहीं। तुम खुद दुख उठा कर मुझे सताना चाहती थीं। नीचे सास के पास बैठ कर मुझे सुना-सुना कर ज़ोर से बातें करने लगीं। मेरा मन पढ़ने से उचट गया। किताब अलग रख दी। चिन्तित मन से तुम्हारे आने की राह देखने लगा। तुम काहे को आने लगीं ! उस दिन तुमने मुझे पूरी तौर से जलाना ठान लिया था। तब मैंने एक युक्ति सोची। लैम्प बुझा दिया। नीचे कोई दूसरा था नहीं। मैंने

सोचा था, सीढ़ी के ऊपर अँधेरा देखने पर सास तुम्हें दिया-सलाई लेकर भेजेंगी। वही हुआ। तुम्हें मेरे पास आना पड़ा। जब दोनों के मन की बातें खुली थीं, तब कितनी खिलखिलाहट मची थी। एक दिन मेरा सिर ज़ोर से दर्द करता था। बहुतेरी दवाएँ कीं, न अच्छा हुआ। तुम्हें देखते ही सब भूल गया। दर्द काफ़ूर हो गया। दूसरे दिन की बात सोचो। ख़ूब पानी बरस रहा था। ओले गिर रहे थे। तुम मेरे आँगन में ओले खाने के लिए आईं। उसी समय मैं बाहर जा रहा था। तुमने किवाड़ पर ज़ोर से धक्का मारा। एक पल्ला आकर मेरे सिर से भिड़ गया। लोहू निकलने लगा। तुम बहुत भयभीत हुईं। मैंने चोट की कोई परवा नहीं की। उसी समय हँसते हुए कहा था, चलो मैं तुम्हें ओले खिलाऊँ। देखो, उस चोट का निशान अभी तक बना है। और भी सैकड़ों बातें हैं। कहाँ तक कहूँ? कितना आनन्द था! कितना सुख था! वह पुराना प्रेम-भाव क्या हृदय से दूर हो सकता है? आजन्म नहीं भूलूँगा। तुम्हारा प्रेम मेरे हृदय की गहराई तक पहुँच गया है। सोना! प्रिय सोना! तुम प्राण हो, मैं शरीर हूँ। प्राण के बिना शरीर किस काम का? तुम मेरे हृदयालोक हो।

सोना अपने वश में नहीं रही। ओङ्कार की विषमयी मीठी बातों ने उसे पूर्णतया धोखे में डाल दिया। लोक-पर-लोक की सुधि जाती रही। धर्म-अधर्म का ज्ञान विलुप्त हो

गया। धीरे-धीरे सोना का सिर झुका। झुकते-झुकते आकर ओङ्कार के सिर से सट गया। उसके बाद...? उसके बाद सोना मिट्टी हो गई! सर्वनाश हो गया!
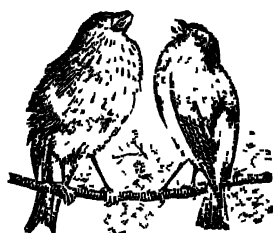
अठारहवाँ परिच्छेद

कुमारी फ़ोटो की बात और ओङ्कार का अनोखा बर्त्ताव नहीं भूल सकी। उसकी खिन्नता उत्तरोत्तर बढ़ती गई। एकादशी का दिन था। वह प्रत्येक एकादशी को व्रत रखती थी। शिव जी का पूजन करती थी। उस दिन उसके सब काम अनियमित रूप से हुए। एक बजे कहीं गङ्गा-स्नान करने गई। घण्टा भर पानी में डूबी रही। ढाई बजे घर लौटी। उपासना करने में भी बहुत विलम्ब हुआ। डेढ़ घण्टे तक आँखें बन्द किए ध्यान में मग्न रही। और दिन कुमारी बहुत सवेरे जलपान कर लिया करती थी, आज चार बज जाने पर भी भूख नहीं लगी। मारे चिन्ता के भूख का पता न था। कुमारी अपनी चिन्ता किसी को दिखाना न चाहती थी। उसने खूब शृङ्गार किया। बालों में तेल लगाया। अच्छी नई धोती पहनी। सब कुछ हुआ, पर खाया नहीं गया। पानी भी नहीं पिया। सूर्य डूबने के बहुत पहले ही से घूमने निकल पड़ी। मार्ग में एक ताँगा मिला, उस पर सवार हो गई।

कुमारी बिलकुल निरुद्देश्य घर से निकली थी। घूमने जाने का कोई निश्चित ठिकाना न था। ताँगे वाले से कह दिया, कहीं भी घुमा-फिरा कर सन्ध्या तक घर पहुँचा दो। किसी तरह समय बिताना था। मन को शान्त करना था। किसी तरह बहले भी तो। आज्ञानुसार ताँगे वाला अपने स्थान पर बैठ गया। घोड़े को दो-एक चाबुक जड़ दी। पहले उसने हिनहिना कर दुलत्तियाँ झाड़ीं, फिर कान खड़े करके भाग चला। ताँगे ने कई चौड़ी सड़कें तय कर डालीं। छोटी-मोटी गलियाँ तक न बचीं। कुमारी का मन शहर की चहल-पहल से न बहल सका। ऊँची-ऊँची हवेलियाँ, सजी हुई दूकानें, रङ्ग-विरङ्गे साइनबोर्ड, दौड़-धूप करते हुए मनुष्य, सब उसे बाइस्कोप की नीरस तसवीरों के समान जान पड़ते थे। कहीं उसका मन नहीं रमा।

ताँगा एक मोड़ पर पहुँचा। अरे! अरे! ओह! बाप रे! बग़ल से घरघराती हुई एक मोटर आ रही थी। पहले आड़ में रहने के कारण कुछ दिखाई नहीं दिया। जब वह बिलकुल पास आ गई, तब घोड़ा भड़का, क़ाबू में न रह गया। सड़क के किनारे एक लालटेन गड़ी थी। ताँगा उससे टकरा कर उलट गया। ताँगे वाला चिल्ला कर नीचे गिर गया। ख़ैर हुई—बहुत बचा, नहीं तो उसका स्वाहा था। कुमारी भी एक चीख़ मार कर गिर पड़ी।

मोतीलाल और ईश्वरप्रसाद में बहुत ही घनिष्ठता

वह कुमारी को उठाने के लिए नीचे झुका। फिर उसी क्षण रुक गया। एक अपरिचिता स्त्री के शरीर पर मैं कैसे हाथ लगाऊँ ? सीधे खड़े होकर इधर-उधर निगाह डाली। तब इसे कौन उठावेगा ? और उपाय न देख, कुछ समय के बाद स्वयं ही उसे गोद में उठा लिया और ले जाकर मोटर पर रख दिया। मोटर भीड़ को चीरती हुई अस्पताल की ओर चल पड़ी। रास्ते में ईश्वरप्रसाद ने विचारा, अस्पताल में इसकी ठीक-ठीक देख-रेख न हो सकेगी। कौन चौबीसों घण्टे इसके पास बैठा रहेगा ? जाने कब कौनसा काम लग जाय। इसे घर ही ले चलूँ तो क्या हर्ज है ? मेरी स्त्री खूब हिफ़ाज़त से रक्खेगी। वहीं डॉक्टर बुलवा लूँगा। अच्छी हो जाने पर अपने घर चली जायगी। बस, यही ठीक है। ड्राइवर से उसने कहा—घर लौट चलो। अस्पताल में नहीं, मैं इसे घर पर रक्खूँगा। वहीं दवा होगी। क्षण-भर में मोटर घूमी। हवा से बात करती हुई थोड़ी देर में ईश्वरप्रसाद के मकान पर पहुँच गई।

सोना दीवार से पीठ सटाकर बाहर बैठी थी। इतनी जल्दी अपने मालिक के वापस आ जाने का वह कोई कारण न समझ सकी। यह तो बहुत रात बीतने पर आने को कह गए थे। मोटर पर एक और स्त्री को पड़ी हुई देखकर वह बड़ी अचकचाई। पास आकर कभी उसकी ओर कभी मालिक की ओर देखने लगी।

ईश्वरप्रसाद ने सोना से कहा—इसे भीतर ले जाओ। देखो, सँभाल कर ले जाना।

ड्राइवर की तरफ़ मुड़ कर कहा—मोती बाबू से आज का कुल हाल कह देना। कहना कि वे इस घटना के कारण नहीं आ सके। कुछ ख्याल नहीं करेंगे।

ड्राइवर ने सिर हिला, सलाम करके बटन दबा दिया।
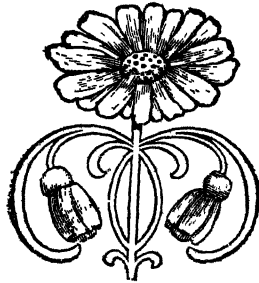
सकी आत्मा का बिलकुल ही ह्रास हो जाता है, उसकी बात तो दूसरी है; पर औरों को जाने अथवा अनजाने में कोई पाप कर लेने पर अवश्य खेद होता है। बेचारी सोना अपने सर्वस्व लुट जाने पर बड़ी कातर हो रही थी। किसी से कह देने से दुःख कुछ कम हो जाता है। किन्तु यह बात किससे कही जाय? वह भीतर ही भीतर सुलगी जाती थी। हृदय में ज्वालामुखी पर्वत अवस्थित था। कष्ट के भार को न सह सकने के कारण कई बार उसने आत्म-हत्या करना चाहा; किन्तु प्राणों का मोह अत्यन्त प्रबल होता है। जान-बूझ कर सहसा कोई नहीं मर सकता। कई बार उसने दोनों हाथों से अपना गला ज़ोर से दबाया, फिर छोड़ दिया। आह! परमेश्वर! जान भी नहीं निकलती कि इस विडम्बना से छुटकारा पा जाऊँ। सोना जितनी चञ्चला

थी, अब उतनी ही उदास रहने लगी। बिना काम के घर से बाहर पैर न रखती थी। यदि कहीं जाना पड़ता तो लाज से मरती हुई सिर नीचा किए जाती और उसी तरह चुपचाप लौट आती थी। उसका अधिकांश समय अपने कमरे के एकान्त कोने में ही व्यतीत होने लगा। सोना के सुन्दर मुख की सोने-सी दमक जाती रही। वह हतप्रभ होकर मलिन मुख रहने लगी।

भोजन बनाकर रक्खा। थाली में परसा भी। पर खाया नहीं गया। पहला कौर उठाते ही नीचे गिर पड़ा। पेट में आग जल रही थी। क्षुधाग्नि की अपेक्षा यह ज्वाला अत्यन्त प्रबल थी। वह एक कोने में सिकुड़ कर सो रही।

ईश्वरप्रसाद ने पुकारा—सोना!

क्या करती? विवश होकर उठना पड़ा। पराधीनता में अपना नहीं, दूसरे का मन देखा जाता है।

थोड़ी देर में फिर आवाज़ आई—सोना, ज़रा यहाँ आओ।

धीरे-धीरे वह मालिक के पास पहुँची।

उतरा हुआ चेहरा देखकर ईश्वरप्रसाद ने पूछा—यह क्या? तबीयत तो अच्छी है न?

सोना हार्दिक व्यथा को सूखी मुस्कराहट से छिपाकर बोली—अच्छी है।

ईश्वरप्रसाद ने उसे एक शीशी देकर कहा—लो, इसे

कुमारी को दे दो। डॉक्टर साहब दे गए हैं। कहना और तीन-चार दिन दवा पीने से देह में पहले की-सी ताक़त आ जायगी।

सोना मन में विचारती चली, कुमारी का नाम शायद मैं एक बार सुन चुकी हूँ। हाँ,—कुमारी—ठीक-ठीक, कुमारी गाने वाली—उसी ने तो कहा था। तब तो वह बड़ा दुष्ट है—बड़ा उच्छृङ्खल है! एक का नहीं अनेकों का सत्यानाश किया होगा। ऐसे पापी संसार में उपजते ही क्यों हैं? पृथ्वी का भार बढ़ाने के लिए; अबलाओं को सताने के लिए; दूसरे सुखी प्राणियों को दुःखी बनाने के लिए।

सोना ऊपर पहुँची। चन्दा रूमाल में फूल निकाल रही थी। सुई से डोरा निकल गया। अँगड़ाई लेकर उसने कुमारी से कहा—आह! इतनी देर तक बैठे-बैठे कमर तो दर्द करने लगी। बहिन, इसमें डोरा तो डाल दो।

सोना ने शीशी कुमारी के सामने रख कर कहा—डॉक्टर साहब दवा दे गए हैं। तीन-चार दिन और पीने से सब कमज़ोरी दूर हो जायगी।

कुमारी सुई में डोरा डाल चुकने के बाद मुँह बना कर बोली—ऊँह, दवा-अवा तो मैं अब नहीं पिऊँगी। ज़हर भी इतना कड़वा न होगा। मैं बिलकुल चङ्गी हूँ।

चन्दा ने सुई लेकर कहा—नहीं बहिन, हर्ज ही क्या है?

ऊपर से पान खा लेने पर सब कड़वाहट दूर हो जाती है। मीठी दवा गुण नहीं करती।

कुमारी—मुझे हुआ ही क्या है ? ताँगे से गिर पड़ने के कारण थोड़ी चोट आ गई थी। अब अच्छी हूँ। उठती हूँ, चलती हूँ, बात करती हूँ।

चन्दा ने सोना की ओर देख कर कहा—अरी सोना! तुझे क्या हो गया है ? आज बहुत दुबली दीखती है।

सोना हँसकर बोली—मुझे दवा खाने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी।

चन्दा ने रूमाल में टाँका लगाते हुए कहा—भोजन तो कर चुकी होगी ?

इसी समय भड़ाके की आवाज़ आई। तीनों का ध्यान उस ओर खिंच गया। ओङ्कार सामने की खिड़की से उन्हीं की ओर ताक रहा था। एक बार देख लेने पर अपनी प्राणा-धार को दुबारा देखने की लालसा बढ़ गई थी। छटपटा रहा था। थोड़ा-सा कुछ पा लेने पर अधिक पाने की आशा बल-वती हो उठती है। ओङ्कार ने वही किया, जो उस दिन हुआ था। अच्छा उपाय है। फिर खिड़की ज़ोर से खींची। सौभाग्य था। मनोरथ विफल नहीं हुआ। दर्शन हो गए, किन्तु यह क्या ? कौन ? कुमारी ! कुमारी यहाँ क्यो है ? यह यहाँ कैसे आ पहुँची ?

यहाँ कुमारी भी इसी प्रकार बड़े चक्कर में पड़ी। अरे,

यह तो ओङ्कार है! यहाँ कब से? ओह! वह तसवीर! दोनों एक ही हैं। बिलकुल फ़र्क़ नहीं। सब समझ गई। चन्दा से उसने पूछा—यह कौन हैं? बड़े निर्लज्ज जान पड़ते हैं।

चन्दा—होंगे कोई। मालूम नहीं। अभी कुछ दिनों से यहाँ रहने लगे हैं।

सोना ने आँखें गड़ा कर कुमारी को घूरा।

चन्दा अपनी सुई-डोरा रखने की छोटी-सी थैली और रूमाल लेकर खड़ी हो गई। बोली—चलो, दूसरे कमरे में चलें।

न्दा ने सोना से कहा—देख तो, सुबाला कहाँ है ? सबेरे से अभी तक कुछ खाया नहीं। उसे बुला ला। सोना ने ऊपर के दालान, छत और कमरे देखे। फिर नीचे आकर इधर-उधर खोजा। कहीं न मिली। सामने दृष्टि गई। वह ओङ्कार की गोद में बैठी हुई हाथ हिला-हिला कर बातें कर रही थी। वहाँ जाने की इच्छा नहीं हुई। लज्जा के कारण साहस भी नहीं हुआ। ओङ्कार पर उसे बड़ा क्रोध आ रहा था। दुरात्मा ने मुझे कहीं का न रक्खा। चारों ओर घूम कर देखा। कोई हो तो उसके द्वारा बुलवा लूँ। काम के लायक़ कोई न था। लाचार होकर पुकारा—सुबाला !

सुन कर सुबाला ने ओङ्कार से कहा—देखो, मैं अभी आती हूँ।

वह उतरने लगी। ओङ्कार ने उसे जोर से दबा रक्खा। जाने नहीं दिया। कहा—बैठो, बुलाने दो।

सोना ने फिर पुकारा—यहाँ आओ सुबाला! माँ बुला रही हैं।

सुबाला ने ओङ्कार से कहा—जाने दो, माँ बुलाती हैं।

ओङ्कार ने धीरे से कहा—उससे कहो, तुम आओ।

सुबाला चिल्ला कर बोली—तुम आओ।

सोना—जल्दी आओ, माँ ग़ुस्सा होंगी।

ओङ्कार—ठहरो, कहो, तुम आकर ले जाओ।

सुबाला—तुम आकर ले जाओ।

सोना—आती हो, नहीं?

ओङ्कार—कह दो, नहीं।

सुबाला—नहीं।

सोना ने जाकर मालकिन से कह दिया—वह उन बाबू के पास बैठी है। नहीं आती।

चन्दा कुछ चिढ़ कर बोली—अरी, कैसी है! बुला ला। लड़की भूखी होगी।

इस बार सोना ओङ्कार के पास तक चली गई। सुबाला से कहा—चलो, माँ बिगड़ रही हैं।

ओङ्कार सुबाला को छोड़ कर बोला—अब यहाँ आना बिलक़ुल बन्द कर दिया है?

सोना ने कोई उत्तर नहीं दिया। सुबाला का हाथ पकड़ कर चल दी।

ओङ्कार—बोलती भी नहीं। ज़रा सुनो।

आवाज़ मानो बहरे कानों में पड़ी।

ओङ्कार को सोना के इस व्यवहार का कोई कारण न दिखाई दिया। शायद शरमाती है। वाह! अच्छी शरम है! शरम काहे की? यह शरमाना ठीक नहीं। मेरे काम में एक बाधा है। मनुष्य भी कैसा स्वार्थी जीव है! अपने स्वार्थ के आगे वह दूसरे का हृदय नहीं देख सकता। ओङ्कार को कुमारी का ध्यान आ गया। इसके सिवा एक रुकावट और है। कुमारी का वहाँ रहना ठीक नहीं। कहाँ से कहाँ आ पड़ी। मेरे सामने एक चिन्ता बन कर खड़ी हो गई। इस घर से उसका कोई सम्बन्ध होना भी तो नहीं समझ पड़ता। सम्बन्ध रहने पर उसके विषय में उनसे कुछ छिपा नहीं रह सकता। फिर अन्दर पैर कैसे रखने दे सकते हैं? और हाँ, एक बड़े डर की बात है। मेरे पास उसने चन्दा का फ़ोटो देख लिया है। अब उसी के ठीक सामने मुझे रहते देख कर उसके मन में सन्देह आए बिना नहीं रह सकता। कुछ गोल-माल न कर बैठे। कौन ठिकाना, उसका क्या विश्वास? तब तो बड़ा बुरा होगा। मुफ़्त में बदनामी उठानी पड़ेगी। यह सब गुनाह बेलज्ज़त हो जायगा। सोचते-सोचते ओङ्कार उठ खड़ा हुआ और घर की तरफ़ चला।

देवी ने भोजन बना कर रख दिया था। ओङ्कार के आने की राह देख रही थी। जीवन ने आकर कहा—एक लड़का बाहर खड़ा है।

देवी ने उसे बुला लाने को कहा। कालिका भीतर आया। उसका मुँह उदास और आँखें डबडबाई हुई थीं। गालों पर आँसू की बूँदें गिर कर सूख गई थीं। देवी उसे पहचान गई। उसका चेहरा भूलने लायक़ नहीं था। हाँ, एक अन्तर अवश्य था। पहली बार वह ख़ूब हँसता था, आज रोता हुआ आया है।

देवी ने पूछा—क्या है रे? क्या हुआ? रोता क्यों है?

कालिका हिचकी लेकर बोला—मेरी माँ जी कहीं चली गई हैं। मुझे छोड़ गईं।

देवी—कहाँ चली गई हैं?

कालिका ने रोकर कहा—मालूम नहीं।

देवी—यहाँ क्यों आया है?

कालिका—खोजने आया हूँ।

देवी—यहाँ नहीं हैं। मैं नहीं जानती।

कालिका—बाबू जी जानते होंगे, वे बता देंगे।

देवी—उन्हें क्या मालूम?

कालिका—चार-पाँच दिन हुए बाबू जी उनके पास गए थे। उसके दूसरे दिन से वह वहाँ नहीं हैं।

देवी—कहाँ गए थे?

कालिका—मेरी माँ जी के पास।

देवी—अभी चार-पाँच दिन हुए वह तेरी माँ जी के पास गए थे?

कालिका—हाँ।

देवी—झूठ बोलता है।

कालिका—नहीं, सच कहता हूँ।

देवी—तभी से वह नहीं दीखतीं?

कालिका—हाँ, उसी के दूसरे दिन से।

देवी—पहले भी बहुत जाते थे?

कालिका—पहले बहुत जाया करते थे। बीच में छोड़ दिया था। उस दिन फिर गए थे।

देवी के हृदय का घाव नया हो गया। आँखों में ख़ून उतर आया। और कहाँ गई होगी? नए ऑफ़िस में ही डेरा किया होगा। अच्छा, आने दो। देखूँगी। बिना छल के कोई बात होती ही नहीं। हर एक काम में चाल भरी रहती है। नया ऑफ़िस नहीं, वह पतुरियों की सराय है। कालिका से उसने कहा—बैठो, बाबू जी आते होंगे। उनसे पूछना।

ओङ्कार आया। देवी ने कालिका को सामने खड़ा कर व्यङ्ग से कहा—यह लड़का तुमसे कुछ पूछना चाहता है।

ओङ्कार समझ गया, कुछ नया सामान है। जहाँ तक बन सका, तुरन्त अपने को आने वाली घटना के सम्मुख खड़े होने योग्य बना लिया। आश्चर्य दिखा कर पूछा—मुझसे?

देवी—हाँ, तुम्ही से।

ओङ्कार ने लड़के से पूछा—क्या पूछता है?

कालिका—माँ जी को खोज रहा हूँ। मिलतीं नहीं।

ओङ्कार—कौन माँ जी?

देवी—बड़े भोले बनते हो, मानों पहचानते ही नहीं। कौन माँ जी?

ओङ्कार—हाँ-हाँ, समझ गया। कहाँ चली गई हैं?

देवी—उलटे उसी से पूछते हो। उसे मालूम होता तो तुम्हारे पास क्यों आता?

ओङ्कार—मुझे ही क्या मालूम? मैं क्या उसके पीछे-पीछे घूमता-फिरता हूँ?

देवी कालिका से बोली—क्यों रे, ये तो कहते हैं कि मैं नहीं जानता। कब से वह नहीं दिखीं?

कालिका ने ओङ्कार की ओर देख कर कहा—उस दिन आप उनके घर गए थे, उसके दूसरे दिन से ही उनका पता नहीं है।

देवी—सुना!

ओङ्कार—मैं किसी के घर क्यों जाने लगा?

देवी ने नाक-भौं चढ़ा कर कहा—क्या यह वैसे ही कहता है? इसे झूठ बोलने की कौन सी ग़रज़?

कालिका—गए तो थे।

देवी—देखो, तुम्हारे मुँह पर तो कह रहा है।

ओङ्कार—ओह ! ठीक, याद आया। बुधवार की बात है। उसने एक मुक़दमा उठाया है। उसमें मुझे गवाह चुना है। इसीलिए उसके पास जाना पड़ा था। साफ़-साफ़ कह आया हूँ कि मेरा नाम गवाहों से निकाल दो; नहीं तो ठीक न होगा। मैं तुम्हारा गवाह नहीं बनना चाहता और न तुमसे कोई वास्ता रखना चाहता हूँ। सिर्फ़ इतना कह कर मैं तुरन्त उसके घर से चला आया था। इस लड़के से पूछ लो। क्यों रे, मैं तेरी माँ जी के पास ठहरा तो नहीं था? उसी समय लौट गया था न?

कालिका ने सम्मति-सूचक सिर हिला दिया।

ओङ्कार—देख लो।

देवी—कैसा मुक़दमा है?

ओङ्कार—मुझे नहीं मालूम कि कैसा मुक़दमा है। इसी से तो और बुरा लगा। न मुझे मुक़दमे का ओर मालूम न छोर, गवाह बना लिया। मुझे इसकी और पहले कोई ख़बर नहीं थी। कैसा अन्धेर है! मैं गवाह और मुझे किसी भी बात का पता तक नहीं। यह भी नहीं जानता कि मैं गवाह हूँ। उसी दिन मालूम हुआ। मैं चट जाकर नाहीं कर आया। झूठी गवाही देकर कौन पाप मोल ले? मुझे पड़ी ही क्या है?

देवी ने कालिका से पूछा—तुझे मुक़दमे का कोई हाल मालूम है?

कालिका ने सिर हिलाकर जता दिया कि वह कुछ नहीं जानता।

ओङ्कार—तुम भी उससे पूछती हो। वह क्या जाने मुक़दमा कैसा होता है?

देवी—जान पड़ता है, इसी मुक़द्मे की कोई उलझन सुलझाने के लिए वह कहीं गई हुई हैं।

ओङ्कार ने अपने को सफलीभूत हुआ देख, आती हुई मुस्कराहट को रोक कर कहा—ऐसा ही होगा।

सच्ची बातों पर चाहे लोगों का विश्वास जल्दी न जमे, पर झूठी बातें इतनी चटपटी होती हैं और उनमें ऐसी विचित्रता रहती है कि वे तुरन्त ही मन में घर कर लेती हैं। देवी के मन में भी ओङ्कार की झूठी बातें सुन कर अविश्वास का कोई कारण न रह गया। उसका क्षोभ दूर हो गया। प्रसन्न-चित्त हो कालिका से कहा—तेरी माँ जी का पता इन्हें नहीं मालूम। देखो, होंगी कहीं। जायँगी कहाँ?

वह बेचारा आँसू बहाता हुआ चला गया। देवी को उस पर दया आई। एक बार सोचा कि मालकिन के मिलने तक उसे अपने यहाँ रख लूँ। पर उसकी मालकिन है कौन? इसका विचार आते ही उसने अपना इरादा बदल दिया।

कालिका के चले जाने पर देवी ने ओङ्कार से भोजन करने के लिए कहा। ओङ्कार कपड़े उतार, पैर धोकर चौके

में जा बैठा। देवी ने प्रेम से परसा, ओङ्कार ने खाना आरम्भ कर दिया। देवी ने पूछा—साग और दूँ क्या?

ओङ्कार—हाँ, और दो। बहुत अच्छा बना है।

देवी ने साग दिया। फिर कुछ ठहर कर बोली—तुम जो रात को भी अपने नए ऑफ़िस में रह जाते हो, यह मुझे नहीं सुहाता।

ओङ्कार—क्या करूँ, काम के मारे ज्यादा देर हो जाती है। फिर नहीं आते बनता—वहीं सो रहता हूँ।

देवी—काम तो वही है। यहाँ पर दो-चार घण्टे भी मुश्किल से बैठते थे।

ओङ्कार—एक बड़ी झञ्झट आ पड़ी है। इङ्गलैण्ड से जो माल मँगाया था, वह यहाँ पर पूरा नहीं पहुँचा है—रास्ते में ही आधा गुम हो गया है। यह घाटा क्यों सहूँ? थोड़ा-बहुत भी नहीं है कि ग़म खा जाऊँ। हज़ारों का वारा-न्यारा हो जायगा। लिखा-पढ़ी कर रहा हूँ। एक-एक चीज़ का ब्योरा देना पड़ता है। खाते का एक-एक पन्ना उलटते हैरान हो जाता हूँ। थोड़ा काम नहीं है। मग़ज़ पिस जाता है।

देवी—यह हाल मुझे नहीं मालूम।

ओङ्कार—बताया तो था न?

देवी—मुझसे नहीं कहा।

ओङ्कार—न कहा होगा।

देवी—माल के लिए कब लिखा था?

ओङ्कार—जब ऑफ़िस घर ही पर था, तभी ऑर्डर दे दिया था। बहुत दिन हो चुके हैं। कहा न, आधा माल यहाँ आ गया है।

देवी—वह बँगला छोड़ दो। यहीं अपना सब काम किया करो। कब से छोड़ दोगे ?

ओङ्कार—देखो, इस झगड़े से फ़ुरसत पा लूँ तो छोड़ दूँगा। मुझे भी घर से इतनी दूर रहना अच्छा नहीं लगता।
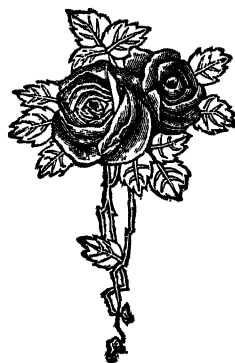
थोड़ी देर सरसरा कर घड़ी एक बार टन् से बोल गई। ओङ्कार की आँख खुल गई। एक बजा है। अभी रात बहुत बाक़ी है। फिर वह चादर तान कर लेट रहा। आँखें मूँद लीं। बड़ी देर तक पड़ा रहा, पर अब नींद नहीं आई। चन्दा की याद आ गई। उसी के विषय में सोचने लगा। कौन-सा उपाय किया जाय, जिससे मैं अपनी इच्छा पूर्ण कर सकूँ? वह मुझे कैसे मिले? इसमें सन्देह नहीं कि मैं उस रमणी-रत्न को पाकर अवश्यमेव असीम सुख का भोग करूँगा। पर हीरा पाने के लिए गहरी खदान खोदनी पड़ती है। मुझे उसके लिए बड़ी अड़चनें उठानी पड़ेंगी। उठाऊँगा। बिना कष्ट सहे आराम मिलता कहाँ है? संसार में कुछ असम्भव नहीं है। उद्योग करने से सब

मिल सकता है। मैं उद्योग में कमी नहीं करूँगा। तब वह मिलेगी कैसे नहीं ? मिलेगी और अवश्य मिलेगी। उद्योग के सामने सफलता हाथ बाँधे खड़ी रहती है।

घड़ी फिर एक बार टन् से बोली। अब बजा है एक। पहले मैंने सुनने में भूल की होगी। फिर वह चिन्ता में लीन हो गया। काम बड़ा कठिन दिखाई पड़ता है। अड़चन पर अड़चन पड़ती जाती है। सोचा था, सोना के द्वारा काम हो जायगा। कोई आशा नहीं दीखती। उसने मेरी ओर ताकना तक छोड़ दिया है। विचित्र प्रकार की स्त्री है। खैर, कभी न कभी ढर्रे पर आएगी ही, जाती कहाँ है! पर यह होगा कब ? मैं यहाँ बेहाल हुआ करता हूँ। एक पल एक युग के समान बीतता है। क्या करूँ ? और कोई रास्ता दीखता नहीं। सोना को ही राह पर लाने से ठीक बनेगा। बड़े धीरज की ज़रूरत है। कुछ भी हो, जब आगे पैर बढ़ा दिया है, तब पीछे न हटूँगा। देखूँ, कब तक काम नहीं होता। इसके लिए जो कुछ करना पड़ेगा, करूँगा। भला ऐसी सुन्दरी को कोई मन से दूर हटा सकता है ? क्षण-क्षण में उसकी मूर्त्ति और गहरी होती जाती है। सौ में एक है। नहीं, सौ क्या, हज़ारों और लाखों में भी ऐसी नहीं मिलेगी। कल्पना करने से भी ऐसा सुन्दर मुख नहीं बन सकेगा। उसके प्रत्येक अङ्ग में मनोहरता कूट-कूट कर भरी है। कोई देखे तो देखता रह जाय। दृष्टि और उसके सौन्दर्य में लोहे-चुम्बक का सम्बन्ध

है। छुटपन में सुनने में आया था कि कोई एक राजकुमारी थी। वह बहुत सुन्दर थी। सन्ध्या को अपने छत पर खड़ी हो जाती थी तो सारा नगर आलोकित हो जाता था। लोगों को घर में दिया जलाने की आवश्यकता न पड़ती थी। यह तो गप्प ही है। पर हाँ, यह छत पर खड़ी हो जाय, तो अवश्य चारों ओर प्रकाश फैल जाय। चन्दा की निर्मल चाँदनी के छिटक जाने में कोई सन्देह नहीं। इसके रूप की किरणें हृदय-तल में जा पहुँचती हैं। मैं पहले कुमारी पर लट्टू था। वह इसके सामने क्या है? मुहर और कौड़ी की कहीं तुलना की जाती है? बड़े अचम्भे की बात है कि कुमारी यहाँ कैसे आ टपकी! अब टलेगी या नहीं? इससे तो सब चौपट होता हुआ दीखता है। अधिक डर है तो इसी का। यदि इसने खेल न बिगाड़ा तो आशा कम नहीं। पौ-बारह ही रहेगा। तब मेरे सामने भाग्यवान् कौन होगा? देखना चाहिए, आशा की कली के खिलकर सुन्दर फूल हो जाने में कितनी देर है? भाग्य-नक्षत्र कब सामने आता है?

घड़ी फिर एक बार बोली, टन्। हैं! फिर एक बजा! क्या बात है? तीन बार एक ही एक। ओङ्कार उठा। लैम्प तेज़ करके घड़ी के पास गया। डेढ़ बजा था। ठीक तो है। साढ़े बारह बजने पर घड़ी एक बार बोली। फिर एक बजा और अब डेढ़। उसकी आँखों में नींद का नाम-निशान न था। लैम्प टेबिल पर रख कर वह बाहर निकला।

सप्तमी के चन्द्रमा का उजाला पृथ्वी पर पड़ रहा था। प्रकृति ने सफ़ेद चादर ओढ़ रक्खी थी। वृक्षों के कोमल चिकने पत्ते रह-रह कर आईने के समान चमक उठते थे। वायु मुँह और छाती पर धक्का मारती हुई तड़ित-गति से किसी से भेंट करने के लिए भागी चली जा रही थी। टहलते-टहलते ओङ्कार ईश्वरप्रसाद के मकान के बग़ल की तरफ़ निकल गया। सोना के कमरे की खिड़की खुली थी। भीतर ख़ूब प्रकाश था। अभी तक रोशनी बन्द नहीं की गई। उसका मन हुआ कि भीतर झाँक कर देखे क्या हो रहा है? सोना सोई या नहीं? पास गया। खिड़की ऊँची नहीं थी। भीतर सिर डाल कर देखा, सिरहाने की तरफ़ एक चौकी पर रक्खा हुआ लैम्प ज़ोर से जल रहा था। सोना की छाती पर कोई पुस्तक पड़ी थी। वह सो गई थी। लैम्प की गरमी से माथे पर छिटके हुए बालों के बीच से पसीने के कण चमक रहे थे। एक हाथ पुस्तक पर था, दूसरा वक्ष-स्थल पर। रात के सन्नाटे में सोना को इस तरह पड़ी देख कर ओङ्कार कामातुर हो उठा। अनङ्गदेव के भेजे हुए पुष्प-बाण उसके मर्म-स्थल में जा छिदे। अपने चलायमान चित्त के वेग को वह न रोक सका। पीछे सब जगह दूर तक दृष्टि दौड़ाई। कोई न दीखा। धीरे से सावधानी के साथ वह भीतर उतर गया।

सोना के कमरे के ठीक ऊपर कुमारी का कमरा था।

वैसी ही एक खिड़की भी थी। उस दिन कुमारी कई प्रकार के विचारों में फँस जाने के कारण सोई न थी। बहुत देर से मुँह में पान रक्खा था। थूकने के लिए खिड़की पर गई। कुछ दूर पर कोई दीखा। आँखें गड़ा कर एकटक देखा। पहचान गई, ओङ्कार है। इतनी रात को इस तरह क्यों? शायद फ़ोटो वाली के कारण नींद न आई होगी। और क्या? आशिक़ हो तो ऐसा हो! देखो, इसी तरफ़ मुड़ा। मैं तो पहले ही समझ गई थी। रङ्ग जमाने की कोशिश हो रही है। पूरा झक्की है। बड़े घर की बहू-बेटियाँ इस तरह हाथ नहीं चढ़तीं। यह पिटने का लक्षण है। कोई देखे तो बिना पीटे न छोड़े। कोई भला आदमी आधी रात को ऐसे थोड़े ही घूमता है। यह लो, बिलकुल पास आ गया। यह तो सोना का कमरा है। खिड़की के भीतर झाँकता है। अरे! अन्दर चला गया! चल कर देखना चाहिए। कुमारी धीरे-धीरे पैर रखती हुई नीचे आई। सोना के कमरे के दरवाज़े से सटकर खड़ी हो गई।

ओङ्कार ने लैम्प धीमा कर दिया। फिर वह सोना के पास झुक कर खड़ा हो गया। कुछ देर तक उसके मुख को निहारता रहा। फिर धीरे से छाती पर खुली पड़ी हुई पुस्तक खींच ली। इतने में सोना जाग पड़ी। चौंक कर चिल्ला उठी—कौन है?

ओङ्कार ने होंठ पर तर्जनी रख कर मन्द स्वर से कहा—चुप! चुप! मैं हूँ, ओङ्कार।

सोना चकित हरिणी की भाँति शीघ्रता से उछल कर खड़ी हो गई। बोली—कौन? ओङ्कार! इतनी रात बीते तुम यहाँ चोरों की नाईं क्यों घुस आए? जाओ, चले जाओ।

ओङ्कार—हाथ जोड़ता हूँ, ज़रा धीरे से बोलो। कोई सुन लेगा और जाग पड़ेगा, तो आफ़त आ जायगी।

सोना किञ्चित् क्रोध करके बोली—अच्छा है, जाग पड़े और आफ़त आ जाय। मैं यही मनाती हूँ। तुम जाओ यहाँ से। इसी समय चले जाओ। एक क्षण भी न ठहरो।

ओङ्कार—इस तरह क्यों दुतकारती हो?

सोना—मैं और कुछ कहना-सुनना नहीं चाहती। बस, जाओ। यदि ऐसे नहीं जाते तो मैं ज़ोर से चिल्लाती हूँ। बोलो, जाते हो या नहीं?

ओङ्कार—जाऊँगा, जाऊँगा। मैं आप ही चला जाऊँगा, चिल्लाने की कोई ज़रूरत नहीं है। यहाँ रात काटने नहीं आया हूँ। दो-चार बातें कर लो। मैं इतनी चाह से तुम्हारे पास आया हूँ और तुम भगा रही हो। क्या तुम्हें ऐसा ही चाहिए?

सोना—एक बार कह चुकी, मैं तुमसे बातें करना बिलकुल पसन्द नहीं करती। मेरा सब कुछ तो तुमने हर लिया; अभी बात करने की लालसा बनी ही है? अभी प्रेम जताना बाक़ी ही रह गया है? ख़बरदार, जो अब कभी चाह की बात मुँह से निकाली! क्या जिसको चाहा जाता

है, जिसके साथ प्रेम किया जाता है, उसके साथ इसी तरह की दुष्टता भी की जाती है ? प्रेम क्या है, इसे तुम नहीं जानते। तुम नरक के कीड़े हो। तुम्हारी नस-नस में दुर्गन्ध समाई हुई है। जाओ, हटो। दूर हो। सच जानो, मैं चिल्लाती हूँ।

ओङ्कार सोना का यह भाव देख कर दङ्ग रह गया। बड़ी कठिनता से अपने को सँभाला। एक स्त्री के द्वारा मैं इस तरह अपमानित किया जाऊँ ! नहीं सह सकता। चिल्लाती है, तो चिल्लाए। मेरा क्या बिगड़ेगा ? नमक आग पर रखने से चटकने लगता है। वह अड़ गया। बोला—तुम्हें चिल्लाना ही हो तो चिल्लाओ। मैं तुम्हारा मुँह नहीं पकड़ूँगा। पर पहले सोच लो, बदनामी किसकी होगी—मेरी या तुम्हारी ?

सोना कलुषित हो चुकी थी। वह लोक-लाज से बहुत डरती थी। वह नहीं चाहती थी कि लोग उसके विषय में किसी प्रकार का सन्देह करें। वह अपने को तुच्छ समझती थी; पर दूसरों से असम्मानित होकर नहीं रहना चाहती थी। वह चाहती थी कि ईश्वर के सामने न सही, पर औरों के आगे मेरी प्रतिष्ठा बनी रहे। पहले आवेग में थी। जो मन में आया, बक गई। अब सोचा और अपनी स्थिति का ज्ञान हुआ, तो जी धक् से हो गया। हृदय एक बड़े बोझ से दब गया। कातरता के कारण मुख से निकल पड़ा—हे

परमात्मा! तूने स्त्रियों को इतनी तुच्छ और सामर्थ्यहीन क्यों बनाया है?

ओङ्कार ने कहा—शान्त होकर बैठो।

सोना दुःख से बोली—मेरे कर्म में शान्ति भोगना नहीं बदा है। ईश्वर ने मुझे अशान्ति-मूर्त्ति ही बना कर संसार में भेजा है। बैठूँगी नहीं। कहो, क्या कहने आए हो?

ओङ्कार—आज के तुम्हारे मिलाप से मेरा मन न जाने कैसा हो गया है। पहले मुझे बता दो कि तुम अब आपस में किस तरह का व्यवहार रखना चाहती हो?

सोना—इस तरह का, जिससे मालूम हो कि हम दोनों में से कोई किसी को जानता ही नहीं।

ओङ्कार—हम दोनों अलग हो जायँ? आपस में किसी तरह का सम्बन्ध न रहे? मेल-मिलाप भी नहीं; बातचीत भी नहीं?

सोना—हाँ।

ओङ्कार—तुम्हारी ऐसी इच्छा है तो यही होगा। जैसा तुम कहती हो, मैं करूँगा। पर इसके पहले तुम्हें जरा एक काम करना पड़ेगा। उसके हो जाने पर मैं तुम्हारी सब शर्तों को मञ्जूर कर लूँगा। चाहे जितनी हों; चाहे कैसी भी हों।

सोना—कौन सा काम है, बोलो। यदि तुम यह वचन देते हो कि फिर मुझसे कभी बात न करोगे, मेरी ओर

देखोगे भी नहीं, दया करके सदा के लिए मेरा पल्ला छोड़ दोगे, तो मैं भी दृढ़ता के साथ कहती हूँ, जहाँ तक हो सकेगा, मैं तुम्हारा काम करने में कुछ उठा न रक्खूँगी। उसे अवश्य पूरा कर दूँगी।

ओङ्कार—किसी काम के करने का वचन देने से पूर्व अपने हृदय से तीन बार पूछ लेना चाहिए। तुमने पूछ लिया है न? मेरा काम करने से पीछे तो न हटोगी?

सोना दृढ़ता से बोली—तुम कहो।

ओङ्कार ने देखा, अवसर ठीक है। यही उपयुक्त समय है। मन की बात कह डालना चाहिए। पीछे जो होगा, देखा जायगा। फिर ऐसा मौक़ा हाथ न लगेगा। कुछ तर्क-वितर्क करने के पश्चात् कह दिया—अच्छा तो सुनो, मुझे अपनी मालकिन चन्दा से मिला दो।

सोना ने यह सुना तो काठ हो गई। मुँह से शब्द नहीं निकला। भीतर हृदय कह रहा था, ऐसे अधम का मुख देखने की अपेक्षा सैकड़ों कल्पों तक घोर नरक का वास श्रेयस्कर है। देर तक वह नहीं बोली।

ओङ्कार ने पूछा—क्या इच्छा है? मेरा काम करने में तुम्हारी भलाई ही है। मेरे चङ्गुल में तुम किस तरह जकड़ गई हो, सो जानती ही हो।

सोना—इसके बदले में क्या मेरी जान ले लेने से नहीं बन सकता? मैं मरने को तैयार हूँ।

ओङ्कार—जो कुछ मुझे कहना था, कह चुका। अब मैं केवल एक अक्षर में उत्तर चाहता हूँ। कहो, 'हाँ' या 'ना'।

सोना—एक सती स्त्री के माथे पर कलङ्क का टीका लगाने का बीड़ा मैं नहीं उठा सकती।

ओङ्कार—बिना सोचे-समझे इतनी जल्दी 'नाहीं' मत कर दो। अभी न सही; ख़ूब सोच-विचार कर कल इसका उत्तर देना। अब मैं जाता हूँ।

ओङ्कार उसी खिड़की की राह से बाहर निकल गया। सोना बिछौने पर गिर पड़ी और फूट-फूट कर रोने लगी।

र्द्ध रात्रि का समय था। प्रकृति ने शान्ति-स्वरूप धारण कर रक्खा था। चारों ओर विकट सन्नाटा छाया हुआ था। अँधियारी बढ़ी हुई थी। उस सन्नाटे और अन्धकार को भेदती हुई मानिक की बड़ी नाव अपने साथ हलकी-हलकी लहरों को लिए हुए गङ्गा के स्वच्छ नीले जल पर बही चली जाती थी। नाव पर कई कमरे बने हुए थे। एक सजे कमरे में मानिक कुर्सी पर बैठी थी। पास ही सरदार जोखिमसिंह खड़ा था। अब मानिक का दल बहुत बढ़ गया था। उसमें क़रीब पाँच सौ डाकू और आ मिले थे। मानिक सब पर रानी की तरह हुक्म चलाती थी। वे आज्ञाकारी सेवक की भाँति उसका कहना मानते थे। मानिक का व्यवहार सबके साथ बड़ा अच्छा था। सबको वह एक समान समझती थी और उनको बहुत चाहती थी। इस प्रेम का बदला उसको भरपूर मिला। हर एक डाकू

उसके इशारे पर अपनी जान देने को तैयार था। प्रेम से पशु-पक्षी भी वश में हो जाते हैं; आदमी तो आदमी ही है। एक बार एक डाकू ने किसी दूसरे से मानिक की कोई बुराई की। पता चल गया। मानिक अपने ऊपर किसी की असन्तुष्टता नहीं देख सकती थी। इसको वह सत्यानाश की जड़ समझती थी। उसने डाकू को बुलाया। डाकू ने डरते-डरते आकर अपना अपराध स्वीकार कर लिया। मानिक ने तत्क्षण उसे क्षमा कर दिया। वह उसकी इस सहृदयता पर मुग्ध हो, रोने लगा। मानिक सबको सदैव सच बोलने की शिक्षा दिया करती थी। इस समय नाव पर सौ डाकू थे, बाक़ी दूसरी जगह थे।

मानिक ने जोखिमसिंह से पूछा—आज कोई लौटा है?

जोखिम—भोला आया है।

मानिक—क्या ख़बर है?

जोखिम—मैंने अभी तक कुछ पूछा नहीं। कहिए तो बुलाऊँ?

मानिक—बुलाओ।

जोखिमसिंह बाहर निकला। तीन डाकू बैठे ताश खेल रहे थे। जोखिमसिंह ने एक की ओर देख कर कहा—दस्सू, भोला कहाँ है, देखो तो।

दस्सू—अभी उधर बैठा था।

जोखिम—बुला लाओ।

दस्सू ताश पटक कर उठा। इधर-उधर निगाह फेंकी। भोला न दिखा। वह आगे बढ़ा। सब जगह ढूँढ़ा। भोला का पता न था। दो-चार जनों से पूछा। उन्होंने कहा, कहीं होगा। "कहीं कहाँ होगा ? मिलता क्यों नहीं ?" दस्सू जब खिसिया कर लौटने लगा, तब उसे एक कोने में भोला ऊँघता हुआ दिखाई पड़ा। बड़बड़ाता हुआ उसके पास जा सिर पर एक चपत लगा कर कहा—उठ बे ! तू यहाँ बैठा ऊँघता है, वहाँ सरदार बुला रहे हैं।

भोला दिन को भी नहीं सोया था। नींद सता रही थी। चिढ़ कर बोला—जाओ जी, हटो। छेड़ो मत।

दस्सू—अबे, सरदार बुलाते हैं।

भोला सिर गड़ाए बैठा रहा।

दस्सू—चल।

भोला—कह दो, नहीं आता।

दस्सू उसको झिझकोर कर बोला—कैसा अहमक़ है ! उठता है कि नहीं ?

भोला—चल भी दो यहाँ से। भूत सवार हो तो जैसा बताओ। अभी उतार दूँ।

दस्सू—सरदार बुला रहे हैं, सरदार। उठ !

भोला ने सिर उठा कर पूछा—कौन ?

दस्सू—सरदार।

भोला—इस वक्त सरदार काहे को बुलावेंगे ? अभी ही तो नाव चली है।

भोला ने फिर घुटनों के ऊपर रक्खे हुए हाथों पर सिर रख लिया और फों-फों करने लगा।

दस्सू—तो मैं जाता हूँ। कह दूँगा, नहीं आता।

दस्सू चलने लगा तो भोला उठा। कहा—चलता हूँ।

भोला सरदार के पास आया। जोखिमसिंह उसे मानिक के पास ले गया। भोला सिर नवाकर खड़ा हो गया।

मानिक ने उसके चेहरे की ओर देखकर कहा—शराब पी है क्या ? आँखें लाल हैं।

भोला—शराब नहीं पी। जब से आपके पास आया हूँ और आपने मना कर दिया है, तब से मैंने शराब देखी भी नहीं, कैसी होती है। अभी सो रहा था; इसी से आँखें लाल होंगी।

मानिक—कभी मत पीना।

भोला—कभी नहीं।

मानिक—और कोई नशा करता है ?

भोला—नहीं।

मानिक—आज कहाँ गया था ? कोई नई खबर लाया है ?

भोला—उसी सेठ के पास गया था। पूरा हाल जान आया हूँ।

मानिक—वह कैसा आदमी है ? कैसे स्वभाव का है ? सब मालूम कर आया है न ?

भोला—हाँ।

मानिक—तेरा नाम भोला है, पर तू बड़ा चतुर है। सुना तो जा।

भोला—मैं साधु बनकर उसके पास गया था। भिक्षा माँगी, उसने नहीं दी। मैं अड़ गया। कहा, जब तक मुझे कुछ न दोगे, मैं तुम्हारे द्वार पर से नहीं टलूँगा। उसने मुझे बका-झका। मैंने कहा, मैं यहीं भूखा-प्यासा प्राण दूँगा। वह नहीं डरा। उलटे कहने लगा, मर जा। मुझे क्या करना है ? मरेगा तो अपनी जान से, मेरा क्या ले जायगा ?

मानिक ने हँसकर उससे पूछा—फिर तूने क्या कहा ?

भोला—मैंने कुछ कहा नहीं। वहीं धूनी रमाकर बैठ गया। साँझ तक बैठा रहा।

मानिक—उसने कुछ दिया ?

भोला—वह काहे को कुछ देने लगा ? बड़ा सूम है। दाँत से पैसा पकड़ता है। जो जानते हैं, वे कभी भूल कर उसके दरवाजे पर भीख माँगने नहीं जाते। कुत्तों को वह कभी रोटी का एक टुकड़ा नहीं डालता। भूले-भटके कोई पहुँच जाता है, तो मेरे समान गाली पाता है।

मानिक—उसके घर में कितने आदमी हैं ?

भोला—वह अकेला है। किन्तु धन खूब है। कञ्जूसी

के मारे नौकर नहीं रखता। बस, एक मुनीम है। उससे सवेरे तड़के से बड़ी रात तक कड़ा काम लेता है। ईश्वर जाने, वह उसके यहाँ क्यों टिका है।

मानिक—क्या काम करता है?

भोला—असली काम उसका सूद पर रुपए उधार देना है। सोना-चाँदी भी बेचता है। इतना कड़ा सूद लेता है कि कुछ कहने की बात नहीं। आफ़त का मारा जो उसके पास पहुँचता है, उसको वह भोंथरे छुरे से हलाल कर डालता है। बड़ा दुष्ट आदमी है।

मानिक—उसका कुछ रङ्ग-रूप, रहन-सहन इत्यादि का वर्णन तो करो।

भोला—रङ्ग-रूप क्या? बिलकुल भोंदू जाट है। हड्डी दिखाई देती है। सारे शरीर में एक छटाँक मांस से ज्यादा न होगा। मैं समझता था, सेठ वही होते हैं, जिनके बड़ा पेट होता है। यह दूसरे ही क़िस्म का देखने में आया। शायद पेट भर दाना भी नहीं खाता। थोड़ा सा चुगकर रह जाता है। रुपया जोड़ने में लगा है। घी चुपड़ी रोटी सपने में गले से न उतरी होगी। बहुधा चना चबा लिया करता है। इसने कञ्जूसी की हद कर दी है। परलोक में जैसे सब बाँध-कर ले जायगा। आदमी कम से कम अपने शरीर का सुख अवश्य देखा करता है। इसकी नासमझी को क्या कहूँ?

मानिक—और कुछ।

भोला—उसकी उमर कोई चालीस साल की होगी। कम भी हो सकती है। मैं अन्दाज़ से कहता हूँ। आज एक आदमी ने उससे पूछा था, सेठ जी! दूसरी शादी क्यों नहीं कर लेते? नाहक़ तकलीफ़ उठाते हो। उसने कहा था, फ़िराक़ में हूँ। कोई मन लायक़ मिलती ही नहीं। असल बात तो मुझे यही मालूम होती है कि कोई उसे अपनी लड़की देना ही नहीं चाहता। पहली को भूखों मार डाला होगा। कैसे उस पर कोई विश्वास करे? उसके साथ अपनी लड़की का ब्याह करना और उसे भाड़ में झोंक देना बराबर है। कोई देगा भी, तो रुपए ऐंठ कर। और इस तरफ़ से वह होशियार है। एक नम्बर का मक्खीचूस है। भला ऐसा क्यों करने लगा? घर में स्त्री लाने की इच्छा होगी भी, तो वह अपने ब्याह में टका नहीं ख़र्च करना चाहता। कैसे बने? दो प्राणी हो जाने से खाने का ख़र्चा भी तो बढ़ जायगा!

मानिक—क्या नाम है?

भोला—नाम है, धनपति।

मानिक—धनपति?

भोला—हाँ।

मानिक—अच्छा, कल धनपति को ग़रीबदास बनकर रहना पड़ेगा।

भोला—स्वामिनी जी, वह इसी लायक़ है।

मानिक ने जोखिमसिंह से कहा—तब आज ही उसको

लूटना होगा। देखो, उसके पास एक फूटा तवा तक न रहने पावे। जो आदमी दूसरों को सुखी बनाकर आप भी सुख से रहना नहीं जानता, वह पशु है। पशु को पशु की तरह ही ज़िन्दगी बितानी चाहिए। उसके पास धन का रहना किसी काम का नहीं। धन इकट्ठा करके व्यर्थ रख छोड़ने की वस्तु नहीं है। उसका सदुपयोग होना चाहिए।

जोखिम—नाव कहाँ खड़ी होगी?

मानिक—जहाँ से उसका घर पास पड़े, वहीं खड़ी कर दी जाय।

एक स्थान पर नौका ठहर गई। मानिक की आज्ञा से सरदार सहित पचास डाकू सज-धज कर नीचे उतरे। हाथ में बड़े और मोटे लट्ठ थे। कमर में पिस्तौल और तेज़ छुरे। सब दूर फैल कर चले। धनपति के घर पर जाकर एकत्र हुए। जोखिमसिंह ने दरवाज़े के पास जाकर ज़ोर से साँकल खड़खड़ाई। धनपति ने जाग कर भीतर से पूछा—कौन है?

जोखिम—हम हैं। दरवाज़ा खोलो।

धनपति—इतनी रात को कौन सा काम है?

जोखिम—तुम्हारा रुपया अदा करने आया हूँ। सवेरे ही दूसरी जगह जाना है।

धनपति रुपए का नाम सुन कर झटपट उठा। दिया जलाया। लकड़ी खटखटाते हुए आकर दरवाज़ा खोल दिया। जोखिमसिंह तैयार था, पकड़ कर उसे बाँध लिया,

और मुँह में कपड़ा ठूँस दिया। बहुत से डाकू भीतर घुस गए। जिससे जितना हो सका, उठा कर चलता बना। रुपया-पैसा, सोना-चाँदी, बर्तन-कपड़े सब ले गए। यहाँ तक कि उसके घर में मिट्टी की हाँडी और फटा कपड़ा तक न बचा।

कल ढीली पड़ती थी। किवाड़ की साँस से हाथ डाल कर कुमारी ने दरवाजा खोल डाला और जाकर सोना के पास बैठ गई। बोली—सोना !

सोना डाल से अलग टूटी हुई लता की तरह निश्चेष्ट पड़ी थी। कुमारी की आवाज़ सुनकर शीघ्रता से उठ बैठी। कहा—कौन ? बाई जी !

कुमारी—हाँ, मैं ही हूँ।

सोना का शरीर सितार के तार के समान थरथर काँपने लगा। रक्त सूख गया। चेहरा पीला पड़ गया। भय से वह विह्वल होने लगी। इसने कहीं यह काण्ड देख न लिया हो। न जाने कब से बाहर खड़ी थी ? तब तो यह सब रहस्य जान गई होगी। क्या सच ही मेरा भण्डा फूट गया ? वह एकटक कुमारी की आँखों की ओर देखने लगी। आँखों से

सोना—यह जन्म-जन्मान्तर के लिए हो गया। दावाग्नि बुझने की नहीं—मैं झुलसती ही रहूँगी।

कुमारी—पर तुमने किया ही क्या है? तुम दोषी नहीं। पाप का कारण कौन है? परमात्मा का वज्र-दण्ड उसी पर पड़ेगा। तुम सताई गई हो। सताने वाला अपराधी है।

सोना—छाती फटी जाती है!

कुमारी—सुस्थिर होकर बैठो। कोई कष्ट आ पड़ने पर सब्र को हाथ से न छोड़ देना चाहिए। साहस से काम लो।

सोना—अब साहस लेकर क्या करूँगी? वह मेरे किस काम आवेगा?

कुमारी—तो फिर क्या जन्म भर रोती ही रहोगी? छिः! कैसी बुद्धिहीन स्त्री हो।

सोना ने कुमारी के पैर पकड़ लिए। कातर होकर बोली—मेरी लाज तुम्हारे ही हाथों है।

कुमारी उसके मन को बहुत देर तक सन्तोष दिलाती रही। उसकी सहानुभूतिपूर्ण बातों से सोना का हृदय भर आया। उसके मन का प्रवाह-स्रोत अनिवार्य रूप से उसकी ओर बहने लगा।

सोना ने कहा—एक बात पूछती हूँ, बताओगी?

कुमारी—पूछो।

सोना—सब कहते हैं और बड़े-बड़े शास्त्रों में लिखा है

कि सब काम ईश्वर की इच्छा से हुआ करते हैं। क्या यह सच है ?

कुमारी—हाँ, सच है। सारी दुनिया ईश्वर की इच्छा पर टँगी है।

सोना—उसकी इच्छा के विरुद्ध एक कण भी इधर से उधर नहीं होता ?

कुमारी—नहीं होता।

सोना—तब आदमी जो पाप और पुण्य करते हैं, उसी के कराने से ?

कुमारी—तुम्हारा मतलब क्या है ?

सोना—मैं यह जानना चाहती हूँ कि मुझसे जो पाप हो गया है, उसमें वास्तव में मेरा अपराध है या नहीं ?

कुमारी—ओह! छोड़ो इन बातों को, इस तरह पागल हो जाओगी।

सोना—हाय! अब मैं क्या करूँ ?

कुमारी—तुम्हारा कर्तव्य मैं तुम्हें बताऊँगी। मुझ पर विश्वास तो करती हो न ?

सोना—मैं असहाय दुखिया हूँ। मेरे आगे-पीछे कोई नहीं है। बहे जाते का तिनके का सहारा बहुत होता है। फिर जब तुम मुझ पर इतनी दया दिखाती हो, तब विश्वास कैसे न करूँगी ?

कुमारी—अच्छा, तो मेरी एक बात गाँठ में बाँध कर

रख लो। अपने ऊपर अत्याचार करने वाले को कभी क्षमा न करना चाहिए। कैसी ही अवस्था में क्यों न हो, उसके अत्याचार का बदला उसको दो। अत्याचारी को क्षमा करना कायरता है। इससे पाप और दुःख की बढ़ती होती है। उस बढ़ती का उत्तरदाता वही क्षमाशील व्यक्ति होता है। जैसे बने, दुष्ट की दुष्टता का फल उसे चखाओ।

सोना—दण्ड देने वाला तो परमात्मा है।

कुमारी—जो काम अपने से हो सकता है, उसे परमात्मा के ज़िम्मे कर देना बड़ी भारी मूर्खता है। परमात्मा ने तुम्हारी देह में ख़ून दिया है, नसों में ताक़त दी है, तुम्हें कुछ करने योग्य बनाया है। क्या तुम योंही निकम्मी बैठी रहोगी? परमात्मा ही सब कर देगा तो तुम क्या करोगी? क्या उसने तुमको योंही निठल्ली बैठी रहने को भेजा है? उसके पास बहुत काम है। सब बोझा उसके सिर पर मत रख दो। थोड़ा काम तुम भी करो। समझती हो, मैं क्या कह रही हूँ?

कुमारी की जोशीली बातों ने सोना में कुछ स्फूर्त्ति ला दी। बोली—समझती हूँ। मुझे क्या करने को कहती हो?

कुमारी—ओङ्कार से जाकर कहोकि तुम उसे चन्दा के पास पहुँचा दोगी।

सोना—हे राम!

कुमारी—सुनो। मैं इससे क्या करना चाहती हूँ, जानती हो ?

सोना—क्या ?

कुमारी—इधर ओङ्कार चन्दा के पास जायगा और उधर उसके पति को इस बात की ख़बर दे दी जायगी।

सोना—तब ?

कुमारी—तब क्या होगा, नहीं सोच सकतीं ? तुम्हीं बताओ, ओङ्कार चन्दा से बातें कर रहा है और चन्दा का पति वहाँ आ जाता है, तब क्या होगा ?

अपने एक पैर के अँगूठे से दूसरे पैर के अँगूठे को दबा कर सोना बोली—यह बड़ा भयङ्कर काम होगा।

कुमारी—ओङ्कार ने जो कुछ तुम्हारे साथ किया है, क्या उससे भी भयङ्कर होगा ? बेवक़ूफ़ कहीं की ! अरे, उस समय उसकी बड़ी दुर्गति होगी। पर यह याद रखना कि तब भी तुम उसके ऋण की केवल एक पाई चुका सकोगी ।

सोना—मालिक की तो कुछ हानि न होगी ?

कुमारी—कुछ नहीं।

सोना—मालकिन सुनेंगी तब ?

कुमारी—उन्हें इसकी ख़बर न लगने पावेगी। सब काम मैं कर लूँगी। तुम्हें सिर्फ़ ओङ्कार के पास जाकर, जैसा मैंने कहा है, कह आना होगा। उसके पास पहले मैं

ही जाकर सब ठीक कर आऊँगी, बाद को तुम जाना। तुम पर अधिक बोझ न रहेगा।

सोना—क्या उसने तुम्हारा भी कुछ बिगाड़ा है? बातों से तो ऐसा ही जान पड़ता है।

कुमारी की आँखें जल उठीं। बोली—उसने मेरे साथ बड़ी भारी बुराई की है। ऐसी बुराई शायद ही कोई कर सकता।

सोना—क्या किया है?

कुमारी—अभी नहीं, फिर कभी सब सुन लेना। पहले हम दोनों अपना बदला ले लें, तब यह बात होगी।

सोना—देखने में कैसा सीधा है।

कुमारी—सीधों के ही पेट में दाँत रहते हैं।

सोना—सच कहती हो।

कुछ समय के पश्चात् कुमारी ने कहा—अब सो रहो। सब काम सदा की तरह करना। किसी को ज़रा भी शक न होने पावे। ख़ूब सावधानी से रहना। किसी के कानों इसकी भनक भी न पड़े।

सोना—अब कब आओगी?

कुमारी—कल फिर किसी समय मौक़ा देखकर मिलूँगी।

सोना—देखो, भूलना मत।

कुमारी—मुझे ख़ुद फ़िक्र है।
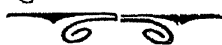
लिका उछलता हुआ सोना के पास पहुँचा। बोला—माँ जी को मेरी खबर कर दो। कहना, कालिका आया है।

सोना—कौन माँ जी?

कालिका—जो छत पर हैं। अभी मैंने देखा है। जाकर कह दो।

सोना—किससे कह दूँ? भाग यहाँ से। मैं तेरी माँ जी को नहीं जानती।

कलिका—नहीं जानती! मेरी माँ जी को नहीं जानती? अभी मैंने ऊपर देखा है, जाकर कह तो दो। वे आप ही समझ जायँगी। मेरा नाम ले लेना, कालिका।

सोना—तू कहाँ रहता है?

कालिका—मैं उन्हीं के पास रहता हूँ।

सोना—जा-जा, भाग जा। तेरी माँ जी यहाँ नहीं हैं।

कालिका—वाह ! हैं कैसे नहीं ? मैंने अपनी आँखों से देखा है।

सोना उसकी परवा न करके भीतर चली गई। कालिका एक पत्थर पर जम कर बैठ गया।

कुमारी दोपहर का भोजन करने के पश्चात् अपने कमरे में आई। पलङ्ग पर लेट कर ओङ्कार को पत्र लिखने का विचार किया। क्या लिखूँ ? बड़ी देर तक सोचती रही। फिर लिखना आरम्भ कर दिया—

"प्यारे ओङ्कार,

तुम मुझे यहाँ देख कर बड़ा अचम्भा करते होगे ? सोचते होगे, मेरा यहाँ आना कैसे हुआ ? जानने को बड़े उत्सुक होगे ? बताए देती हूँ। उस दिन जब तुम मेरे पास से अचानक उठ कर चले गए थे, मुझे बड़ा बुरा लगा था। अभी तक उसकी याद आने पर मन न जाने कैसा करने लगता है। बहुत दिनों पर तो तुम आए थे और फिर ऐसी रुखाई की; बुरा लगेगा ही। मैं तुम पर प्राण देती हूँ और तुम कन्नी काटते हो। क्या मैं ऐसी गई-बीती हो गई हूँ कि बैठ कर थोड़ी देर बातें करना भी तुम्हें नहीं सुहाता ? पहले मेरी बहुत बड़ाई किया करते थे। अङ्ग-प्रत्यङ्ग की सुघड़ता निहारते थे। मैं ऐसी हूँ, मैं वैसी हूँ। मुझमें इतनी लुनाई है। बिना मुझे देखे रहा नहीं जाता था। अब क्या होगया है ? मैं वही हूँ, बदल नहीं गई; फिर वह प्रेम कहाँ चला गया ? पुरुषों का

मन चञ्चल रहता है। उनमें स्थिरता नाम को नहीं रहती। पहले मैं सुना ही करती थी, अब प्रत्यक्ष देख लिया। अच्छा जाने दो। इसमें क्या रक्खा है? हाँ, मैं क्या कह रही थी? तो मेरा मन ऐसा खराब हो गया कि कुछ अच्छा ही न लगता था। आँखें खुली रहने पर भी मैं कुछ का कुछ देखती थी। कानों में भायँ-भायँ के सिवा कुछ सुनाई न देता था। रात को मैंने कुछ नहीं खाया। दूसरा दिन भी निराहार ही बीता। सन्ध्या को मन बहलाने के लिए बाहर निकली। एक ताँगे पर बैठ गई। रास्ते में घोड़ा भड़का। ताँगा उलट गया। मैं गिर पड़ी। बाबू ईश्वरप्रसाद जी दया करके मुझे मोटर पर बैठा कर अपने घर ले आए। तब से मैं यहाँ ही हूँ।

"फ़ोटो की बात मुझे याद है। अब वह और नई हो गई है। तुम भी न भूले होगे। वह फ़ोटो तुम्हारी जेब से नीचे गिर पड़ा था। उठाकर देखने लगी थी। तुमने तुरन्त छीन लिया था। फ़ोटो लेने में जो उतावलापन किया गया था, उससे तभी मेरे मन में सन्देह हो गया था। अब यहाँ आकर सब समझ गई हूँ। तुम उसी फ़ोटो की सजीव मूर्त्ति पाने के लिए यहाँ टिके हुए हो।

"मुझे अधिक दुःख इस बात का है कि तुमने मेरा ज़रा भी विश्वास न किया, अपने मन का हाल मुझसे छिपाया। मुझसे अविश्वास करके तुमने दूरदर्शिता का काम नहीं किया है। शायद तुम मेरे प्रेम को अभी तक नहीं पहचान सके हो;

इसी से तुम्हारे मन में यह अविश्वास का अङ्कुर जमा हुआ है। एक बार फिर बतलाने का प्रयत्न करती हूँ। मैं केवल तुम्हारा प्रेम चाहती हूँ। इसके सिवा मुझमें रत्ती-भर भी स्वार्थ नहीं है। जो सच्ची चाहने वाली होती है, वह हृदय से अपने प्रियतम को सुखी करना चाहती है। उसके दुःख से दुःखी होती है और सुख से सुखी। उसके मन में सदैव अपने प्यारे की शुभ-कामना बनी रहती है। वह इसका विचार नहीं करती कि वह कैसे काम से सुखी होता है। बिना किसी सोच के उसकी इच्छा पूरी करने के लिए हर समय तत्पर रहती है। मैं भी इसी प्रकार तुम्हें चाहती हूँ। इसकी परवा नहीं करती कि तुम मेरे अतिरिक्त अन्य स्त्रियों को प्यार करते हो। तुम्हें जो अच्छा लगे, करो। चाहे जिनको और चाहे जितनों को प्यार करो, मुझसे कोई मतलब नहीं। हाँ, मुझ पर तुम्हारा प्रेम अवश्य बना रहना चाहिए। इसके न होने पर मैं व्याकुल हो जाऊँगी। तुम तभी अपने मन की बात निस्सङ्कोच होकर मुझसे कह सकते थे। तुम्हारे किसी काम के लिए कभी मना न करती। जिसमें तुम प्रसन्न रहो, सदैव मैं वह करना चाहती हूँ। अब मुझे तुम्हारे मन की बात मालूम हो गई है। तुम्हारी इच्छा अवश्य पूर्ण कर दूँगी। ऐसा काम पुरुष की अपेक्षा स्त्री अधिक सरलता के साथ कर सकती है। तुमने व्यर्थ की देर लगाई। पहले ही मुझसे कह दिया होता तो अब तक सब ठीक हो गया

होता। खैर, अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा है। तुम्हारा काम करने के लिए परमेश्वर ने मुझे स्वयं ही एक अच्छे स्थान पर पहुँचा दिया है।

"यहाँ पर सोना नाम की एक दासी रहती है। वह बड़ी होशियार और चालाक है। मैंने सोचा, एक से दो अच्छे होंगे, इसलिए उसको सॉट लिया है। शायद इसमें तुमको कोई आपत्ति न होगी! कोई डर की बात नहीं, मैं उसकी परीक्षा ले चुकी हूँ। जैसा कहती हूँ, वैसा ही करती है। बड़ी जल्दी वश में हो गई है। तुम कहोगे तो मैं तुमसे उसकी मुलाक़ात करा दूँगी।

"अन्त में यही प्रार्थना करती हूँ कि मुझ पर दया बनाए रक्खो। इससे अधिक मैं कुछ नहीं चाहती। मेरी सारी चिन्ताएँ तुम्हारा प्रेम पाने ही से दूर हो जायँगी। तुमसे बातें करने का बहुत मन होता है। कई दिन से नहीं मिली। रात को नौ बजे के बाद तुम्हारे पास आऊँगी। पक्की आशा है, तुम उस समय इसी बँगले में रहोगे। मुझे निराश न होना पड़ेगा।

तुम्हारी प्रेमेच्छुक,

कुमारी"

पत्र समाप्त कर कुमारी सोना से मिलने जाने के लिए उठी। उसी समय सोना दरवाज़ा ठेल कर भीतर आ पहुँची। कुमारी ने मुस्कराते हुए कहा—मैं तुम्हारे पास आती ही थी।

सोना—मैं आप ही आ गई।

कुमारी—चलो, अच्छा हुआ।

सोना—कुछ काम है क्या?

कुमारी—और क्या होगा? वही काम है।

सोना—क्या ठीक किया?

कुमारी—ओङ्कार के पास एक पत्र भेज रही हूँ।

सोना—कौन सा?

कुमारी ने पत्र सोना को देकर कहा—यह है।

सोना—पढ़ लूँ?

कुमारी—पढ़ लो। तुमसे कुछ छिपाकर मैं क्या करूँगी?

सोना हँसती हुई सारा पत्र पढ़ गई। बोली—चिट्ठी तो ख़ूब लिखी है।

कुमारी मुस्कराई।

सोना—इतना फ़रेब तुमने कहाँ से सीख लिया है?

कुमारी—सब आ जाता है।

सोना—चाल अच्छी है।

कुमारी—ऐसा किए बिना कोई फन्दे में कैसे फँस सकता है? पहले अच्छी तरह मिला लो, तब चाहे जो काम निकाल लो।

सोना—तुमसे उससे बहुत दिनों की मुलाक़ात है?

कुमारी—कई सालों की।

सोना की आँखें कुमारी की आँखों से मिलीं।

कुमारी उसके मन की गति ताड़ गई। बोली—इससे यह न समझ लेना कि मैं तुम्हारी तरह बेवक़ूफ़ बन गई हूँ। मैंने अपने को बेचा नहीं है।

सोना को इस बात से बड़ी व्यथा हुई। उदास होकर उसने कहा—क्या करूँ? हो ही तो गया।

कुमारी ने देखा कि उसने अनुचित बात कह दी है। तब अपने को सँभाल कर दुःखित मन से कहा—मैं भी कैसी हूँ! जाने दो। उसे जाने दो, बदला मिल जाने से कलेजा ठण्ढा पड़ जायगा।

सोना—अब तो इसी पर तुल गई हूँ।

कुमारी—युग दूसरा है। इसमें सच्चे मन से अपनी भलाई करने वाले को भी सन्देह की दृष्टि से देखना चाहिए। बुराई करने वाले को तो धूल में मिला कर तब चैन ले।

सोना—और नहीं क्या!

कुमारी—हाँ, तो यह चिट्ठी कैसे भेजी जाय?

सोना—जैसे ठीक समझो। कहो, तो मैं ही ले जाऊँ?

कुमारी—तुम्हारा जाना ठीक न होगा।

सोना को एकाएक उस लड़के का ध्यान आ गया। उसने कहा—एक लड़का आया था। अपना नाम कालिका बतलाता था। कहता था, माँ जी को मेरे आने की ख़बर कर दो।

कुमारी चौंक कर बोली—कौन? कालिका?

सोना—हाँ, यही नाम तो बतलाता था।

कुमारी—क्या कहता था?

सोना—'माँ जी-माँ जी' करता था।

कुमारी—अरे! उसे मेरे पास क्यों न लिवा लाई? वह मुझे ही पूछता था।

सोना—मुझे क्या मालूम था।

कुमारी—कितनी देर हुई होगी?

सोना—एक घण्टे से ज्यादा हो गया होगा।

कुमारी—जाकर देखो तो सही; शायद बैठा हो।

सोना—अच्छा, देखती हूँ।

वह बाहर निकली। कालिका उसी प्रकार बैठा था। उसके मुख पर देर तक बैठे रहने का कोई रञ्ज न दीखता था। सोना उसे देख कर प्रसन्न हो गई। बोली—चल, तेरी माँ जी बुलाती हैं।

कालिका कूद कर खड़ा हो गया और सोना के साथ चला। कुमारी को देखते ही उसके पैरों से लिपट गया। आँखों में आँसू भरे हुए हँस कर बोला—माँ जी!

कुमारी ने उसकी पीठ पर हाथ फेर कर कहा—कालिका!

कालिका—तुम मुझे छोड़ कर यहाँ चली आईं। मैं बहुत ढूँढ़ता फिरता था। अब मिली हो।

कुमारी—इतना घबड़ाता क्यों रहा? मैं आ न जाती क्या? तुझे भूली नहीं थी।

कालिका—तुमने मुझसे आते समय कुछ कहा न था ; नहीं तो मैं रह जाता।

कुमारी—मैं यहाँ अचानक आ पड़ी हूँ। तूने मुझे ढूँढ़ कैसे लिया ?

कालिका—उन्हीं बाबू जी के पीछे-पीछे यहाँ तक आया हूँ। यहाँ मैंने तुम्हें देख लिया।

कुमारी—देख लिया ?

कालिका—हाँ, सड़क पर से देखा था। बहुत देर तक नीचे बैठा रहा हूँ। मैं बाबू जी के घर पर गया था। वह कहते थे कि मैं नहीं जानता, तुम कहाँ हो। इसी सामने के बँगले में हैं। माँ जी, उन मेम साहब के साथ इस बँगले में रह चुका हूँ।

कुमारी—अरे! इसी बँगले में ?

कालिका—हाँ, इसी में। मैं इस घर के बाबू जी को भी पहचानता हूँ। मालकिन को भी जानता हूँ।

कुमारी—तू बड़ा होशियार लड़का है।

इतने ही में चन्दा वहाँ आ पहुँची। कालिका को देख कर कहा—कालिका है क्या ?

कालिका ने कुमारी से कहा—देखो, मालकिन आ गईं।

चन्दा—यहाँ कब आया ?

कालिका—अभी आया हूँ।

चन्दा—अब तक कहाँ रहा ?

कुमारी को दिखा कर कालिका ने कहा—इन्हीं के पास रहता हूँ।

चन्दा ने कुमारी से पूछा—यह तुम्हारे पास रहता है?

कुमारी—हाँ।

चन्दा—बड़ा अच्छा लड़का है।

सोना हँस कर बोली—मुझे तो यह खिलौना-सा लगता है। बिलकुल पीपे के समान गोल-गोल है।

चन्दा ने मुस्करा कर कालिका से पूछा—भूखा तो नहीं है?

कालिका हँसते हुए पेट पर हाथ फेर कर बोला—पेट ख़ूब तना है।

चन्दा—तेरे कपड़े बहुत मैले हैं।

कालिका ने अपने कपड़ों की ओर देखते हुए पहले कुछ धीरे से कहा—अभी मैले हो गए हैं। मैं हमेशा साफ़ कपड़े पहनता हूँ।

चन्दा—आ, मैं तुझे अच्छे कपड़े दूँ।

चन्दा उसे अपने कमरे में ले गई। एक साफ़ धोती और एक नया गमछा ट्रङ्क में से निकाल दिया। कालिका ने मैले कपड़े उतार दिए। वह बड़ी धोती ढीली-ढाली पहन ली। गमछा देह से लपेट लिया। फिर हँसते हुए चन्दा के साथ कुमारी के पास आ गया।

लिका ने आकर कुमारी का पत्र ओङ्कार को दे दिया और फिर खड़ा होकर हँसने लगा।

ओङ्कार ने पत्र लेकर पूछा—क्या है?

कालिका—माँ जी ने दिया है।

ओङ्कार—मुझे?

कालिका—हाँ।

ओङ्कार एक बार पत्र को सरसरी तौर से देख गया। मतलब की बात पाकर दुबारा ध्यानपूर्वक पढ़ा। मन प्रफुल्लित हो गया। आशारूपी मेघ को देख कर मोर के समान नाचने लगा। इसे कहते हैं, भगवान् जब देता है, तब छप्पर फाड़ कर देता है। कुमारी का डर था। वह मेरी प्रधान सहायक निकली। अब विजय का डङ्का बजा ही समझो। कुछ देर नहीं। प्रसन्नता से चमकती हुई आँखों को उसने

कालिका की तरफ़ फेर कर कहा—तू अपनी माँ जी को पा गया ?

कालिका—मिल गईं। यह क्या सामने हैं। आपने नहीं बताया था। मैंने आपके पीछे-पीछे यहाँ तक आकर उनको पा लिया।

ओङ्कार—मुझे मालूम नहीं था।

कालिका—जाता हूँ, उन्होंने कहा है, चिट्ठी देकर तुरन्त चले आना।

ओङ्कार ने उसकी नीचे लटकती हुई बँधी मुट्ठी में एक रुपया खोंस दिया। कहा इसे रख लो। जाओ।

कालिका रुपए को टेंट में खोंस कर हँसता हुआ चला गया।

ओङ्कार फिर बाहर नहीं निकला। कुमारी के आने के समय की प्रतीक्षा करता बैठा रह गया। धीरे-धीरे सन्ध्या हुई। अँधियारी फैली। रात आई। घड़ी में देखा, नौ बजने में आधा घण्टा बाक़ी है। अब कौन देर है ? आती होगी। मैं उससे बातें कौन सी करूँगा ? वह आप ही छेड़ेगी, मुझे कुछ न करना होगा। उसकी सुनने ही से फ़ुरसत नहीं मिलेगी। आज का दिन कैसा अच्छा है ? किसी अच्छे का मुँह देख कर उठा था। कुमारी मुझे बहुत प्यार करती है। मेरे लिए सब कुछ करने को तैयार है। मैं भी अब उससे हमेशा प्रेम की बातें किया करूँगा। उसका दिल नहीं दुखा-

ऊँगा। चिट्ठी क्या लिखी है, मिश्री घोल कर भेज दी है। देखूँ, एक बार और पढ़ूँ। कई बार पढ़ डाला तब भी तृप्ति नहीं होती।

ओङ्कार कुमारी के पत्र को फिर पढ़ने लगा। पढ़ते-पढ़ते प्रेम में तन्मय हो गया। कुमारी ऐसी चाहने वाली मिलना कठिन है।

अन्त में कुमारी आई। ओङ्कार उसका स्वागत करने के लिए तुरन्त खड़ा हो गया। आदर से कुर्सी पर बैठाया। कुमारी ने कुर्सी से नीचे उतर कर उसके पैर पकड़ लिए। रोने लगी। ओङ्कार हड़बड़ाकर बोला—हैं! यह क्या? रोती हो! उठो, उठो।

कुमारी ने पैर नहीं छोड़े। सिसकियाँ बँध गईं। आँसुओं की धारा और तेज़ हो गई। ओङ्कार के पैर भीग गए। उसने अधीर होकर कहा—कुमारी! क्या बात है? रो क्यों रही हो? कुछ कहतीं क्यों नहीं?

कुमारी बोलने का प्रयत्न करती दिखाई पड़ी, किन्तु मुँह से शब्द नहीं निकले, अश्रु-प्रवाह उसी प्रकार जारी रहा। ओङ्कार चक्कर में पड़ गया। बड़े कष्ट से कहा—इस तरह रोकर मुझे भी क्यों दुःख में डाल रही हो? कुछ कारण तो कहो। ऐसा ही करती रहोगी तो थोड़ी देर में मैं भी रोने लगूँगा। तब तीसरा कौन धीरज देने आवेगा? और कौन

आकर मनावेगा ? शान्त हो जाओ। कुछ बताओ तो, मैं भी समझूँ। कुछ जाने-बूझे बिना मैं कर ही क्या सकता हूँ ? बोलो। बोलतीं क्यों नहीं ? क्या हुआ है ? किसी ने कुछ कहा तो नहीं ? तुम्हारे लिए मैं तमाम दुनिया को अपना दुश्मन बना सकता हूँ। तुम्हारा दुःख दूर करने की कोशिश जरूर करूँगा। बोलो, कुछ तो कहो।

ओङ्कार ने उसे उठाना चाहा। वह उठी नहीं। वैसी ही बैठी-बैठी धीरे से बोली—तुम मुझे प्यार नहीं करते।

यह सुन कर ओङ्कार के हृदय पर एक कड़ी चोट पहुँची। मैं नहीं जानता था कि यह मुझे इतना अधिक चाहती है। एक लम्बी साँस छोड़ कर उसने कहा—कुमारी, ऐसा न समझो। यह विचार मन से निकाल दो। मैं तुम्हें चाहता हूँ। सच्चे मन से प्यार करता हूँ। मनुष्य को आँखें सबसे अधिक प्रिय होती हैं। मैं उनसे भी अधिक तुमको चाहता हूँ। तुम्हारे प्रेम ने मुझे जीत कर अपना लिया है। मैं तुम्हारा हूँ। तुम मेरे हृदय की अधीश्वरी हो, मेरी सर्वस्व हो। जिस तरह भक्त के हृदय में निरन्तर ईश्वर का वास रहता है, उसी प्रकार तुम आठों पहर मेरे मन में निवास करती हो। तुम्हीं को मैं अपनी शक्ति समझता हूँ। चन्द्रमा अपनी चाँदनी के कारण प्रशंसनीय है। सूर्य अपने तेज और प्रकाश से लोक-प्रिय हो रहा है। माया अपनी चञ्चलता के द्वारा लोगों पर अपना प्रभाव जमाए हुए है। मैं तुम्हीं को

अपनी शोभा समझता हूँ। प्राणप्रिये ! मनोरमे ! कैसे बताऊँ मैं तुम्हें अत्यधिक प्यार करता हूँ ?

कुमारी—क्या सचमुच तुम मुझे चाहते हो ?

कुमारी की मोहनी के सम्मुख ओङ्कार अस्थिर हो रहा था। वह अनुपम सौन्दर्यमयी और अतुल रूप-राशियुक्त चन्दा को भूल गया। उसने कहा—कोई प्रमाण चाहती हो ? बोलो, क्या करने से तुम सन्तुष्ट हो जाओगी ? मैं वही करूँगा। तुम्हारे लिए मैं सब कुछ त्याग देने को तैयार हूँ। तुम्हारा मन रखने के लिए मैं पाप-पुण्य और भले-बुरे का विचार नहीं करूँगा। जो कहोगी, बिना किसी हिचकिचाहट के करूँगा। प्राण तक दे दूँगा। आग में कूदने से नहीं डरूँगा। पाताल में जाने से नहीं घबड़ाऊँगा। किस तरह तुम्हारा मन भरेगा ?

कुमारी—यह बहुत है, प्यारे ! मैं केवल यही चाहती हूँ कि तुम मुझे अपने हृदय के एक कोने में थोड़ा सा स्थान दे दो। मुझे वहाँ से कभी न हटाओ।

ओङ्कार—यदि तुम्हारी इच्छा हो तो मैं घर-द्वार और स्त्री को छोड़कर तुम्हारे साथ किसी अनजाने स्थान में चला चलूँ। रूख-सूखा खाऊँगा, उसी में आनन्दित रहूँगा। तुम्हारे प्रेम-रस से सींचा जाकर मेरा हृदय सदैव हरा-भरा बना रहेगा।

कुमारी—तुम्हारा थोड़ा-सा प्रेम ही मेरे लिए कुबेर का

धन है। मैं अधिक नहीं चाहती। और सुखों से तुमको वञ्चित रखने की मेरी इच्छा नहीं है।

ओङ्कार—तुममें ही मैं अपने सब सुखों का अन्त समझता हूँ। मैं चाहता हूँ केवल तुम्हें। तुमको पाकर मैं अब सब ऋद्धि-सिद्धियों को अपने सम्मुख हाथ जोड़े खड़ी पाऊँगा। तुम मुझे निरेच्छ बना दोगी।

कुमारी—ऐसा नहीं करने दूँगी। मैं तुम्हारी सम्पत्ति हूँ; पर एक स्त्री ही मनुष्य-जीवन के सुख का मूल नहीं है। दुनिया में अनगिनती चीज़ें उसके मन-बहलाव का कारण हो सकती हैं। सब का उपभोग करना चाहिए।

कुमारी का मन अब हलका दीखता था। वह उठ कर खड़ी हो गई। आँखों का पानी पोंछ डाला। वे पूर्ववत् चमकने लगीं। ओङ्कार की ओर दृष्टि पड़ते ही उसके मुख पर एक मन्द मुस्कराहट दौड़ गई। ओङ्कार देर तक उसकी निराली छटा देखता रहा।

कुमारी ने कहा—आज्ञा हो तो चलूँ। मेरा यहाँ आना कोई जान गया तो ठीक न होगा।

ओङ्कार—तुम्हें छोड़ने को जी नहीं चाहता।

कुमारी—मैं कब तुमसे दूर रहना चाहती हूँ? लाचारी से ऐसा करना पड़ता है।

ओङ्कार—कल फिर आना।

कुमारी—इज्ज़तदार आदमी का घर ठहरा। ज़रा सँभल

कर चलना पड़ता है। फिर भी मौक़ा मिलने पर ज़रूर आऊँगी।

ओङ्कार—हर समय यह समझती रहना कि मैं तुम्हारी राह देखता हुआ बैठा हूँ।

कुमारी—मैं अपना मन यहीं छोड़े जाती हूँ।

कुमारी चली गई। उसके बाद सोना आई। आते ही उसने अपना रटा हुआ जैसा पाठ सुना दिया—तुम्हारी बात मुझे स्वीकार है। अभी ही से कोशिश में लग जाती हूँ। ठीक समय आने पर ख़बर दूँगी।

ओङ्कार ने सोना को आते देखा। उसकी बातें भी सुनीं। पर मुँह से कुछ नहीं निकला। वह कुमारी के फन्दे में पड़ा हुआ फड़फड़ा रहा था। उसने सोना को देख कर भी नहीं देखा। उसकी बातें बिलकुल सीधी रहने पर भी उसके मस्तिष्क में न घुसीं।

सोना उसकी यह हालत देख कर उलटे पैरों लौट गई और जाकर कुमारी से कहा—वह भकुआ बना बैठा है। कुछ बोलता ही नहीं।

कुमारी हँस कर बोली—मैं अभी जो उसे उल्लू बना कर चली आ रही हूँ।

दारनाथ ज़ोर से चिल्ला उठा—वह काटा है !

इसी समय नीचे से उसके एक मित्र ने पुकार कर कहा—वेल, मिस्टर केदारनाथ ! गुडमॉर्निङ्ग !

केदारनाथ ने पतङ्ग पर से ध्यान हटाकर मित्र की ओर देखते हुए कहा—गुडमॉर्निङ्ग मिस्टर रघुवीर ! आइए।

रघुवीर—क्या हो रहा है ?

केदार—सन्ध्या का समय है। कहीं जाने का मन नहीं हुआ। छत पर चला आया। पतङ्ग उड़ा रहा हूँ। मन बहलेगा। साफ़ हवा भी मिलेगी।

रघुवीर—आप पतङ्ग उड़ाइए। मैं थोड़ा सैर कर आऊँ।

केदार—नहीं, नहीं, जाइए नहीं। मैं किसी की राह देख ही रहा था। आप आ गए, अच्छा हुआ। मैं आता हूँ।

केदारनाथ बातें करने में लगा था। इधर किसी ने हत्थे पर पेंच डाल कर खींच लिया। वह डोर पकड़े रह गया; पतङ्ग चली गई। चरखी में लिपटे हुए थोड़े से लाल मञ्झे को देखता हुआ वह नीचे उतरा। मित्र से हाथ मिलाया। रघुबीर ने हँसकर पूछा—पतङ्ग क्या हुई?

केदार—मेरा ध्यान आपकी ओर लगा था, किसी ने काट दी।

रघुवीर—मेरे आने से आपका पहला नुक़सान तो यही हुआ।

केदार—वाह, कैसी बातें कर रहे हैं? आइए, बैठिए! चाय बन रही है। थोड़ी सी पी लीजिए।

रघुवीर—चाय मैं बहुत कम पिया करता हूँ। एक तरह से कहना चाहिए, मुझे इसकी बिलकुल आदत नहीं।

केदार—थोड़ी सी। एक कप। चाय पीने की इच्छा न हो तो गर्म दूध सही।

बाहरी बड़े कमरे के बीच में एक टेबिल रक्खी थी। दोनों मित्र जाकर कुर्सियों पर बैठ गए। केदार ने पश्चिम तरफ़ वाले कमरे की ओर घूमकर ज़रा ज़ोर से कहा—क्यों बे छोकरे, चाय तैयार हुई या अभी देर है?

लड़के का नाम कपूर था। उसने कहा—जी, तैयार है।

केदार—जल्दी ला।

कपूर—अभी लाया।

टेबिल पर चाय का सामान सजा दिया गया। केदार ने दो प्यालों में चाय का पानी उड़ेला। रघुवीर की प्याली में दूध डालते हुए उसने कहा—इस बार आप बहुत दिनों में दिखाई दिए हैं। काम बहुत रहता है क्या ?

रघुवीर—काम तो ऐसा कुछ नहीं रहता। घर पर बैठा रहता हूँ। कहाँ जाऊँ ? कभी थोड़ी देर के लिए कहीं निकल जाता हूँ।

केदार—आपकी तन्दुरुस्ती ठीक नहीं जान पड़ती। बीमार तो नहीं थे ?

रघुवीर—ईश्वर के लिए ऐसा न कहिए। दस वर्ष से मुझे सिर-दर्द तक नहीं हुआ। आपने मुझे बहुत दिनों के बाद देखा है; इसी से आपकी दृष्टि में फ़र्क़ पड़ गया होगा।

केदार ने शक्कर की तश्तरी रघुवीर के सामने रखकर कहा—जितना चाहे, छोड़ लीजिए। आपके भाई साहब यहाँ आने वाले थे न ? फिर क्या हुआ ?

रघुवीर—छुट्टी न मिलने के कारण नहीं आ सके।

केदार—इसी से तो कहते हैं, रेलवे की नौकरी बड़ी ख़राब होती है। स्वप्न में भी छुट्टी नहीं नसीब होती। कैसा ही बड़ा काम क्यों न अटका रहे; चार-छः महीने लिखा-पढ़ी करो, तब कहीं किसी के कान में भनक पड़ती है। उस समय भी

यह कह कर टाल दिया जाता है कि रिलीविङ्ग हैण्ड्स एवेलेविल नहीं हैं। लो, मौज करो।

रघुवीर—मिनट-मिनट पर जान का खतरा रहता है, सो अलग।

केदार—वह कौन-सा काम करते हैं?

रघुवीर—कण्ट्रोलर हैं!

केदार ने सिर हिला कर कहा—कण्ट्रोलर।

रघुवीर—रेलवे की नौकरी में हद से ज्यादा तकलीफ़ होती है। इसी से कोई वहाँ की सर्विस (नौकरी) पसन्द नहीं करता। वह भी रिज़ाइन करने वाले हैं। गए हफ़्ते एक लेटर आया था उसमें यही लिखा था।

"हल्लो, मिस्टर केदारनाथ! हाऊ डू यू डू?"—कहता हुआ एक मित्र और आ पहुँचा। बड़े तपाक से अपना दाहिना हाथ बाहर निकाल दिया।

केदारनाथ प्याले में चम्मच से शक्कर घोल रहा था। उठ कर खड़ा हो गया। हाथ मिलाते हुए उत्तर में कहा—हाऊ डू यू डू? मिस्टर प्रताप!

प्रताप ने रघुवीर की ओर देख कर कहा—ओह, मिस्टर रघुवीर हैं क्या?

केदार—आप अच्छे टाइम पर आ पहुँचे। हम लोग चाय पीने जा रहे थे। अब आप भी लीजिए।

प्रताप—हाँ, हाँ।

केदार—बैठ जाइए फिर।

प्रताप एक कुर्सी पर बैठ कर बोला—मेरी चाय पीने की बहुत आदत है। दिन में कई बार पीता हूँ। अभी कई प्याले ख़ाली करके चला आ रहा हूँ।

रघुवीर—और पीजिए।

प्रताप—ज़रूर पिऊँगा। मुझे तो कोई दिन-भर चाय पिलाता रहे तो पीता रहूँ।

रघुवीर—भाई वाह! पेट है या मालगोदाम?

प्रताप—अजी, मालगोदाम कहाँ रहता है। यह बाबा जी का कमण्डल है। चाहे जितना भरो, ख़ाली ही रहेगा।

रघुवीर—ख़ूब! तब तो आपको चायपार्टी में कोई शामिल ही न करता होगा। जहाँ आप पधारे, समझ लो, वहाँ का दिवाला निकल गया।

केदार ने दूध, चाय और शक्कर का बर्तन प्रताप के सामने रख दिया। कहा—जितना पीते बने, पीजिए। कम होने पर और बनवा दी जायगी।

प्रताप ने प्याला भरा। तीनों पीने लगे। रघुवीर ने थोड़ी सी चाय रकाबी में डाल कर उसे फूँकते हुए कहा—तीन आदमियों की पङ्गत ठीक नहीं होती।

केदार—चौथा कहाँ ढूँढ़ने जाऊँ?

प्रताप—सब ठीक है जी, तीन-पाँच से क्या होता है?

हाँ, यदि मिस्टर रघुवीर का मुझसे कोई मतलब हो तो वैसा कहें।

प्रताप की जीभ जल गई। कुछ ठहर कर उसने कहा—मिस्टर केदारनाथ, आपकी सर्विस का क्या हाल है? बहुत दिनों से मैं आपको यहीं देख रहा हूँ।

केदार—सर्विस मैंने छोड़ दी है। कानपुर की क्लाइमेट ज़रा अच्छी मालूम हुई है। अब यहीं रह कर कोई रोज़गार करने का इरादा है।

प्रताप—सर्विस क्यों छोड़ दी?

केदार—मन ही तो है, ग़ुलामी में नहीं लगा। रोज़गार को मैं बहुत अच्छा समझता हूँ। 'व्यापारे बसति लक्ष्मी।' इसमें भाग्य चमकता है, तो आदमी एक दिन में कुछ से कुछ हो जाता है। पाँच सौ रुपया पाने वाला आदमी एक छोटे-मोटे व्यापारी के सामने कुछ नहीं है। व्यापारी 'शाह' कहलाता है। ग़ुलाम ग़ुलाम ही है।

प्रताप—आपने सवा सोलह आने बात कही। रोज़गारी की जो इज़्ज़त और क़द्र रहती है, वह ग़ुलाम कभी नहीं पा सकता। कितनी बड़ी और ऊँचे दर्जे की नौकरी क्यों न हो, मैं तुच्छ समझता हूँ। मेरे घराने में सदा से रोज़गार होता आया है।

रघुवीर—मैं बेकार बैठा हूँ। मुझे भी अपने साथ ले

लीजिएगा मिस्टर केदारनाथ ! थोड़ा-बहुत रुपया, जितना मुझसे हो सकेगा, लगा दूँगा।

केदार—यह तो आपने मेरे मन की बात कही। मैं चाहता ही था कि मुझे कोई सङ्गी मिले।

प्रताप का प्याला ख़ाली हो गया, उसने दूसरा भरा। उसके बाद केदार ने भी एक और लिया। रघुवीर वैसे ही बैठा रहा। प्रताप ने रघुवीर की ओर देख कर कहा—क्यों मिस्टर रघुवीर, आपने हाथ क्यों खींच लिया ?

रघुवीर—बस, हो चुका।

प्रताप—वाह जी वाह ! यह नहीं होगा। कम से कम एक कप आपको लेना ही पड़ेगा।

रघुवीर—माफ़ कीजिए।

प्रताप—यह आप ठीक नहीं करते। मुझे आपने माल-गोदाम बना डाला और आप गुड्सट्रेन का एक वैगन ही बन कर रह गए। इस डर से ज्यादा लोड नहीं करते कि कहीं कोई डैमेज न हो जाय ; तब साइडिङ्ग में शण्ट होना पड़ेगा।

केदार ने रघुवीर से पूछा—थोड़ा दूध दूँ ?

रघुवीर—नहीं, रहने दीजिए।

दीवार पर किसी की छाया देख कर केदार ने बाहर दरवाज़े की ओर दृष्टि फेरी। ख़ूब लम्बा-चौड़ा आदमी था। रङ्ग आबनूस के कुन्दे की तरह बिलकुल काला, कमर पर

एक चिथड़ा, शरीर पर फटा कुरता और सिर पर मैली पगड़ी थी। हाथ का मोटा लट्ठ धरती पर पटक कर उसने कहा—सरकार, भूखा हूँ। कुछ दे दीजिए, चने लेकर खा लूँगा।

केदार उसकी भयानक आकृति और लाल आँखें देख कर सहम गया। कुछ देर के बाद डर छूटा, तो मन में मुस्करा कर कहा कि कौन जानवर है? प्रकट में बोला—इतने मोटे-ताज़े आदमी होकर भीख माँगते हो—तुम्हें शर्म नहीं आती?

वह—पापी पेट के कारण सब करना पड़ता है सरकार! शर्म-हया छूट जाती है।

केदार—कहीं नौकरी क्यों नहीं कर लेते?

वह—आपके समान कई बाबुओं ने कहा कि नौकरी क्यों नहीं कर लेते, पर नौकरी देने के लिए कोई नहीं खड़ा होता। मैं नौकरी करने को तैयार हूँ। कहीं मिले भी!

प्रताप ने पूछा—भीख माँगने के सिवा और कोई काम करना जानते हो या बिलकुल कोरे हो?

छाती फुला कर उसने कहा—जानता क्यों नहीं?

प्रताप—क्या जानते हो?

वह—कभी-कभी कोई भले आदमी दो-एक रुपया देकर, अपने साथ अदावत रखने वाले किसी दूसरे आदमी पर

लाठी चलाने के लिए कह देते हैं। दो-चार हाथ देता हूँ और राह लेता हूँ।

रघुवीर—बड़े ख़ौफ़नाक आदमी हो।

वह—बड़े काम का भी हूँ सरकार!

केदार—तुम्हारा नाम क्या है?

वह—मेरा नाम गोरेलाल है।

केदार को हँसी आ गई। दोनों मित्र भी गोरेलाल का नाम सुन कर अपनी हँसी न रोक सके। चेहरा कोयले को भी मात करने वाला है और नाम गोरेलाल! केदार हँसते हुए बोला—गोरेलाल कि कल्लू?

गोरेलाल—नहीं सरकार, गोरेलाल।

केदार—अच्छा तो गोरेलाल!

गोरेलाल—सरकार!

केदार—तुम कितने रुपए महीने पर नौकरी करोगे?

गोरेलाल—मुझे खाना और कपड़ा देते जाइए, ज़्यादा मैं नहीं चाहता। यदि आप दया करके कुछ और देंगे तो ले लूँगा; नहीं तो नहीं सही।

केदार—तुम्हारी ख़ुराक कितनी होगी?

गोरेलाल—ज़्यादा नहीं, दोनों वक़्त में सेर भर अनाज काफ़ी होगा। डील बड़ा है, पर खाता थोड़ा हूँ।

केदार—अच्छा, तुम मेरे पास रहो। अभी बहुत ज़ोर से भूख लगी है?

गोरेलाल—हाँ सरकार, बहुत भूखा हूँ।

केदार—क्या खाओगे ?

गोरेलाल—मेरे खाने की भली चलाई। जो मिल गया वही खा लेता हूँ। मैं स्वाद करना नहीं जानता, पेट भरता हूँ। सरकार चाहे जो कुछ दिला दें।

केदार ने एक चवन्नी उसके सामने फेंक कर कहा—लो, बाज़ार में जाकर कुछ खा आओ।
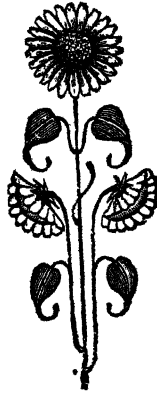
न्दा बोली—पान लेते जाओ।

वह चटपट बैठ कर जल्दी-जल्दी पान लगाने लगी। ईश्वरप्रसाद ठहर गया। किवाड़ की ज़ञ्जीर पकड़ कर सहसा बोला—मैं तुमसे कहना भूल गया था। आज मोतीलाल जी के यहाँ बारात आवेगी। उनकी लड़की की शादी है। सबको बुलावा आया है।

चन्दा—कब जाना पड़ेगा?

ईश्वर—दस बजे। अभी दो घण्टा है।

चन्दा ने पान पोंछ कर चूना लगाते हुए कुमारी से कहा—तुम्हें भी चलना होगा।

कुमारी—मैं वहाँ जाकर क्या करूँगी?

चन्दा—मेरा ही वहाँ क्या धरा है?

कुमारी—तुम्हें जाना चाहिए।

चन्दा—तुम न चलोगी, तो मैं भी न जाऊँगी।

कुमारी—तुम ज़िद करती हो तो चलूँगी।

ईश्वरप्रसाद पान लेकर चला गया। चन्दा ने कहा—जाओ, कपड़े पहनो। तब तक मैं भी तैयार होती हूँ।

कुमारी उठकर सोना के पास चली गई। वह चावल चुन रही थी। कुमारी ने भीतर से किवाड़ लगा कर सोना से कहा—आज अच्छा मौक़ा है।

सोना ने अपनी आँखें कुमारी के मुख पर स्थिर करके कहा—कैसा मौक़ा ?

कुमारी—आज ओङ्कार को बुलाना होगा।

सोना—आज कैसे हो सकता है ?

कुमारी—तुम्हारे मालिक किसी की बारात में जावेंगे। चन्दा के साथ मैं भी जाऊँगी। तुम भी चलना। बहाना बना कर हम लोग चन्दा के साथ जल्दी लौट आवेंगे। तभी सब काम होगा।

सोना—कैसे ? क्या करोगी ?

कुमारी—तुम देखती भर रहना, मैं सब कर लूँगी। घबड़ाती क्यों हो ?

सोना—मैं नहीं घबड़ाती। जब सब तुमने अपने ही हाथों में ले लिया है, तब मैं क्यों घबड़ाऊँगी ? मेरे लायक़ कोई काम पड़े तो बता देना। जैसा कहोगी, मैं कर दूँगी।

हाँ, मैं तुमको सलाह देने लायक़ नहीं हूँ, न मुझमें इतनी बुद्धि है।

कुमारी—सब लायक़ हो। बुद्धि भी काफ़ी है। अच्छा एक काम अभी ही है।

सोना—क्या ?

कुमारी—ओङ्कार से जाकर यह कह आना है कि वह आज रात को चन्दा के पास आने के लिए तैयार रहे।

सोना मुँह छोटा करके बोली—इस काम से मैं माफ़ी चाहती हूँ। ओङ्कार के पास जाने को छोड़ कर और कोई काम हो तो बताओ। उसके पास जाने को मेरा जी नहीं करता।

कुमारी—अच्छा, तो मैं ही जाती हूँ। तुम्हारे मालिक कहाँ हैं ?

सोना—अभी-अभी बाहर किसी तरफ़ चले गए हैं।

कुमारी—देखना, होशियार रहना। मैं अभी आती हूँ।

सोना—मैं नहीं जाती इससे तुम कुछ बुरा तो नहीं मान गईं ?

कुमारी—पगली हो क्या ? मुझे इसका ज़रा भी ख्याल नहीं है। मैं स्त्री का हृदय पहचानती हूँ। मेरी तरफ़ से कोई ऐसा विचार मन में न लाना।

सोना ने कृतज्ञता दरशा कर कहा—बाई जी, तुम मुझ पर बहुत दया रखती हो।

कुमारी ओङ्कार के पास गई। बड़ा प्रेम जता कर कहा—आज मेरे लिए बड़ी प्रसन्नता का दिन है। तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी। ईश्वर को बहुत धन्यवाद देती हूँ। उसने आज मुझे तुम्हारा एक छोटा सा काम करने का शुभ अवसर दिया है।

ओङ्कार कुमारी के प्रेमोद्यान में झूमता हुआ चक्कर लगाते बोला—कैसी इच्छा? मेरा कैसा काम? प्रिये! तुम्हारा रूपरस पान करने के सिवा मेरी कोई इच्छा नहीं है।

कुमारी अपने कोमल हाथ से ओङ्कार का हाथ पकड़ कर बोली—आज तुम्हें चन्दा के पास ले चलूँगी। ठीक एक बजे आऊँगी। तैयार रहना।

ओङ्कार ने स्थिर भाव से कहा—मैं कहीं नहीं जाऊँगा।

कुमारी—क्यों? इसके लिए तुम इतना प्रयत्न कर चुके हो। इतने आतुर रहा करते हो। अब क्या बात हो गई है?

ओङ्कार—पहले मैं अवश्य चाहता था, पर अब बिलकुल इच्छा नहीं है। अब तुम्हीं एकमात्र मेरी आधार हो।

कमारी—यह नहीं होगा। मैं तुम्हारे मन में कोई लालसा अपूर्ण नहीं रहने देना चाहती। तुम्हें चलना पड़ेगा।

ओङ्कार—मेरे मन में कोई लालसा नहीं है।

कुमारी—कोई नहीं?

ओङ्कार—न।

कुमारी—देखो, चन्दा-जैसी स्वरूपवती रमणी के हाथ

में आ जाने पर योंही छोड़ देना ठीक नहीं है। मेरा कहना मानो। चलो, क्या तुम नहीं जानते कि मैं तुम्हें प्रसन्न देख कर कितनी आनन्दित होऊँगी ?

ओङ्कार—उसे पाकर मैं ज़रा भी प्रसन्न नहीं होऊँगा। मेरी प्रसन्नता तुम्हीं से है। सुन्दरता की अपेक्षा प्रेम में हृदय को आकर्षित करने की शक्ति अधिक रहती है।

कुमारी यहाँ चकित हो गई। अपने ऊपर ओङ्कार को इस तरह अनुरक्त देख पसीज उठी। उसका हृदय दयार्द्र हो गया। किन्तु तो भी वह अपने निर्धारित पथ से विच-लित न हुई। अपने निश्चय पर अटल रही। घुमा-फिरा कर ओङ्कार को दूसरी तरह से फाँसा। बोली—प्यारे, इस समय मुझे ऐसा मालूम पड़ता है, जैसे मैं तुम्हारे साथ स्वर्ग में होऊँ। आज तुम्हारा प्रेम पाकर मैं अपने को कृतकृत्य समझती हूँ। मेरा बड़ा सौभाग्य है। तुम्हें पाकर मैं मन में फूली नहीं समाती, हर्ष उमड़ा पड़ता है। अब मुझे विश्वास हो गया कि तुम मेरे और मैं तुम्हारी हूँ। हम दोनों प्रेम-सूत्र में बँधे हुए एक ही प्राणी हैं।

ओङ्कार का मस्तक कुमारी के कन्धे पर झुक गया। वह प्रेम में लवलीन था। क्षण भर के लिए उसे ऐसा जान पड़ा, जैसे वह किसी अन्य सुखमय राज्य में विचरता हो।

कुमारी ने वीणा के मधुर झङ्कार-तुल्य मीठे और धीमे स्वर से कहा—पर प्यारे, तुम्हें यह काम करना ही होगा।

न ! ऐसे कहीं नहीं जाना होता। पास में नए कपड़े न हों, तो एक बात भी है।

कुमारी—देर लगेगी। अभी मैंने सन्दूक़ भी नहीं खोली।

चन्दा—अब तक क्या करती रहीं ? चलो।

चन्दा ने कुमारी को ले जाकर सन्दूक़ के पास खड़ा कर दिया। कुमारी एक धुली हुई बढ़िया साड़ी निकाल कर पहनने लगी।

चन्दा ने पूछा—सोना कहाँ है ?

कुमारी—क्यों ?

चन्दा—कह दूँ, वह भी चलेगी।

कुमारी—अपने कमरे में होगी।

चन्दा—मैं आती हूँ।

चन्दा ने जाने के लिए मुख फेरा। कुमारी ने कहा—कहना क्या है, जाते समय साथ ले लेना।

दस बजने के कुछ पहले ही सड़क पर मोटर आ गई। ईश्वरप्रसाद ने आकर कहा—चलो। तैयार हो न ?

चन्दा—हाँ, तैयार हूँ।

कालिका सो रहा था। कुमारी ने उसे जगाया। कहा—चल, तुझे बारात दिखा लाऊँ।

चन्दा बोली—उसे क्यों जगाती हो ? पड़ा रहने दो।

कुमारी—रात में नींद खुलेगी तो डरेगा। चलने दो।

आँखें मींजते हुए उठ कर कालिका चलने लगा। नीचे

आकर चन्दा ने सोना को साथ ले लिया। सब कोई मोटर पर बैठ कर चले।

मोतीलाल की स्त्री ने चन्दा का स्वागत किया। सम्मान के साथ बैठाया। थोड़ी देर तक हँस-हँस कर बातें करती रही। फिर अपने झञ्झटों में लग गई। छोटी-बड़ी, धनी-ग़रीब, सभी श्रेणी की स्त्रियाँ आई थीं। जिसका जिससे मन मिला, वह उसी से बातें करने लगी। चन्दा को कई एकों ने घेर लिया। तरह-तरह के प्रश्न करने लगीं। कुमारी ने अपने को उनमें नहीं मिलाया। वह दूर रही। अवसर देख सब की आँखें बचा कर वह एकान्त में चली गई। कालिका को इशारे से बुला कर कहा—देख, जो मैं कहती हूँ, अच्छी तरह याद रखना; किसी से कहना भी नहीं।

कालिका—क्या मैंने अब तक तुम्हारा कहना भी नहीं किया?

कुमारी—किया है। तू अच्छा लड़का है। सुन, जब अभी रात में ठीक एक बजे तब यह चिट्ठी बाबू ईश्वरप्रसाद जी के हाथ में दे देना। कचहरी का घण्टा ज़ोर से बोलेगा। ध्यान रखना।

कुमारी ने चिट्ठी कालिका को दी। कालिका ने पूछा—क्या कहूँगा?

कुमारी—कहना, किसी आदमी ने आपको यह चिट्ठी दी है, मैं पहचानता नहीं।

कालिका—तुम्हारा नाम न लूँगा ?

कुमारी—नहीं, मेरा नाम भूल कर भी न लेना। कह देना, कोई आदमी इसे आपको देने को कह कर जल्दी से चला गया है। मैं उसे ठीक देखने भी नहीं पाया। क्या कहेगा ?

कालिका ने सिर हिला कर कहा—समझ गया। कह दूँगा।

कुमारी—क्या कहेगा ? एक बार मुझसे तो कह।

कालिका—जो तुमने कहा है, मुझे अच्छी तरह याद है। ठीक समझ गया हूँ। कह दूँगा।

कुमारी—ग़लती नहीं करना। पास ही कचहरी है। ज़ोर से एक बार घण्टा बोले, तब।

कालिका—अच्छा।

कुमारी—बाबू ईश्वरप्रसाद जी के हाथ में।

कालिका—हाँ।

कुमारी—और तू आज रात को घर न आना। बारात देखना। नींद आने पर यहीं कहीं सो रहना।

कालिका—अच्छा।

कालिका के पास से आकर कुमारी सब स्त्रियों के बीच में बैठ गई। उनसे खुल-खुल कर बातें करने लगी। कुमारी की मज़ेदार बातें सुन कर सब बहुत ख़ुश हुईं।

साढ़े ग्यारह बजे बारात दरवाज़े पर आ लगी। मोती-

लाल की स्त्री हाँफती हुई आकर बोली—सब बाहर की छत पर चली जाओ। बारात आ गई है।

वे छत पर गईं और बारात की शोभा देखने लगीं। बारात ख़ूब सज कर निकली थी। आदमी खचाखच भरे पड़े थे। किसी का भीड़ चीर कर सड़क के एक किनारे से दूसरे किनारे पर निकलना असम्भव था। कई गैस की बत्तियाँ जल रही थीं। टमटम और घोड़ों की क़तार लगी थी। पहाड़ के समान बड़े डील वाले हाथी को देख कर स्त्रियों ने बड़ा कौतुक माना। उसकी पीठ पर पड़े हुए लाल कपड़े से अस्तप्राय अंशुमाली की अरुण किरणों का धोखा होता था। दूल्हा सिर पर मौर रक्खे पालकी से नीचे उतरा। स्त्रियाँ आँचल में धान रख कर मुट्ठी भर-भर कर दूल्हे पर बौछार करने लगीं। नीचे से वर-पक्ष के लोगों ने उत्तर में उन पर बताशे चलाने आरम्भ कर दिए। अकस्मात् किसी का कस कर फेंका हुआ एक बताशा आकर कुमारी की आँख पर लगा। वह पीछे हट आई और आँख मलने लगी।

चन्दा ने पूछा—क्या हुआ ?

कुमारी साड़ी के छोर से आँख पोंछती हुई बोली—आँख में बताशा लग गया है।

चन्दा—बहुत दर्द करता है क्या ?

कुमारी—हाँ, ज़ोर से लगा है।

चन्दा उसे भीड़ से दूर ले गई। एक स्थान पर बैठ कर उसका सिर अपनी छाती से सटा कर रख लिया। धोती को लपेट, उसकी पोटली-सी बना, उस पर फूँक मार कर आँख सेंकने लगी। सहानुभूति से भरे हुए स्वर से पूछा—अब कैसा है?

कुमारी—अब तो दर्द पहले से कुछ कम है।

चन्दा—घबड़ाओ नहीं, बहुत जल्द अच्छा हो जायगा। अधिक चोट नहीं लगी है।

इसके बाद कुमारी का मन बारात देखने में नहीं लगा। उसने कहा—अब घर चलो।

चन्दा तुरन्त राज़ी हो गई। उसने सोना को बुला लिया। कुमारी से पूछा—कालिका कहाँ है। उनको अपने जाने की ख़बर दे दूँ।

कुमारी—उनसे क्या कहती हो? चलो चलें। वे आ जायँगे। सबका एक साथ चले जाना ठीक नहीं है। यहाँ के लोग मन में कुछ कहने लगेंगे। कालिका उन्हीं के साथ आ जायगा। तीनों चल दीं।

* * *

देवी उस समय पड़े-पड़े स्वप्न देख रही थी। सहसा चौंक पड़ी। वह ख़ूब फले हुए पेड़ पर बैठ कर पके-मीठे आम खा रही थी। एक अच्छा पीला आम दूर पर देखा।

उसे लपक कर तोड़ने लगी तों गिर पड़ी। इस स्वप्न से उसका जी उदास हो गया। फिर नहीं सोई, रात आँखों में ही कट गई।

मारी के चले जाने के बहुत देर बाद कहीं ओङ्कार के होश ठिकाने हुए। उसमें चेतना-शक्ति का आविर्भाव हुआ। वह सबसे ऊपर की छत पर चला गया और धीरे-धीरे टहलने लगा। विचारों ने उसका पीछा न छोड़ा था। उस समय वह सौन्दर्य और प्रेम की विवेचना कर रहा था। दोनों में कौन श्रेष्ठ है? प्रेम या सौन्दर्य? प्रेम किस तरह मन को अपना लेता है, यह मैं देख चुका हूँ। सौन्दर्य में मन को खींच कर वश में कर लेने की कितनी बड़ी महान् शक्ति है, इसका भी मैं अनुभव कर चुका हूँ। किसको बड़ा समझूँ? किसकी ओर ढलूँ। एक बार किसी ने मजनूँ से कहा था, तुम्हारी लैला तो बिलकुल कलूटी है। उस पर क्यों मुफ़्त में जान देते हो? मजनूँ ने इसका क्या अच्छा उत्तर दिया था। उसने कहा था—मेरी नज़रों से

देखो। ख़ूबसूरती में लैला से बढ़ कर दुनिया भर में कोई नहीं मिलेगी। मजनूँ की आँखों में प्रेम का अञ्जन लगा था। उसी प्रेम के कारण अपनी लैला को वह सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी समझता था। जिस समय कुमारी मुझसे प्रेम की बातें करती है, मैं अपने को भूल जाता हूँ। एक नशा-सा चढ़ जाता है। उसके मुख की ओर देखता हूँ, तो उसे चमकता हुआ और अत्यन्त सुन्दर पाता हूँ। तो क्या सच ही प्रेम से सौन्दर्य की सृष्टि होती है? तब तो प्रेम ही बड़ा है। इधर सौन्दर्य भी तो कम नहीं जान पड़ता। जिस समय चन्दा के अप्रतिभ मुख का स्मरण करता हूँ, मन बेटोक उसकी ओर दौड़ने लगता है। यह आकर्षण क्या है? प्रेम ही तो है। मन का खिंचाव तो प्रेम से ही होता है। तब सौन्दर्य भी प्रेम को उत्पन्न करने वाला हुआ। चन्दा की अपूर्व सुन्दरता में जब मन जाकर रम जाता है, तब यही बोध होता है कि समस्त विश्व का प्रेम आकर उसी में समा गया है। कोई कम नहीं। दोनों ही श्रेष्ठ हैं। मैं दोनों ही को अपनाऊँगा। प्रेममयी अपने चाहने वाली कुमारी को हृदय में बैठा लूँगा और रूपमयी सर्वोपरि सुन्दरी चन्दा को उसी के पास स्थान दूँगा।

अहा! आज की रात्रि कैसी सुहावनी है। चन्द्रमा अपनी पूर्ण कलाओं से परिपूर्ण है, चक्रवर्ती राजा की तरह निश्शङ्क होकर गगन-पथ पर आनन्द से हँसता हुआ

अकेला विचरता है। मलय-मारुत अपनी सुस्निग्ध सुगन्ध से चित्त को प्रफुल्लित करता है। इसका ठण्ढा झकोरा मन को अतीव सुखपूर्ण बनाने वाला है।

ठीक एक बजे कुमारी आई। ओङ्कार से कहा—चलो, समय हो गया।

ओङ्कार निश्चय कर चुका था, चल पड़ा। कुमारी उसे ऊपर ले गई। चन्दा के कमरे के पास पहुँच कर उसने धीरे से कहा—यही चन्दा का कमरा है। वह अकेली है। भीतर कोई नहीं है। बेखटके रहो। चले जाओ। वहाँ मेरा कोई काम नहीं है। तुम जाकर अपना ठीक कर लो। अगर कोई ज़रूरत पड़ेगी तो मैं यहाँ हूँ।

ओङ्कार ने भीतर पैर रक्खा। चन्दा कपड़े बदल कर पलङ्ग पर बैठी थी। सोने का उपक्रम कर रही थी। अचानक ओङ्कार को भीतर आते देख वह चौंक पड़ी। भय और विस्मय से उसकी विचित्र दशा हो गई। बोलते नहीं बना—न चिल्ला सकी, न कुछ पूछ सकी। उसकी जीभ ऐंठ कर तालू से चिपक गई। दाँत बैठ गए। होंठ नहीं खुले। ओङ्कार ने देखा, चन्दा के रूप की प्रभा से कमरा जगमगा रहा है। वह इन्द्राणी की तरह पलङ्ग पर बैठी है। नेत्र सर्प के मणि की नाईं चमक रहे हैं। ओङ्कार इस अश्रुतपूर्व एवं अपरिमित सौन्दर्य के सम्मुख अपना गौरव भूल गया। घुटने टेक कर चन्दा के सामने बैठ गया। हाथ जोड़े हुए और

उसके रूपामृत का पान करते हुए कहने लगा—सौन्दर्यमयी, मुझ दास पर दया करो। मैं तुम्हारे रूप-लावण्य पर हृदय से मुग्ध हो गया हूँ। मैंने जब तुम्हें देखा नहीं था, तभी से तुम पर प्रेम करना आरम्भ कर दिया है। एक चित्र में अङ्कित तुम्हारी मोहिनी मूर्त्ति पर मोहित हुआ था। बड़ी कठिनता से तुम्हारा पता लगाया। आँखों से देख लेने पर चाह और भी बढ़ गई। अभी तक दिन-रात मैं तुम्हारे ही विषय में सोचता रहा हूँ। कोई एक पल ऐसा नहीं बीता है, जब तुम्हारी अपूर्व छटा मेरी आँखों के सामने नाचती न रही हो। आज बड़े भाग्य से तुम्हारा दर्शन हुआ—तुमसे बातचीत करने का सुअवसर मिला। सुन्दरी रमणियाँ सहज ही दयावान् तथा उदार होती हैं। उनकी सुन्दरता ही उनकी दया का प्रमाण होती है। तुम भी दया का अवतार होंगी, इसमें सन्देह नहीं। अपनी उस दया का एक कण मुझ पर छिड़को। इससे मेरी मृत-देह में जीवन का सञ्चार हो जायगा। तुम्हारे लिए मैं व्याकुल हो रहा हूँ। तुम्हारा प्रेम अपने प्रेम के बदले में चाहता हूँ। मुझे प्रेम-दान दो। सच जानो, मैं मछली के समान तुम्हारा प्रेम-जल न पाने से जीवित न रह सकूँगा। पपीहे के सदृश स्वाति-बूँद के बिना प्यासा मर जाऊँगा। तुम्हीं मेरी जीवनाधार हो। मुझे बचाओ। मेरी रक्षा करो। तुम्हारे बिना मेरी और कोई गति नहीं है।

चन्दा कुछ समझ न सकी, क्या हो रहा है। घबराहट से उसके सारे शरीर से पसीना चू रहा था। सब कपड़े भीग गए थे।

ओङ्कार कह रहा था—मेरी प्राणेश्वरी! मुझ तुच्छ की रक्षा करो। तुम पर मेरा अगाध स्नेह है। स्नेह का बदला स्नेह ही से चुकाया जा सकता है। मैं तुमको प्यार करता हूँ। तुम भी मुझे प्यार करो। प्यार अवहेलना करने की सामग्री नहीं है। यह सदैव हृदय में स्थान पाता है। प्राणाधिक, मेरे इस प्रेम-प्रकाश को पागल का प्रलाप न समझ लेना। जो मैं कह रहा हूँ, सब सत्य है। प्रेम हाथ में लेकर दिखा देने की वस्तु होती, तो मैं उसे अवश्य दिखा देता। तुम्हारी दृष्टि अन्तर्भेदिनी है। मेरे हृदय में वह किस प्रकार दृढ़ता से स्थित है, देख लो। इसकी परीक्षा भी की जा सकती है। यदि तुम्हें मेरा विश्वास न हो, तो मेरी परीक्षा ले सकती हो। परीक्षा देने के लिए मैं प्रसन्नता-पूर्वक तैयार हूँ। मैं विश्वसनीय हूँ, यह बतलाने के लिए चाहे जो कर सकता हूँ। कहो, क्या करूँ? प्रेमी के हृदय में इतनी शक्ति रहती है कि वह असम्भव को भी सम्भव सिद्ध कर सकता है। कैसा ही काम क्यों न हो, मुझसे कहो, मैं उसे अवश्य पूरा कर दूँगा। तुम्हारे लिए मैं अपना सर्वस्व न्योछावर कर देने से मुख नहीं मोड़ूँगा। मेरी जीवन-निधि, तुम मेरे रोम-रोम में बस गई हो। मैं केवल × × ×

सहसा खटपट की आवाज़ सुनाई दी। कुछ ही क्षण में ईश्वरप्रसाद दरवाज़े पर आकर खड़ा हो गया।

ईश्वरप्रसाद कालिका का दिया हुआ पत्र पढ़कर बड़ा बेचैन हो गया था। उसमें लिखा था:—

"बाबू ईश्वरप्रसाद जी,

जितनी जल्दी बन सके, आप घर पहुँचिए। कोई दुष्ट आपकी निर्दोष स्त्री पर अत्याचार करने वाला है।

आपका एक हितैषी"

एकाएक उसे इस पर विश्वास नहीं हुआ। चन्दा तो यहाँ है, घर में उस पर अत्याचार कैसे होगा? फिर सोचा, किसी को योंही कुछ लिख भेजने की क्या ग़रज़ पड़ी है? इसकी जाँच करनी चाहिए। उसने मोतीलाल को बुलाकर कहा—देखिए, मेरे घर के लोग यहाँ हैं या चले गए हैं?

थोड़ी देर के पश्चात् मोतीलाल आकर बोला—मैंने खोजवाया; वे यहाँ नहीं हैं। शायद घर चली गईं। किसी से कह कर नहीं गईं। जाना था तो कह कर जातीं।

ईश्वरप्रसाद के मुख पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। पैदल ही दौड़ता हुआ घर भागा। पहुँच कर देखा तो बात सच निकली। मुख क्रोध से तमतमा उठा। आँखें अङ्गार हो गईं। ओङ्कार अचानक उस क्रोध से भभकती हुई भयङ्कर मूर्ति को देख कर अत्यन्त भयभीत हो गया। डर से उसका

मुख विवर्ण हो गया। समूचा शरीर थर-थर काँपने लगा। प्रेम-काण्ड समाप्त होकर विपत्ति-काण्ड आ उपस्थित हुआ। अब क्या करूँ? भागूँ? बिना भागे त्राण नहीं। ओङ्कार सिर पर पैर रख कर भागा। जिस राह से आया था, उसे ईश्वरप्रसाद रोके खड़ा था। उसके सामने एक दरवाज़ा खुला था। वह उसी ओर लपका। बाहर खुली छत पर आया। छत के किनारे की दीवार नीची थी। क़रीब डेढ़ फुट की रही होगी। पैर नहीं थमे। ओङ्कार लुढ़क कर नीचे गिर पड़ा। वह इतना डर गया था कि उतने ऊँचे से गिरने पर भी उसके मुँह से एक चीख़ तक न निकली।

ओङ्कार के गिर जाने पर सबके मन की दशा एक-सी हो गई हो, सो नहीं। उनके मन में भय अवश्य समा गया था, पर उस भय के साथ किसी के मन में कुछ और किसी के कुछ था। ईश्वरप्रसाद क्रोध से अधीर हो रहा था। छत तक उसने ओङ्कार का पीछा किया। फिर जो हुआ, उसे देख कर उसकी अवस्था में बड़ा भारी परिवर्त्तन हुआ। एक बार उसके मन में आया, अच्छा हुआ, पापी को पाप का दण्ड मिल गया। जो जैसा करेगा, वैसा भोगेगा। बगुला होकर हंस बना फिरता था। जानता नहीं था कि इस कलियुग में भी परमात्मा का अस्तित्व है। वह सबके कर्मों को बारीक निगाह से देखता है और उनका उचित फल देता है। पापी पाप करके बचा नहीं रह सकता। किन्तु जब

उसने ओङ्कार के अपनी छत पर से गिर पड़ने के कारण आने वाले भीषण परिणाम और भारी अनर्थ का ध्यान किया, तो मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। चन्दा सरल हृदय की स्त्री थी। छल-प्रपञ्च में कभी नहीं पड़ी थी। वह सारा दृश्य उसके सामने नाटक के समान बीत गया। वह आश्चर्य से चकित और भय से भयभीत हो रही थी। अन्तिम बार अपने को वह नहीं सँभाल सकी। बेहोश होकर वहीं पलङ्ग पर गिर पड़ी। कुमारी के हृदय में डर का अंश बहुत थोड़ा था। अपना बदला लेकर वह फूली न समाती थी। उसने प्रसन्नतासूचक एक विकट चीत्कार किया। ज़ोर से ठहाका मार कर एक पैशाचिक हँसी हँसी। उसके मन का आवेग इतना बढ़ गया कि वह अपनी सुध-बुध खो बैठी। सोना भय, दुःख और खेद से पगली बन गई। अपने साथ किए गए कठोर व्यवहार का वह इतना कठिन दण्ड नहीं देना चाहती थी। उसकी आँखें फट कर बाहर निकलने लगीं। व्याकुलता से इधर-उधर दौड़-धूप करने लगी। अन्त में थक कर गिर पड़ी।

सबसे पहले ईश्वरप्रसाद की आँखें खुलीं। वह हड़बड़ा कर उठ बैठा। एक पल में उसे बीती घटना याद हो आई। नीचे झुक कर देखा, ओङ्कार चेष्टाहीन पड़ा था। हाथ-पैर नहीं हिलते थे। ईश्वरप्रसाद काँप उठा। शायद मर गया है। यह बड़ी भयानक बात हुई। मेरी भी कुशल नहीं दीखती।

फाँसी पर लटकना पड़ेगा। आकाश का रङ्ग बदल गया था। हवा ठण्ढी हो चली थी। जल्दी ही सवेरा होने के लक्षण दीखते थे। उसका भय अपनी सीमा तक पहुँच गया। निराशा की हद हो गई। भय और निराशा के सिरे पर साहस खड़ा रहता है। अब उसने ईश्वरप्रसाद का साथ दिया। वह उठ कर खड़ा हो गया। मकान के बाहर आकर पिछवाड़े की तरफ़ गया। पास आकर ओङ्कार के शरीर को देखा, बिलकुल मुर्दा। देह छुई, बर्फ़ के समान ठण्ढी। छाती पर हाथ रक्खा, धड़कन जरा भी नहीं। मुँह में अँगुली डालकर जीभ टटोली, गर्मी नाम-मात्र नहीं। पीछे घूम कर देखा, सायँ-सायँ कर रहा था। वह सायँ-सायँ मन में घोर विकार उत्पन्न करने वाला था। ईश्वरप्रसाद अपनी नई आविर्भूत शक्ति से शक्तिशाली हो रहा था। उसने फुर्ती के साथ ओङ्कार के मृत-शरीर को उठा लिया और गङ्गा की ओर चला। उसके पैर बहुत भारी हो रहे थे। बड़ी कठिनता से एक पग आगे पड़ता था। उसने हिम्मत नहीं छोड़ी। एकदम चला ही गया। गङ्गा के किनारे पहुँचा। ज़ोर से लाश फेंक दी।

जिस समय ईश्वरप्रसाद लाश फेंक रहा था, एक आदमी उसके बिलकुल पास से निकल गया। उसने ईश्वरप्रसाद को पहचान लिया; पर ईश्वरप्रसाद को उसका जरा भी ज्ञान न हुआ। अभी तक उसकी साँस एक प्रकार से रुकी-सी थी।

लाश फेंककर उसने खुल कर साँस ली। साथ ही वह पहले का साहस विलीन हो गया। उसे कुछ सुझाई न देने लगा। सिर में चक्कर आ गया। आँखें तलमला गईं।
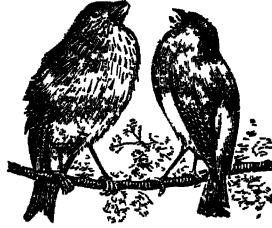
दारनाथ कुर्सी पर बैठा हुआ ज़ोर-ज़ोर से टेबिल पर हाथ पटक कर बेसुरा आलाप भर रहा था—

> मैंने मार लिया है बाज़ी;
> अब तो दुश्मन मेरे हाथ।
> अब तो दुश्मन मेरे हाथ,
> हाँ जी, दुश्मन मेरे हाथ।

यह हल्ला और भड़भड़ाहट सुनकर गोरेलाल भीतर आया। पूछा, कहिए क्या है सरकार? आपने मुझे बुलाया तो नहीं?

केदार—नहीं बुलाया। जाओ अपना काम करो।

गोरेलाल जाने लगा। केदार ने फिर कहा—यहाँ आओ। भीतर खूँटी पर टोपी टँगी है। उसी के पास छड़ी रक्खी है। उठा लाओ, घूमने जाऊँगा।

गोरेलाल ने छड़ी और टोपी लाकर दे दी। केदारनाथ अकड़ता हुआ चला।

गोरेलाल ने पूछा—मैं भी चलूँ।

केदार—तुम्हारी कोई ज़रूरत नहीं है।

वह घूमते-घामते ईश्वरप्रसाद के घर पहुँचा। सूर्यास्त होने में कुछ देर न थी। आकाश ने रङ्ग-विरङ्गा रूप धारण कर रक्खा था। सौन्दर्यमयी प्रकृति-देवि के मुख पर मन्द मुस्कान शोभा दे रही थी। सोना बाहर टहल रही थी। सिर पर से धोती सरक कर नीचे गिर पड़ी थी। बाल खुल कर छितरा गए थे। वह इन बातों से बिलकुल बेख़बर थी।

केदारनाथ ने उससे पूछा—बाबू ईश्वरप्रसाद जी घर पर हैं ?

सोना ने एक बार सिर उठा कर उसकी ओर देखा; फिर टहलने लगी। कोई उत्तर नहीं दिया।

"बहरी है क्या ?" केदारनाथ ने उसके पास जाकर तेज़ आवाज़ से फिर पूछा—ईश्वरप्रसाद जी घर पर हैं या नहा ?

सोना फिर एक बार सिर उठाने के पश्चात् उसी प्रकार टहलने लगी। उसके प्रश्न पर कुछ ध्यान नहीं दिया।

आवाज़ सुनकर ईश्वरप्रसाद बाहर निकल आया। चेहरे पर मुर्दनी छाई हुई थी। धीमे से बोला—कौन है ?

केदार—मैं हूँ।

ईश्वर—केदारनाथ !

केदार—हाँ।

ईश्वर—मुझसे आपका क्या काम है ?

केदार—योंही, मुलाक़ात करने चला आया हूँ।

ईश्वर—मुलाक़ात हो चुकी। जाइए, मुझे ज्यादा फ़ुरसत नहीं है।

ईश्वरप्रसाद भीतर चला गया। एक आराम-कुर्सी पर लेट गया। पीछे-पीछे केदारनाथ भी आकर एक कुर्सी पर जम कर बैठ गया।

ईश्वरप्रसाद को उसकी यह धृष्टता अच्छी नहीं लगी। पूछा—फिर आप यहाँ क्यों आ गए ?

केदार ने मुस्करा कर—कुछ काम है।

ईश्वरप्रसाद ने उठ कर आराम से बैठते हुए पूछा—कौन सा काम है ?

केदार—सुबाला कहाँ है ?

ईश्वर—वह यहाँ नहीं है। दूसरी जगह गई हुई है।

केदार—दूसरी जगह कहाँ ?

ईश्वरप्रसाद ने खीझ कर कहा—काम की बात कीजिए।

केदार—मैंने नौकरी छोड़ दी है।

ईश्वर—तो मैं क्या करूँ ?

केदार—अब रोज़गार करने का इरादा है।

ईश्वर—करिए।

केदार—कुछ रुपयों की ज़रूरत है।

ईश्वर—क़र्ज़ लीजिए।

केदार—आपके पास आया हूँ।

ईश्वर—सो देख रहा हूँ।

केदार—कुछ थोड़ी सी मदद कर दीजिए, तो मेरा काम चल जाय।

ईश्वर—तनख़्वाह तो बहुत मिलती थी। रुपए इकट्ठे न किए होंगे?

केदार—नौकरी-पेशा करने वाले कभी रुपया इकट्ठा नहीं कर सकते।

ईश्वरप्रसाद ने घृणा से उसकी ओर देख कर कहा—तो क्या मेरे यहाँ हण्डे गड़े हैं?

केदार—आप दे सकते हैं।

ईश्वर—मेरे पास नहीं हैं।

केदार—ज़्यादा नहीं, सिर्फ़ दस हज़ार।

ईश्वर—दस हज़ार तो बहुत होता है। मेरे पास से आपको दस कौड़ी भी नहीं मिल सकती। सब तो नाश कर दिया। अब रुपया कहाँ है। मेरे घर में रुपए के पेड़ थोड़े ही लगे हैं, जो आपको तोड़ कर दे दूँ?

केदार—बड़ी आशा करके आया था।

ईश्वर—पहले कह चुका हूँ, मुझे आपसे बात करने की ज़्यादा फ़ुरसत नहीं है। जाइए।

केदार—तो मैं आपकी तरफ़ से निराश हो जाऊँ?

ईश्वर—कह तो दिया, मैं यहाँ ख़ुद मुहताज हूँ; दूसरे को कहाँ से लाकर दूँ? ज्यादा बक-झक मैं नहीं पसन्द करता। आशा है, आप सीधी तौर से यहाँ से टल जायँगे।

केदार—एक बात और पूछना है। बतला दीजिए। मैं चला जाऊँगा।

ईश्वर—मैं आपकी किसी बात का उत्तर नहीं देना चाहता।

केदार—अधिक समय नहीं लूँगा। आज सवेरे की बात है। साढ़े चार या पाँच बजे होंगे। एक आदमी को मैंने गङ्गा में कुछ फेंकते देखा था। क्या आप बता सकते हैं, वह कौन है?

अब काटो तो ख़ून नहीं। ईश्वरप्रसाद का चेहरा सफ़ेद पड़ गया। मैं पूरी तरह से दुश्मन के फन्दे में फँस चुका हूँ, बचना असम्भव है। बड़े कष्ट से पूछा—आप मुझसे क्या चाहते हैं? कैसे मेरा पीछा छोड़ देंगे?

केदार—इस समय सिर्फ़ दस हज़ार रुपयों की ज़रूरत है। पाते ही मैं चला जाऊँगा।

ईश्वर—फिर कभी मेरे पास तो न आवेंगे?

केदार—काम पड़ने पर देखा जायगा।

ईश्वर—आप बड़ी मुश्किल करते हैं।

केदार—आप ही ने मेरे साथ कौन सा एहसान किया है? सीधे मुँह बात तक तो करते नहीं।

ईश्वर—इतने रुपए न हों तब ?

केदार—कहीं से लाकर दीजिए। मुझे रुपयों से मतलब है। और कुछ नहीं जानता।

ईश्वर—न दूँ तो आप क्या करेंगे ?

केदार—आपको एक आदमी की हत्या का अपराध अपने सिर पर चढ़ाना पड़ेगा।

ईश्वरप्रसाद के रोएँ खड़े हो गए। उन्होंने कहा—जाकर देखता हूँ।

केदार—जल्दी आइएगा।

केदार बेखटके बैठा रहा। पङ्ख खुले रहने पर भी कबूतर कहीं भाग कर नहीं जा सकता। ईश्वरप्रसाद चन्दा के पास गया। सब हाल कह चुकने पर बोला—दस हज़ार रुपए माँगता है।

चन्दा रोने लगी। हिचकी लेते हुए कहा—हे परमेश्वर ! तू ही बेड़ा पार लगा।

ईश्वर—रोने-धोने से क्या होगा ? अब यह बला नहीं टलेगी।

चन्दा—इतने रुपए कहाँ हैं ? मेरे सन्दूक में बहुत होंगे तो सौ रुपए। इससे अधिक नहीं निकल सकते।

ईश्वर—तब क्या किया जाय ? वह मानने वाला जीव नहीं है।

चन्दा हताश होकर बोली—क्या बताऊँ ?

ईश्वर—ऐसी कोई चीज़ भी बेचने लायक़ नहीं है, जिससे इतना रुपया मिल सके ?

कुमारी कुछ दूर पर बैठी हुई सब सुन रही थी। पास आकर बोली—कौन, केदार है ? यदि वह रुपया पाने ही से सन्तुष्ट हो जाय, तो जितना कहे, मैं दे सकती हूँ।

ईश्वरप्रसाद और चन्दा दोनों ने उसकी ओर विस्मय-विस्फारित नेत्रों से देखा।

कुमारी ने पूछा—कितना रुपया चाहता है, दस हज़ार कि कुछ और भी ?

चन्दा—उससे लिपट गई। कातर स्वर से बोली—बहिन, क्या तुम सच ही हमारी रक्षा कर सकती हो ?

कुमारी—अधीर मत हो। मैं अभी जाकर दस मिनट में रुपए लाती हूँ।

चन्दा—कहाँ से लाओगी ?

कुमारी—मेरे घर में हैं। विश्वास रक्खो, दस मिनट से एक सेकण्ड भी अधिक नहीं लगेगा।

कुमारी के जाने के बाद चन्दा ने कहा—केदार पक्का बैरी है। कुछ दिनों में फिर दौड़ा आएगा। उसके हाथ में मानों कल्पवृक्ष आ गया है। जो इच्छा करेगा, तुम पूरी करोगे।

ईश्वर—उसके समान दुष्ट प्रकृति का आदमी कोई न होगा।

चन्दा—अभी दस हज़ार माँगता है, कल बीस हज़ार माँगेगा, फिर एक लाख !

ईश्वरप्रसाद ने चिन्तित मुख से कहा—कहाँ तक उसकी फ़रमायश पूरी की जावेगी ?

चन्दा—और कहीं क्यों नहीं चले चलते ?

ईश्वर—कहाँ जायँ ? इतनी जल्दी जाने से लोगों को सन्देह हो जायगा। फिर किसी कन्दरा में छिप कर थोड़े रहना है। कोई गड़बड़ी मचेगी तो पहचाने जाकर पकड़ ही लिए जावेंगे ; कहीं क्यों न रहें।

चन्दा—तब ?

ईश्वर—अभी केदार रुपए पाकर थोड़े दिनों तक तो अवश्य शान्त रहेगा। दो-चार-दस दिन बाद देखा जावेगा। कहीं चल देंगे।

चन्दा—दस दिन बाद क्या डर न रहेगा ?

ईश्वर—अभी ओङ्कार के ग़ायब होने की सनसनी फैली हुई है। बाद में धीमी पड़ जायगी। अभी चल देने से लोगों की निगाह में हम गड़ जावेंगे।

बहुत जल्दी कुमारी लौट आई। हाथ में एक छोटी सी लोहे की सन्दूक़ची थी। उसमें से निकाल कर उसने ईश्वर-प्रसाद को दस हज़ार के नोट दे दिए। ईश्वरप्रसाद ने चुपके से उन्हें रख लिया। मुँह से कुछ नहीं बोला ; पर आँखों में कृतज्ञता की छलछलाहट थी। वह केदार के पास गया।

नोट सामने रख दिए। केदार प्रसन्नता से नोटों को उलट-पलट कर गिनने लगा।

इसी समय कहीं से मानिक आ पड़ी। साथ में डण्डा लिए सरदार जोखिमसिंह था। मानिक केदार को देख कर आग-बबूला हो गई। उसे एक हाथ से दूसरे हाथ में बहुत से नोट सरकाते देख उसके क्रोध का पारा और ऊँचा चढ़ गया। पास जाकर उसने कड़कती आवाज़ से पूछा—ये नोट किसके हैं ?

केदार अचानक मानिक को सामने पाकर उठ खड़ा हुआ। हँस कर बोला—मानिक बाई ! तुम यहाँ कहाँ ?

मानिक—चुप रह, पाजी ! मैं जो पूछती हूँ, वह बता। ये नोट किसके हैं ?

केदार ने अचकचाकर कहा—नोट मेरे हैं। मानिक बाई, तुम्हें क्या हो गया है ? किस तरह बोलती हो ?

मानिक ने ईश्वरप्रसाद से पछा—तुम बताओ, ये किसके हैं ?

ईश्वरप्रसाद ने कोई उत्तर नहीं दिया। मुँह फेर कर दूसरी ओर देखने लगा।

मानिक—मैं समझ गई। नोटों से इसकी पूजा की जा रही है। यह इस योग्य नहीं है। इसकी पूजा दूसरी तरह से होनी चाहिए। सरदार ! इसकी ठीक तौर से पूजा कर दो।

जोखिमसिंह ने आगे बढ़ कर केदार के गाल पर कस कर एक तमाचा मारा। पाँचों उँगलियाँ झलक आईं। केदार तलमला गया। नोट हाथ से छूट कर गिर पड़े। गुस्से से बोला—तुम मुझे मारते हो?

जोखिम—हाँ, मारता तो हूँ! अभी नहीं मालूम पड़ा क्या? ले, और ले! अब मालूम पड़ा?

तड़ाक से एक और पड़ा। इस बार केदार क्रोध से अन्धा हो गया। वह भी मारने को आगे बढ़ा। जोखिमसिंह ने अब की बार लट्ठ उठा कर मारा। नाक पर पड़ा। नाक भरता हो गई। सामने के दो-चार दाँत भी टूट गए। केदार बेहोश होकर गिर पड़ा।

मानिक ने जोखिमसिंह से कहा—इसे ले जाकर इसके घर पर रख आओ। लौट कर यहाँ मत आना। अड्डे पर मिलना। मैं वहीं जाती हूँ।

जोखिमसिंह केदार को उठा कर चला। मानिक भी चल दी। ईश्वरप्रसाद भौंचक-सा खड़ा देखता रह गया।

तीसवाँ परिच्छेद

ओङ्कार नहीं आया। दोपहर हो गया। सन्ध्या भी बीत चली। देवी चिन्तित हो उठी। क्या कारण है? क्यों नहीं आए? राह देखती बैठी रही। भोजन बना रक्खा था। खाने का मन नहीं हुआ। क्रमशः रात हुई। घर में प्रकाश करने को भी न उठा जाता था। जैसे-तैसे उठी, लैम्प जलाया। अब भूख ज़ोर से सताने लगी। पेट बिलकुल हलका लगता था, पर खाने की ज़रा भी इच्छा न थी। चौके के पास जाना भी बुरा लगता था। चिन्ता के कारण उसमें घोर आलस्य आ गया था। वह कहाँ होंगे? अभी तक उन्होंने कुछ खाया होगा या नहीं? किसी विपत्ति में तो नहीं पड़ गए? ऐसे और भी कई दिन बीत चुके थे, जब ओङ्कार बिलकुल नहीं आया था; परन्तु उसकी ऐसी दशा कभी न हुई थी। हृदय सशङ्कित और दुर्भावना से पूर्ण हो गया था।

बैठी ही बैठी पलङ्ग के पास खिसक कर गई और लेट रही। भीतर की ज्वाला के कारण शरीर भी क्षुब्ध हो रहा था।

बड़ी रात तक जागती पड़ी रही। कई तरह के विचार उसके मन में आकर उसके उद्वेग को बढ़ाते रहे। चिन्ता में डूबे लेटे-लेटे कब नींद आ गई, उसे नहीं मालूम पड़ा। बड़े भयङ्कर स्वप्न दिखाई देने लगे। ओङ्कार दौड़ते-दौड़ते थक गया। कूड़ा-करकट का एक दुर्गन्धयुक्त ढेर पड़ा था। उसी पर जाकर गिर पड़ा। एक सुन्दरी आई। गोरा शरीर था। सफेद धोती पहने थी। बाल साँप के समान लहरा रहे थे। वह सीधे नहीं खड़ी रह सकती थी। कभी आगे, कभी पीछे, कभी दाहिने और कभी बाएँ झुकती थी। फिर सीधे खड़ी होती थी। ऐसा जान पड़ता था, जैसे उसके शरीर में छोटी-छोटी लहरें उठ रही हों।

सुन्दरी ने कहा—मैं तुम्हारी तपस्या पर प्रसन्न हूँ। वर माँगो।

ओङ्कार उसी प्रकार पड़ा रहा। कुछ नहीं बोला। उसी सुन्दरी पर टकटकी बँधी थी।

सुन्दरी ने फिर कहा—उठो, क्या वर माँगते हो? माँगो, तुमने घोर तपस्या की है। इसका फल अवश्य मिलना चाहिए। क्या चाहते हो?

ओङ्कार ने अब भी कोई उत्तर न दिया।

तीसरी बार सुन्दरी ने कहा—मैं तुम पर हृदय से प्रसन्न

हूँ। मन में जो इच्छा हो, कह डालो; अवश्य पूर्ण होगी। मैं किसी की तपस्या निष्फल नहीं जाने देती। कोई काम मेरी शक्ति से बाहर नहीं है। मैं सब कुछ कर सकती हूँ। निश्चय जानो, तुम कैसा ही वर क्यों न माँगोगे, मैं अवश्य दूँगी। निधड़क होकर मन की बात कह डालो।

इस बार ओङ्कार उठा। पूछा—क्या मैं जो माँगूँगा, तुम दोगी ?

सुन्दरी बोली—दूँगी, दूँगी, दूँगी !

ओङ्कार ने माँगा—तुम बड़ी स्वरूपवती हो। मैं तुम पर मोहित हो गया हूँ। तुम्हीं को चाहता हूँ।

सुन्दरी हँसी। उसके मुख से बिजली का सा प्रकाश निकला। बोली—मुझे चाहते हो ?

ओङ्कार—हाँ।

सुन्दरी ने कहा—मैं भी तुमको चाहती हूँ।

ओङ्कार ने चाह से अपने दोनों हाथ आगे को फैला दिए। बोला—तो मुझे अपने हृदय में स्थान दो।

सहसा सुन्दरी का रूप बदलने लगा। उसकी जगमगाहट उससे दूर हटने लगी। चारों ओर से अन्धकार आकर उसमें सिमटने लगा। कुछ समय में वह बिलकुल काली हो गई। सफ़ेद धोती मैली और चिकटी बन गई। बाल सूखे और भद्दे हो गए। मुँह से काला-काला धुआँ निकलने लगा; मानों पेट में भट्ठी जल रही है। देखते-देखते उसका

आकार बढ़ा। बढ़ कर वह बंड़ के पेड़ के बराबर ऊँची हो गई। उसने अपना लम्बा-चौड़ा बड़े-बड़े दाँतों-वाला मुँह फैलाया। छः इञ्च लम्बे नखवाले हाथ निकाले। ओङ्कार को कस कर पकड़ लिया। उसकी हड्डियाँ तड़कने लगीं। वह व्यर्थ ही छटपटा कर उन डरावने पञ्जों से छूटने की कोशिश करने लगा। राक्षसी ने तड़पते हुए ओङ्कार को मुँह में रख लिया। समूचा ही निगल गई।

इसके बाद दूसरा स्वप्न शुरू हुआ। देवी ने देखा कि उसके पङ्ख निकल आए हैं। पङ्ख बड़े सुन्दर हैं। कोई लाल, कोई पीले, कोई हरे, कोई नीले और कोई बहुरङ्गे हैं। ऐसे सुन्दर पङ्ख पाकर वह वह बड़ी प्रसन्न हुई। उसका उड़ने का मन हुआ। सचमुच वह उड़ने लगी। आकाश में ख़ूब ऊँचे पहुँची। जिधर जाने की इच्छा करती, उधर ही तुरन्त जा पहुँचती। सारे संसार का उसने चक्कर लगा डाला। मन में हर्ष नहीं समाता था। ख़ूब ख़ुश हो रही थी।

किसी गुफ़ा में एक ऋषि बैठा दिखाई दिया। देवी उसके पास पहुँची। पङ्ख सिकोड़ कर बैठ गई।

ऋषि ने पूछा—तुम यहाँ कैसे आई ।

देवी ने उत्तर दिया—आपके दर्शन की इच्छा से चली आई हूँ ?

ऋषि ने कहा—मेरे बराबर तप करने वाला किसी लोक में कोई नहीं है। अच्छा किया, तुम यहाँ तक आ गई । मेरे

दर्शन से तीनों तरह के पाप भाग जाते हैं। कई हज़ार वर्षों से मैं यहाँ बैठा हूँ। कितने ही जाड़े, गर्मी और बरसात की ऋतुएँ निकल गईं। लेकिन यहाँ से नहीं टला।

देवी बोली—आपको और आपके तप को धन्य है।

ऋषि—मैं दुनिया-भर के जीवों को पहचानता हूँ। कोई मुझसे छिपकर नहीं रह सकता। तुम्हें भी जानता हूँ। तुम देवी हो।

देवी ने चकित होकर ऋषि के मुख-मण्डल पर दृष्टि जमाई। दाढ़ी और मूँछ के बाल बहुत बढ़ गए थे। सिर की जटा धरती पर लोटती थी। आँखें एक अङ्गुल भीतर धँस गई थीं। गाल में गड्ढे पड़ गए थे। इतने पर भी देवी ने उसे पहचान लिया। आनन्द से चिल्ला कर बोली—तुम तो वही हो।

ऋषि ने मुस्करा कर कहा—मैं सोचता ही था कि तुम मुझे जान लोगी। मैं ओङ्कार हूँ।

देवी ने अपने पङ्ख फैलाकर ओङ्कार को दिखाए। कहा—देखो, मेरे पङ्ख निकल आए हैं। कैसे अच्छे हैं!

ओङ्कार ने पङ्ख देख कर कहा—इन पङ्खों से भी अधिक अच्छी चीज़ मेरे पास है।

देवी ने पूछा—क्या है?

ओङ्कार ने एक छोटी सी शीशी निकाली। कहा—इसमें अमृत भरा है। इसके पीने से मैं अमर हो जाऊँगा।

देवी—अच्छा, पियो तो सही। मैं भी देख लूँ, अमर आदमी कैसा होता है ?

ओङ्कार ने शीशी की डाट खोल डाली। एक कड़ी झार उड़ी। तुरन्त ही उसने उसमें भरा हुआ रस मुँह में उड़ेल लिया। बोला—देखती रहना। मैं अमर होता हूँ। होना ही चाहता हूँ। देर नहीं है। देखो अब हुआ। यह हुआ।

देवी देखती रही। अचानक ओङ्कार के मुँह से आग की लपटें निकलने लगीं। सिर जल उठा। सब देह भक-भकाने लगी, थोड़ी देर में केवल एक मुट्ठी राख बची।

देवी ने इसी तरह के त्रासदायक और कई स्वप्न देखे। सवेरे जागी, तो जैसे महीनों की बीमार हो। हाथ-पैर लुञ्ज थे। जीवन आया। देवी ने उससे पूछा—वह आए ?

जीवन—अभी नहीं। आते होंगे।

देवी—कल भी नहीं आए थे।

जीवन ने आँखें फाड़ कर कहा—अरे! कल भी नहीं आए थे ?

देवी—परसों रात के गए अभी तक नहीं आए।

जीवन—तुमने और पहले मुझे ख़बर क्यों नहीं दी ? जाकर ढूँढ़ता।

देवी—अब जाओ।

जीवन पहले बँगले पर गया। ताला बन्द था। सोचा, उसी गाने वाली के यहाँ चलूँ। शायद वहीं न हों। वहाँ भी

ताला लगा हुआ था। तब उसने ओङ्कार के मित्रों के घरों में चक्कर लगाए, कहीं पता न लगा। शहर में और कई जगह ढूँढ़ा। सब निष्फल हुआ। हैरान हो गया, पुलिस में जाकर ओङ्कार के एकाएक ग़ायब हो जाने की रिपोर्ट लिखा दी। सन्ध्या को घर आने पर देवी से कहा—मैंने तमाम शहर छान डाला। वह कहीं नहीं मिले। थाने में कह आया हूँ, वहाँ से जल्दी पता चल जायगा।

देवी हाय मार कर रह गई।
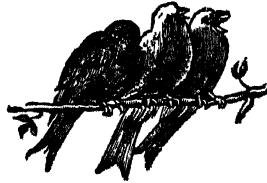
इकत्तीसवाँ परिच्छेद

कुमारी अचानक मुस्कराती हुई आकर देवी के सामने खड़ी हो गई। देवी दुःख में डूबी थी। कुमारी को—अपने ऊपर विपत्ति का पहाड़ गिराने वाली को—सामने देखकर क्रोध से भर गई। इसी ने मुझे कुएँ में ढकेला है। इसी के कारण मेरा सुख मिट्टी में मिल गया है। दुःख का स्थान क्रोध और घृणा ने ले लिया। भौंहें सिकोड़ कर देवी ने कहा—तू अपना काला मुँह लेकर यहाँ क्यों आई है? दूर हो!

कुमारी जोर से हँसी। देवी डर गई। उसे ऐसा जान पड़ा जैसे कुमारी की दहला देने वाली विकट हँसी से कमरे की तसवीरें हिल रही हैं। भूकम्प-सदृश सारा मकान डगमगाने लगा। कुमारी ने पूछा—मुझे पहचानती हो?

देवी ने घृणा से उसकी ओर देख कर कहा—हाँ, पहचानती हूँ।

कुमारी—मैं कौन हूँ ?

देवी—तुम नाचने-गाने वाली और हाव-भाव बता कर लोगों को रिझाने वाली हो। तुमने मेरा भाग्य पलट दिया है। मेरे पति को मुझसे छीन कर, मुझे जलाकर तुम अनुचित रीति से सुख भोग रही हो। तुम्हारा मुँह देखने से ही आदमी पाप में डूब जाता है। मेरी आँखों के सामने से हट जाओ।

कुमारी को देवी के मन का भाव देख कर बड़ा आनन्द हुआ। ऊँचे स्वर से पूछा—और कुछ ?

देवी—तुम महापापिनी हो; पिशाचिनी हो। अपनी नाक कटा कर दूसरे का अशुभ करने वाली हो। तुम्हारे समान नीचात्मा संसार में कोई न होगा। मुख सुन्दर होने पर भी तुम्हारे पेट में हलाहल भरा हुआ है। सर्पिणी की तरह वह हलाहल उगल कर तुम लोगों को डस लेती हो। तुम्हारे काटे की दवा नहीं। सुखमय संसार को तुम नरक बनाने वाली हो।

कुमारी—बस, इतना ही? यह तो काफी नहीं है। शायद तुम मुझे भूल गई हो। बतलाना पड़ेगा कि मैं कौन हूँ। संसार में कैसे अनोखे जीव रहते हैं। दूसरे की बुराइयाँ तो सौ आँखों से देखते हैं और अपनी ओर ध्यान ही नहीं देते। वाह!

देवी अब और अधिक क्रोध में आकर बोली—हट जा,

चुड़ैल यहाँ से ! डाइन कहीं की ! क्यों मुफ़्त में ग़ुस्सा दिलाती है ?

कुमारी—बिना अपना परिचय दिए मैं नहीं जाने की। सुनो, कई वर्षों की बात है, तुम ओङ्कार के साथ लखनऊ में रहती थीं। उस समय भी तुम इसी प्रकार धनवान् थीं। नौकर-चाकर, गाड़ी-घोड़े सब थे। मैं ग़रीब थी—बहुत ग़रीब थी। खाने और पहनने का ठिकाना न था। चिथड़े लपेटे रहती थी। मुश्किल से कभी दोनों समय खाने को मिलता था। कभी-कभी भूखी ही सो रहती थी। मेरा पति रोगी और निर्बल था। कोई काम नहीं कर सकता था। दरिद्रता घेरे थी। वह दिन याद होगा। सवेरे ही से आकाश में बादल छा गए थे। दिन-भर बदली रही। बारह बजे दिन को भी ऐसा मालूम पड़ता था, जैसे सन्ध्या की अँधेरी छा गई हो। मकानों में दिए जल गए थे। रात को क़रीब आठ बजे ज़ोर की आँधी आई। मूसलाधार पानी बरसने लगा। उसी बरसते में मैं आफ़त की मारी तुम्हारे घर पहुँची। झोपड़ी दूर थी। पति कमज़ोरी के कारण आगे नहीं चल सकता था। लाचार होकर तुम्हारे यहाँ कुछ देर ठहरने का विचार किया। ओङ्कार बाहर बैठा वर्षा का आनन्द ले रहा था। तुम भी पास बैठी थीं।

पिछली घटना बिजली के समान देवी के मन में चमक गई। उसका सर्वाङ्ग हिल उठा। धड़कते हुए हृदय पर हाथ रख कर पूछा—क्या तुम वही हो ?

कुमारी—हाँ, मैं वही हूँ! बड़े आश्चर्य की बात है, तुमने मुझे बिलकुल ही भुला दिया! ख़ैर, अब तो पहचान गई। सुनती जाओ। बहुत सी बातें तुमको नहीं मालूम हैं। ओङ्कार को सामने बैठा देख कर मैंने उससे अपनी विपत्ति की कथा कही। थोड़ी देर आश्रय देने की प्रार्थना की। उसने नहीं सुना। निर्दयता के साथ कह दिया, यहाँ जगह नहीं है। बड़े सङ्कट का समय था। पानी की तेज़ बौछार के सामने हृष्ट-पुष्ट मनुष्य भी एक पग नहीं चल सकता, मैं तो स्त्री थी। साथ में अशक्त पति था। मैंने फिर प्रार्थना की। पास जाकर पैर पकड़ लिए। रोकर कहा, हम ग़रीबों की रक्षा करो, परमेश्वर तुम्हारा भला करेगा! ओङ्कार ने पास रहने के कारण मुझे अच्छी तरह देखा। उस समय मैं जवानी में भर रही थी। मुख कमल के समान खिला था। गुलाबी गालों पर मोतियों-सी हिलती और चमकती पानी की साफ़ बूँदें देख कर वह मुझ पर रीझ गया। कहाँ तो पहले डण्डा-सा मार दिया था और कहाँ अब चुपड़ी-चुपड़ी बातें करने लगा। बड़े प्रेम से बोला। मेरा नाम, रहने का ठिकाना और कई बातें पूछीं। मैंने सब बताया। उसने मुझे अच्छी-सी कोठरी ठहरने के लिए दी। उसको धन्यवाद देती हुई मैं पति के साथ वहाँ गई। ओङ्कार ने मेरा बहुत आदर किया। कपड़े पानी से तर थे। अच्छे नए सूखे वस्त्र दिए। भूख से मुँह कुम्हलाया था। तरह-तरह के स्वादिष्ट

मेरी अथवा मेरे पति की हिम्मत पराए घर में घुसने की हो सकती थी ? मेरा पति चोरी के अपराध में पकड़ लिया गया। मैं कङ्गाल थी। ओङ्कार धनवान् था। एक कङ्गालिन किसी धनवान् का कुछ नहीं बिगाड़ सकती। मैं मन मार कर रह गई। मेरे पति को एक साल की क़ैद की सज़ा हुई। वह रोगी तो था ही, कारागार की यन्त्रणा न सह सकने के कारण छः महीने में ही मर गया।

देवी के नेत्र सजल हो गए। खिंची हुई साँस बड़ी देर में बाहर निकली।

कुमारी ने कहा—तुम स्त्री हो। पति के मरने का समाचार सुन कर मुझे कितना दुःख हुआ होगा; यह सरलता से समझ सकती हो। पहले किसी तरह मिहनत-मज़दूरी करके पेट भर लेती थी, अब वह भी न हो सका। आशा जाती रही। हृदय टूट गया। इतने बड़े संसार में अपने को अकेली और निस्सहाय पाकर मुझे जीवन बोझ मालूम पड़ने लगा। एक दिन भूखी-प्यासी सड़क के किनारे धूल में लोट रही थी। एक वेश्या उधर से निकली। मेरा सुन्दर रूप देख कर वह मुझे अपने घर ले गई। ख़ूब सत्कार किया। खिलाया-पिलाया। सोचती थी, सोने की चिड़िया पा गई हूँ। इसके द्वारा मालामाल हो जाऊँगी। उसके प्यार में मैं भूल गई। भड़कीले कपड़े पहन कर रहने लगी। उसके कहने पर चलने लगी। कुछ दिनों में जब

मुझे मालूम हुआ कि यह वेश्या है, तब मैं झिझकी। दूर भागने लगी। पर लोभ बुरा होता है। उसने मुझे ऊँची-ऊँची आशाएँ दिखा कर मेरी बुद्धि हर ली। अभी गली-गली भटकती हो। ज़िन्दगी के दिन पूरे करने के लिए अपमान सहती हो। ठोकरें खाती हो। मेरा कहना मानो। मैं तुम्हें रानी बना दूँगी। लखपती और करोड़पती आकर तुम्हारे तलुए चूमेंगे। भिखमङ्गिनी की तरह दर-दर मारी-मारी फिरना अच्छा या आनन्द से राज्य-सुख भोगना अच्छा? बात मन में जम गई। स्त्री स्त्री के बहकाने में जल्दी आ जाती है। पर मैंने मन में दृढ़ निश्चय कर लिया कि अन्त तक अपना धर्म नहीं छोड़ूँगी। अपने को कदापि भ्रष्ट न होने दूँगी; चाहे कुछ हो। उस वेश्या ने मुझे मन लगा कर नाचना-गाना सिखाया। जल्दी ही मैं निपुण हो गई। मीठी-मीठी बातें करना, हाव-भाव बताना, दूसरों को लुभाना, सब मुझे आ गया। उसके पास रहने से मेरे मन में साहस हो आया। पैरों में ताक़त आ गई। दुनिया रङ्गीन दिखाई पड़ने लगी। चतुरता में मैं उससे भी बढ़ कर निकली। जब मुझे अपनी अवस्था का ज्ञान हुआ, जब मैंने देखा कि यहाँ रहना साँप के बिल में हाथ डाले रहने के बराबर है, तब मैंने दूसरे के अधीन रहना उचित न समझा। एक दिन मैं उसे अँगूठा दिखा कर चलती बनी। वह मुझे किसी प्रकार न रोक सकी। अपनी उस्तादिन को मैंने धता

बता दिया। वहाँ रह कर मुझे अपना बचाव करना अत्यन्त कठिन था। अलग एक कोठा लिया। उसमें सज कर रहने लगी। नाचने-गाने का काम आरम्भ कर दिया। मेरी ख्याति पहले ही बढ़ चुकी थी। अधिक कष्ट नहीं उठाना पड़ा। आप ही आप अमीर-उमरा चील की तरह मँडरा कर मेरे छज्जे पर उतरने लगे। चाँदी-सोने की वर्षा होने लगी। पिछले दुख भूल कर मैं आनन्द से रहने लगी। मेरा समय अच्छी तरह कटने लगा। माँग इतनी बढ़ी कि मैं यदि किसी के यहाँ गाने जाती, तो एक रात के पाँच सौ रुपए से कम न लेती। इतने पर भी कभी-कभी एक साथ चार-पाँच जगहों से बुलावा आ जाता था। तब डाक चढ़ती थी। जहाँ ज्यादा मिलता, वहीं जाती थी। इसी तरह मेरे पास बहुत सा धन इकट्ठा हो गया। अब मेरे सामने लखपती कोई चीज नहीं। मैं उन्हें नौकर रख सकती हूँ।

कुमारी यहाँ रुक कर बोली—और सुनोगी ?

देवी विस्मय से उसके मुख को देख रही थी। उत्तर न दिया।

कुमारी—अभी असली बात तो आई ही नहीं। ओङ्कार के विषय में कुछ और सुनने को उत्सुक होगी। सुनो, तुम्हारे ओङ्कार को मेरी ज़रूरत हुई। उसका नाम सुन कर मुझे बीती बात याद आ गई। क्रोध उबल पड़ा। मन में बदला लेने की ठन गई। बिना मिहनताना ठीक किए ही मैं वहाँ

से चल पड़ी। यहाँ आकर मैंने उसे अपने वश में किया। देर क्या लगती है? ऐसे कामों में मैं सिद्धहस्त हो गई हूँ। कठपुतली की तरह उसे नचाने लगी। चाहती तो उसी समय बदला लेकर मन को शान्त कर सकती थी। पर मैंने सोचा, इसे खिला-खिला कर मारना चाहिए। ऐसे में मज़ा न आएगा। इसी बीच में मामला कुछ बिगड़ गया। उसकी दृष्टि दूसरी पर जा पड़ी। मुझसे कतराने लगा। संयोग से मैंने पता पा लिया। उसका मन 'चन्दा' नाम की एक रूपवती स्त्री पर रम गया था। जानती हो, चन्दा कौन है? न जानती होगी। दिन-रात पर्दे के अन्दर घुसी रहती हो। दीन-दुनिया की क्या ख़बर? हाँ, तो मैंने ओङ्कार को फिर फुसलाया। उसकी इच्छा पूर्ण करा देने का पक्का वचन दिया। मौक़ा देख कर एक रात को मैं उसे चन्दा के पास ले गई। साथ ही उसके पति को ओङ्कार की धूर्त्तता की ख़बर दे दी। ओङ्कार उसके पास थोड़ी देर ही ठहरने पाया था कि चन्दा का पति आ गया। ओङ्कार भागा। डर के कारण धोखा खा गया। छत पर से नीचे गिर कर मर गया। इस समय वह गङ्गा के गर्भ में पड़ा आनन्द से खर्राटे भरता होगा।

देवी ने यह सुना तो साँस रुक गई। मूर्च्छित होकर वह धरती पर गिर पड़ी। कुमारी उसके पास खड़ी हँसती रही।

लगभग आधे घण्टे में देवी को चेत हुआ। अब उसमें

अभिमान का लेश भी न रह गया था। दुख से हृदय टुकड़े-टुकड़े हुआ जाता था। मेरे दुर्भाग्य से सब हुआ है। कुमारी का इसमें कोई दोष नहीं। देवी ने उसका पैर पकड़ लिया। यातना की अधिकता के कारण ज़ोर से चिल्ला कर न रो सकी। आँसू भी रुके हुए थे।

कुमारी ने व्यंग्य से कहा—दुख होता है क्या? दूसरे को विधवा बनाने से क्या होता है? यह तब तक नहीं जाना जा सकता, जब तक स्वयं विधवा न होना पड़े।

देवी ने कम्पित एवं कातर स्वर से कहा—बहिन, तुमने बड़ा अन्याय किया है।

कुमारी—और तुमने मेरे साथ बड़ा सराहनीय काम किया है?

देवी—मैंने तुम्हारा कोई अपराध नहीं किया। अपराधी वे थे। तुमने बड़ी भूल की, जो उनके अपराध का दण्ड मुझे दिया। वे तुम्हारे पति की मृत्यु का कारण हुए थे और तुम्हें अकेला कर दिया था; तुम उनकी स्त्री को मार कर उन्हें अकेला कर सकती थीं। तब कहीं ठीक होता। मैं फिर भी कहूँगी, तुमने ठीक न्याय नहीं किया। मैंने भला तुम्हारा क्या बिगाड़ा था?

कुमारी देवी की कातरोक्ति सुन कर विचलित हो गई। दया हृदय में भर आई। अपनी भूल को उसने हृदय से स्वीकार कर लिया। सच ही मैंने बड़ा अन्याय किया है।

मैं जानती थी कि पति के मरने का दुख कैसा होता है। तब मैंने दूसरे को उसी प्रकार के दुख में डाल कर अच्छा नहीं किया। देवी को उसने उठा कर गले से लगा लिया। बोली—बहिन, मुझे क्षमा न करोगी?

सहानुभूति पाकर देवी की आँखों से टपाटप आँसू गिरने लगे। कुमारी के आँसू उनसे मिलने को दौड़ गए। अहा! कैसा संयोग था!

व के मुँड़ेरे पर बैठे हुए दो डाकू गपशप उड़ा रहे थे। सहसा एक ने दूसरे से उँगली का इशारा करके कहा—अरे गोकुल, देखो तो वह क्या बहा जा रहा है ?

गोकुल ने आँखें फाड़ कर देखा। कहीं कुछ नहीं। धीरे से अपने साथी को हाथ का धक्का देकर कहा—चल बे, दिल्लगी करता है !

दूसरा—दिल्लगी नहीं यार ! सच कहता हूँ। ज़रा अच्छी तरह देख, वह है। देखा ?

गोकुल ने थोड़ी देर के बाद कहा—हाँ, देखा। आदमी सरीखा जान पड़ता है। है न ?

दूसरा—मुझे भी ऐसा ही लगता है।

गोकुल—चलो, स्वामिनी जी से कहें।

दूसरा—क्या जाने आदमी है या और कुछ। थोड़ा और ठहरो। नाव उसी तरफ़ जा रही है। पास से देख लें, तब चलें। कहीं न हुआ तो मुफ़्त में बेवक़ूफ़ बनना पड़ेगा।

नाव और आगे बढ़ी। अब वह पदार्थ ठीक बग़ल में पास आ गया। गोकुल ने चिल्ला कर कहा—ठीक, आदमी ही है। आओ, चलो। स्वामिनी जी को इसकी खबर ज़रूर देनी चाहिए।

दोनों मानिक के पास गए। किसी आदमी के पानी में बहे जाने की बात कही।

मानिक ने जोखिमसिंह को बुला कर कहा—ये दोनों कहते हैं, कोई आदमी बहा जा रहा है। जाकर देखो तो।

जोखिमसिंह बाहर गया। थोड़ी देर में आकर बोला—आदमी ही है। मरा है या जीता, ठीक नहीं मालूम पड़ता। मरा होगा।

मानिक—उसको निकालो। शायद जीता हो।

नाव घुमा दी गई। दो तैराक पानी में कूद पड़े। उस आदमी को ले आकर सूखे में रख दिया। मानिक उसे देख कर चौंक पड़ी। मुँह से तेज़ आवाज़ निकली—अरे, यह तो मेरा भाई है, ओङ्कार!

सब डाकू इस घटना से चित्र-लिखे से हो रहे। मानिक ने वस्त्र हटा कर ओङ्कार की छाती पर हाथ रक्खा। कलेजा बहुत ही धीरे-धीरे धक्-धक् कर रहा था। मानिक के मुख

पर कुछ आशा झलकी। डाकू उसकी ओर इस प्रकार से देख रहे थे, मानों उसके भाग्य से उनके भाग्य का अटूट सम्बन्ध हो गया हो। मानिक का तिल भर दुख उनके लिए पहाड़ था। हृदय सबके होता है; पर वश में करने की शक्ति होनी चाहिए।

मानिक ने कहा—ईश्वर को धन्यवाद है। बचने की आशा है। मरा नहीं।

सब डाकू ईश्वर से ओङ्कार के दीर्घायु होने की प्रार्थना करने लगे।

मानिक ने पूछा—अड्डा कितनी दूर होगा?

जोखिमसिंह ने उत्तर दिया—बिलकुल पास ही है।

मानिक—नाव की चाल तेज़ करो।

मल्लाहों ने चौगुने वेग से डाँड़ चलाना आरम्भ कर दिया। नाव वायु-वेग से चलने लगी। गङ्गा का पानी भी मानों मानिक की आज्ञा के वशवर्त्ती था। फट कर अलग हो जाता था। नाव तीर के समान बीच से निकल जाती थी।

गीले कपड़े उतार कर ओङ्कार को सूखे कपड़े पहनाए गए। कई डाकुओं की देख-रेख में वह एक सुरक्षित स्थान में रख दिया गया। मानिक चिन्ता के साथ निश्चित स्थान पर पहुँचने की बाट देखने लगी।

देखते-देखते आगे की सब वस्तुएँ बहुत पीछे चली गईं। नाव धीमी पड़ी। अन्त में रुक गई। मानिक कुछ डाकुओं

को साथ लेकर अड्डे में चली। मानिक का यह अड्डा एक बड़ा तिमञ्जिला मकान था। बड़ी मजबूती और सुन्दरता के साथ बना हुआ था। उसमें बहुत से आदमी एक साथ रह कर गुजारा कर सकते थे। अलग-अलग कई कमरे थे। सब आवश्यकताओं को वह पूरा कर सकता था। ओङ्कार एक सुन्दर कमरे में पलँग पर लिटा दिया गया। मानिक पास बैठ कर एकाग्रचित्त से उसकी सेवा करने लगी।

मानिक के लगातार परिश्रम और प्रयत्न से ओङ्कार को दिन के तीसरे पहर होश हुआ। आश्चर्य से यहाँ-वहाँ देखने लगा। मानिक पास बैठी थी। ओङ्कार की स्मरण-शक्ति क्षीण थी। विस्मय से उसकी ओर देख कर पूछा—मैं कहाँ हूँ? तुम कौन हो?

मानिक को ओङ्कार का पुनर्जन्म होते देख अपार आनन्द हुआ। हर्ष से विह्वल होकर बोली—मुझे नहीं पहचानते क्या? मैं तुम्हारी बहिन मानिक हूँ।

ओङ्कार उठ कर बैठ गया। बोला—बहिन, मानिक!

मानिक—अभी तुम्हारी देह सुस्त है। भैया, उठो मत। लेटे रहो।

ओङ्कार—मैं बिलकुल अच्छा हूँ। बताओ,' कहाँ हूँ। तुम्हारे पास कैसे आ पहुँचा?

मानिक—तुम गङ्गा में बहे जा रहे थे। मैंने निकाला है। अब तुम मेरे घर पर हो।

ओङ्कार—गङ्गा में ?

मानिक—हाँ।

ओङ्कार—यह तुम्हारा घर है ?

मानिक—हाँ।

ओङ्कार—क्या मैं बनारस में हूँ ?

मानिक—नहीं, कानपुर में।

ओङ्कार—तुम्हारा घर तो बनारस मे है।

मानिक—वह घर अब छूट गया है। कई दूसरे घर हो गए हैं। पर मेरे रहने की इस समय ख़ास जगह यही है।

ओङ्कार—घर के दूसरे लोग कहाँ हैं ? तुम यहाँ क्या करती हो ?

मानिक—यह फिर बताऊँगी। मेरी कहानी बड़ी है।

ओङ्कार की कुहनी दर्द कर रही थी। वह उसको मलने लगा।

मानिक—दूध पियोगे ? थोड़ा सा पी लो। गर्म दूध पीने से शरीर में फ़ुर्ती आ जायगी; दूँ ?

ओङ्कार—दो।

मानिक ने ओङ्कार को दूध दिया। पीकर वह लेट रहा।

मानिक बोली—तुम्हें अच्छा देख कर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। इस समय जाती हूँ। कुछ काम है। जल्दी लौटूँगी।

बाहर कहीं दूर मत जाना। मन बहलाने के लिए टेबिल पर पुस्तकें रक्खी हैं। पढ़ना।

ओङ्कार—कहाँ जाती हो ?

मानिक—लौट कर बताऊँगी, अब जी अच्छा है न ?

ओङ्कार—अच्छा है।

मानिक कमरे से बाहर हो गई। धीरे से दरवाज़ा बन्द कर दिया। ओङ्कार अकेला पड़ा सोचने लगा। मन में बहुत से विचार चक्कर लगाने लगे। मुझे कुमारी ने चन्दा के पास भेजा था। थोड़ी देर में ईश्वरप्रसाद आ गया था। मैं भागते समय छत के नीचे गिर पड़ा था। किसी ने मुझे मरा जान कर गङ्गा में फेंक दिया होगा। मानिक ने मुझे पाया। अब मैं उसके पास हूँ। वह यहाँ क्यों आ गई है ? क्या करती है ? कहती है, मेरे बहुत से घर हैं। पहला घर छूट गया है। बहुत से घरों में अकेली कैसे रहती होगी ? पहला घर क्यों और कैसे छूट गया ?

स

न्ध्या हो गई। कमरे में घना अन्धकार फैल गया। पड़े-पड़े ओङ्कार से वहाँ न रहा गया। वह बाहर निकल आया। दीवार के सहारे एक डाकू खड़ा था। ओङ्कार को देख कर उसने झुक कर अभिवादन किया। ओङ्कार उसका उत्तर देकर आगे बढ़ा। फिर कर देखा, एक अच्छा लम्बा-चौड़ा आलीशान मकान खूब बड़े हाते के भीतर बना है। हाते की दीवार के दस फुट की दूरी तक सब जगह सुन्दर सुगन्धित फूलों के पौधे लगे हैं। चारों कोनों में गगन-चुम्बी ताड़ के वृत्त अपनी दीर्घाकार पत्तियों से शुद्ध वायु प्रवाहित कर रहे हैं। ओङ्कार ने घूम कर वहाँ की शोभा देखी। ज़गह अच्छी है। बढ़िया मकान है। जैसे राजाओं के रहने का महल हो। कई डाकू नौकरों की रङ्गीन वर्दी पहने यहाँ-वहाँ टहल रहे थे। ओङ्कार के पास आने पर वे

नम्रता से सिर झुका कर उसको आदर देते थे। ओङ्कार बड़े चक्कर में पड़ा। मानिक इतनी शक्तिशालिनी कैसे हो गई? यह वैभव उसे कहाँ मिला? वह अकेली है या उसके साथ कोई और भी है? घूमते हुए ओङ्कार फाटक के पास पहुँचा। चार डाकू खड़े थे। उन्होंने माथा नवा कर उसका सत्कार किया। ओङ्कार बाहर सड़क पर आ गया। एक ओर को चला। फाटक पर खड़े हुए डाकुओं में से दो उसके पीछे हो लिए।

ओङ्कार ने ठहर कर पूछा—मेरे साथ क्यों आते हो?

उनमें से एक ने कहा—आपको कहीं अकेले जाने देने की आज्ञा नहीं है।

ओङ्कार—किसकी आज्ञा नहीं है?

वह—जिनकी आज्ञा से आप गङ्गा जी से निकाले गए हैं और जो आपकी बहिन होती हैं।

ओङ्कार—तुम लोग कौन हो?

वह—हम लोग उन्हीं के सेवक हैं। आपकी आज्ञा मानने के लिए तैयार हैं।

ओङ्कार—मेरी आज्ञा मानो तो मुझे अकेला जाने दो।

वह—उनकी तरफ़ से जो आज्ञा मिल चुकी है, उसके विरुद्ध हम नहीं जा सकते। यहाँ से आप बहुत दूर भी नहीं जाने पावेंगे। हाते के भीतर चाहे जहाँ रह सकते हैं। और आप जो आज्ञा दें, हम लोग तुरन्त मानेंगे।

ओङ्कार—मैं क़ैदी नहीं हूँ।

वह—आप हम सबके मालिक हैं। आपके उँगली हिला देने के सैकड़ों आदमी आपके लिए अपनी जान दे सकते हैं।

ओङ्कार उनकी कार्य-पटुता और बातचीत करने का अच्छा ढङ्ग देख कर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने पूछा—मुझे अकेले जाने देने में क्या हानि है?

वह—इसका उत्तर वे ही दे सकती हैं।

ओङ्कार—तुम नहीं जानते?

वह—नहीं। हमारा काम सिर्फ़ उनकी आज्ञा मान लेने से पूरा हो जाता है। किसी तरह की छान-बीन करने की हम लोगों की आदत नहीं है।

ओङ्कार बिना कुछ और कहे हाते के भीतर चला आया। फिर अपने कमरे में आ गया। उसके मन में मानिक के बड़प्पन की धाक बैठ गई। कमरे में आकर देखा। लैम्प जल रहा है। एक पुस्तक उठा कर पलँग पर लेट गया।

कुछ रात बीत जाने पर मानिक आई। ओङ्कार बड़ी विकलता से उसकी राह देख रहा था। उसके हाल-चाल पूछने के लिए उसका मन बेचैन था। आँखें पुस्तक पर गड़ी थीं; पर ध्यान और कहीं था। मानिक को देखते ही वह उठ कर बैठ गया। बोला—तुमने बड़ी देर लगाई।

मानिक—देर कहाँ हुई? जल्दी तो आ गई हूँ।

ओङ्कार—मेरा एक-एक पल मुश्किल से बीत रहा था।

मानिक ने कुछ घबरा कर कहा—यह क्यों, कोई तकलीफ़ तो नहीं हुई ?

ओङ्कार—और सब ठीक है। केवल तुम्हारा हाल जानने के लिए जी तड़फड़ा रहा है।

मानिक मुस्कराई। तिपाई पर बैठ गई। बोली—अपना हाल कहूँ ?

ओङ्कार—कहो, मैं बहुत पहले से सुनने को तैयार हूँ।

मानिक—हर एक आदमी के विचार अलग-अलग होते हैं। मैं जो कहूँगी उसे सुन कर शायद तुम मुझे बुरा समझने लगोगे। आश्चर्य नहीं, मुझसे घृणा करने लगो। पर जब कहने बैठी हूँ, तब कहूँगी ही। मेरी बातों को विचार से देखोगे, तो तुम्हें मुझे दोष देने की जगह न मिलेगी।

मानिक को इतनी बात कहने की कोई आवश्यकता न थी। ओङ्कार जानता था कि वह स्वयं कोई ऐसा पुण्यात्मा पुरुष नहीं है।

मानिक ने आदि से लगा कर आज केदार के [illegible]ने तक की सब घटनाएँ कह डालीं। ओङ्कार मानिक की व्यथा से व्यथित हुआ, और उसके साहस पर दाँतों से अँगुली दबा ली। जिस समय मानिक अपने कई भयानक डाकों का हाल कह रही थी, उस समय ओङ्कार मुँह बाए और आँखें फाड़े ध्यान से सुन रहा था।

मानिक ने अपनी आत्म-कथा समाप्त कर ओङ्कार से कहा—तुम्हारे विषय की एक बात और रह गई है।

मानिक की बातों से ओङ्कार की तृप्ति नहीं हुई थी। उसने कहा—वह भी कह डालो।

मानिक ने एक फ़ोटो दिखाया। पूछा—इसे पहचानते हो, कौन है ?

ओङ्कार लज्जित हो गया। कुछ कह न सका।

मानिक ने फिर पूछा—किसका फ़ोटो है ? बताओ, शर्माओ नहीं। मुझे तुम्हारा रत्ती-रत्ती हाल मालूम है। दूसरी झञ्झटों में फँसे रहने के कारण थोड़े समय के लिए मेरा ध्यान तुम्हारी ओर से उड़ गया था, इसी से यह घटना आ घटी ; नहीं तो तुम इस तरह मृत्यु के मुख में न पाए जाते। मैं सब सँभाल लेती। बोलो, पहचानते हो न ?

ओङ्कार मानिक के आतङ्क से दब गया था। धीरे से कहा—पहचानता हूँ। तुमने इसे मेरे कोट के जेब में पाया होगा।

मानिक—यह कौन है ?

ओङ्कार—इसका नाम चन्दा है।

मानिक—चन्दा के बारे में और क्या जानते हो ?

ओङ्कार—वह ईश्वरप्रसाद की स्त्री है।

मानिक—इसके सिवा ?

ओङ्कार—इसके सिवा और मुझे कुछ नहीं मालूम।

मानिक—चन्दा मेरी बहिन है। तुम्हारी भी बहिन है। तुमने इसे बहुत पहले देखा था। एक बार जब तुम चाचा के पास गए थे, तब मैं तो वहाँ थी, पर बहिन चन्दा नहीं थी। उसका विवाह हो गया था और वह ससुराल चली गई थी। उसके बाद भी तुमको उसके देखने का कोई मौक़ा नहीं पड़ा। यही कारण है कि तुम्हें उसकी ज़रा भी याद नहीं रही और तुम धोखा खा गए।

चन्दा! चन्दा मेरी बहिन है! ओह! इस अनहोनी घटना से ओङ्कार के सिर में चक्कर आ गया। तकिए पर दोनों हथेलियाँ रख दीं और ज़ोर से उन पर सिर पटक दिया। मैं अब किसी को मुँह दिखलाने लायक़ भी नहीं रह गया हूँ।

चौंतीसवाँ परिच्छेद
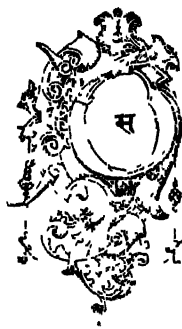
सवेरे आँख मलते समय केदार का हाथ नाक पर पड़ा, तो बड़ा दर्द मालूम हुआ। हाथ में देखा, ख़ून लग गया है। ऐं! ख़ून कहाँ से आया? तुरन्त सब बातें मस्तक में घूम गईं। ओफ़ रे! बड़ा दर्द है! हरामी के पिल्ले ने नाक बेकाम कर दी। कराहते हुए वह उठा। आईने में मुँह देखा। अपना मुँह देख कर वह आप ही घबड़ा गया। तमाम चेहरे पर ख़ून पुता था। उखड़े हुए दाँतों से ख़ून निकल कर मुँह में जम गया था। नाक हलवा हो गई थी। गोरेलाल को बुलाना चाहा, मारे दर्द के मुँह ही न खुला। मन बेचैन था। तबीयत झल्लाई हुई थी। एक कोने में गोरेलाल सोया हुआ था। नाक ज़ोर से बोल रही थी। मेरी यह हालत और वह चैन से स्वर निकाल रहा है! केदार ने जाकर उसे एक लात जमाई। वह झट आँखें खोल कर खड़ा हो गया। इस तरह लात मार कर जगाए जाना

उसे नहीं भाया। नींद में और ज़ोर से ग़ुस्सा आ गया। बोला—कौन हरामज़ादा का बच्चा लात मारता है ?

गोरेलाल हर दम डण्डा पास रखता था। सोते समय भी बग़ल में लेकर ही सोता था। उठा कर केदार पर ताना। जो हो चुका था, वही काफ़ी था। और पाने पर मतलब हो जाता। केदार चिल्ला कर पीछे हट गया। दर्द की परवा न कर आवाज़ मुँह से निकल गई—अबे, कमीने ! बेईमान ! निकल मेरे घर से। अभी जा।

गोरेलाल केदार के मुँह की ओर देख कर सन्नाटे में आ गया। बड़ी मुश्किल से पहचान सका। डण्डा नीचे करके बोला—अरे सरकार ! यह क्या हुआ ?

केदार ग़ुस्से में भरा था। कहा—अभी चला जा। मुझे तेरी ज़रूरत नहीं है। नमकहराम कहीं का !

गोरेलाल ने गिड़गिड़ा कर कहा—सरकार माफ़ करिए, धोखा हो गया। मैं आपको पहचान नहीं सका था। आज तक मैंने किसी की मार नहीं खाई, लात न सह सका। ग़ुस्सा आ गया। पहचाना नहीं था ; इसी से ऐसा हुआ। आप मेरे अन्नदाता हैं। लीजिए, गर्दन झुकाता हूँ। काट डालिए, उफ़ न करूँगा। धोखे से क़ुसूर हो गया। माफ़ी माँगता हूँ।

केदार—मुझी को मारने चला था, नालायक़ ! सुअर !

गोरेलाल हाथ जोड़ कर बोला—बड़ी भूल हुई सरकार,

अब ऐसा न होगा। इस बार माफ़ कर दीजिए। जान-बूझ कर मैंने कुछ नहीं किया। आपको जान से बढ़ कर समझता हूँ।

गोरेलाल की विनय से केदार का क्रोध शान्त हो गया। कुछ ठहर कर उसने धीरे से कहा—थोड़ा सा पानी गर्म करो।

गोरेलाल ने तुरन्त आग सुलगाई। पतीली में पानी गर्म होने को रख दिया। केदार को शान्त देख कर उसे साहस हो आया। पूछा—सरकार, आपके यह चोट कैसे लग गई है?

केदार बड़बड़ाने लगा—बोटी-बोटी काट कर फेंक दूँगा। कुत्तों से नुचवा डालूँगा। मेरे सामने की छोकरी, तुझे इतना दिमाग़! तू मुझे जानती नहीं है? मैं फ़ौलाद का बना हूँ। दया-माया मुझमें छू नहीं गई है। मैं बड़ा कठोर और निर्दयी हूँ। जिसके पीछे पड़ता हूँ, उसका तहस-नहस कर डालता हूँ। सिंह को छेड़ना तेरा काम नहीं था। तू मेरे सामने अभी दूध-पीती बच्ची है। कुछ भी हो, तुझे मैं नहीं छोड़ूँगा। जरूर हलाल करूँगा।

गोरेलाल—किसी औरत की बदमाशी है क्या?

केदार—तुझे भी नहीं छोड़ूँगा, साले! तेरी सब हेकड़ी भुला दूँगा। एक औरत के कहने से तूने मुझ पर लाठी चलाई है। कभी तो मिलेगा ही, जायगा कहाँ? इतने जूते

मारूँगा कि सिर गञ्जा हो जायगा। चक्की चलाना पड़ेगा और कोल्हू पेरना पड़ेगा, सो अलग। रहो बचा जी!

गोरेलाल लाठी सँभाल कर खड़ा हो गया। बोला—मुझसे बताइए सरकार, किसने आपको मारा है? मैं उसका खून पी लूँगा। अपने मालिक पर हाथ छोड़ने वाले को मैं कच्चा चबा जाऊँगा। जीता न बचेगा। मैं हूँ किस दिन के लिए? ऐसे आड़े समय में काम न आऊँगा। बताइए सरकार, वह कौन है? अकेला सौ को सर कर सकता हूँ। वह किस खेत की मूली है?

केदार मुस्कराया। पूछा—पानी गर्म हुआ?

गोरेलाल ने पतीली में हाथ डाल कर कहा—बहुत गर्म नहीं हुआ, कुनकुना है।

केदार—लाओ, ठीक है।

गोरेलाल ने पतीली सामने रख दी। केदार ने आईने में देख-देख कर मुँह धोया। कई बार कुल्ला किया। कपड़ा भिगो कर धीरे-धीरे खून के दाग़ छुड़ाए।

गोरेलाल ने कहा—चोट बहुत आ गई है। उस दुष्ट का पता-ठिकाना कहिए। मैं उसे ठीक करके तब मुँह में दाना डालूँगा।

केदार—खून बन्द नहीं होता। क्या करूँ?

गोरेलाल—डॉक्टर को बुलाऊँ?

केदार—डॉक्टर नहीं; पहले एक ताँगे का बन्दोबस्त करो। मैं कोतवाली जाऊँगा।

गोरेलाल—वह लड़का कपूर कहाँ है? मैं जाता हूँ, तब तक वह आपके पास रहेगा।

केदार—उसकी नानी मर गई है। वह भी मरने चला गया है। तुम जाओ।

गोरेलाल ताँगा लाया। दोनों उसमें बैठ कर चले। रास्ते में गोरेलाल ने कहा—मुझे हरदम अपने साथ रक्खा करिए सरकार, कौन जाने, कब कैसा मौक़ा पड़ जाय।

केदार ने बिना कुछ अधिक ध्यान दिए कहा—अच्छा।

कोतवाली में कोतवाल टेबिल के सामने बैठा हुआ कुछ लिख रहा था। केदार गोरेलाल के साथ सलाम करके खड़ा हो गया। कोतवाल ने घायल आदमी को सामने देखा तो लिखना छोड़कर पूछा—क्या है? किसने तुमको मारा है?

केदार ने पास रक्खी हुई एक बेञ्च पर बैठकर कहा—इसी की रिपोर्ट लेकर मैं आपके पास आया हूँ।

कोतवाल—बोलो, किसने क्या किया है? तुम बुरी तरह घायल हुए हो। जुर्म करने वाले को पूरी सजा दी जायगी। तुम्हारा नाम-पता क्या है?

केदार ने अपना नाम-पता बताया। कोतवाल ने नोट कर लिया। फिर पूछा—मारने वाले का नाम-पता बताओ?

केदार—मुझे उसका नाम-पता नहीं मालूम।

कोतवाल ने सिर उठा कर कहा—नहीं मालूम ?

केदार—मैंने उसे पहली बार देखा था।

कोतवाल—अच्छा, हुलिया बोलो।

कोतवाल मतलब की सब बात लिखता गया। केदार ने और बातों के सिवा कहा—थोड़े ही समय के लिए मैंने उसको देखा था। ठीक हुलिया भी नहीं कह सकता। यही एक लम्बे डीलडौल का आदमी था। पूरे छः फ़ीट का होगा। सिर पर बड़ा-सा साफ़ा था। घुटने तक धोती और लम्बा कुर्ता पहने था। चेहरा चिकना और साँवला था। तेल लगाने से चमचमाने लगा था। बड़ी-बड़ी मूँछें थीं। दाढ़ी घुटी हुई थी।

कोतवाल—वह अकेला ही था या उसके साथ कोई और भी था ?

केदार—वह एक स्त्री के साथ था। उसी स्त्री के कहने से उसने मुझे मारा था।

कोतवाल—उस स्त्री को तुम पहचानते हो ?

केदार—अच्छी तरह जानता हूँ। बनारस की रहने वाली है। वहीं उसके माँ-बाप रहते थे और वहीं उसकी शादी हुई थी। उसका नाम है मानिक। उसके पिता का नाम जवाहरलाल था।

कोतवाल—पहले की कोई अदावत रही होगी ?

केदार—ज़रा भी नहीं। मैंने कभी उसका कुछ नहीं बिगाड़ा। सदा से उसका हितचिंन्तक रहता आया हूँ।

कोतवाल—ऐसा तो कभी नहीं हो सकता। बिना किसी कारण के वह किसी से तुमको मारने के लिए क्यों कहती?

केदार—ईश्वर जाने, किस कारण से उसने ऐसा किया। मैं कह नहीं सकता।

कोतवाल—कब की बात है?

केदार—कल शाम की।

कोतवाल—तुम उस समय कहाँ थे?

केदार—ईश्वरप्रसाद जी के पास कुछ काम से गया था।

कोतवाल—किस काम से?

केदार—मेरा निज का काम था। कुछ रुपयों की ज़रूरत थी, उन्होंने मुझे रुपए दिए। मैं गिन रहा था कि इतने में वह स्त्री मानिक, उस लठैत के साथ आ पहुँची और मुझे मारने को कहा। लाठी खाकर मैं बेहोश हो गया। किसी ने मुझे घर पहुँचा दिया। सवेरे नींद खुलने पर मैंने अपने को अपने घर पर ही पाया।

कोतवाल ने गोरेलाल की ओर देख कर पूछा—यह कौन है?

केदार—यह मेरा विश्वासी नौकर है।

कोतवाल—और क्या कहना है?

केदार—एक बात और है। बड़ी भयानक है।

कोतवाल—यहाँ रोज़ ही भयानक बातें हुआ करती हैं। कहो। केदार पहले कुछ हिचका। फिर कह दिया—कल सवेरे मैंने ईश्वरप्रसाद को गङ्गा में एक लाश फेंकते देखा था।

कोतवाल ने आश्चर्य से कहा—लाश !

केदार—जी हाँ, लाश। सवेरे का समय था। ठीक-ठीक उजाला नहीं होने पाया था।

कोतवाल—किसका नाम तुमने लिया, ईश्वरप्रसाद ?

केदार—हाँ, ईश्वरप्रसाद।

कोतवाल—मैं उसे जानता हूँ। वह तो भला आदमी है।

केदार—मैं भी उसे बहुत दिनों से जानता हूँ। बड़ा दुष्ट है।

कोतवाल—तुम भूलते होगे।

केदार—इसमें कभी भूल नहीं हो सकती। सुनी बात नहीं, मैं अपनी आँखों देखी बात कह रहा हूँ।

कोतवाल को कुछ याद आया। पूछा—तुम ओङ्कारनाथ को जानते हो ?

केदार—जानता हूँ। वे शहर के रईसों में से हैं।

कोतवाल—क्या तुम्हें मालूम है कि वह कल सवेरे से लापता है ? इसकी ख़बर मुझे मिल चुकी है।

केदार—यह मुझे नहीं मालूम।

कोतवाल—कल सवेरे तुमने ईश्वरप्रसाद को गङ्गा में लाश फेंकते देखा था। तभी से ओङ्कारनाथ लापता है। वह लाश ओङ्कारनाथ ही की तो नहीं थी? कुछ कह सकते हो?

केदार—उछल पड़ा। बोला—हाँ-हाँ, वही होंगे। ज़रूर वही थे। कुछ दिनों से वह ईश्वरप्रसाद के ठीक सामने वाले बँगले में रहने लगे थे। अब मैं सोचता हूँ, तो यही जान पड़ता है कि वह लाश सिवा ओङ्कारनाथ के किसी दूसरे की नहीं थी। कपड़े वैसे ही थे।

कोतवाल भी अपने संशय को निश्चय में बदलते देख बड़ा प्रसन्न हुआ। परमेश्वर ने अनायास ही नामवरी पाने का अच्छा मौक़ा हाथ में दे दिया है। उसका विश्वास इस पर इसलिए और जम गया कि ईश्वरप्रसाद ने लाश न फेंकी होती, तो इसे उसी दिन शाम को रुपयों की ज़रूरत न पड़ती। अब मेरी ख़ूब वाहवाही होगी। बड़े-बड़े अङ्गरेज़ी अफ़सर मेरा आदर करेंगे। मन में हवाई क़िले बाँधते हुए कोतवाल ने कहा—तुम जा सकते हो, मैं देखूँगा।

क़रीब एक घण्टे के बाद कोतवाल चार कॉन्स्टेबिल, एक हेडकॉन्स्टेबिल और एक सब-इन्स्पेक्टर के साथ ईश्वरप्रसाद को गिरफ़्तार करने के लिए चला। तुरन्त उसके घर पहुँचा। ईश्वरप्रसाद का मुख बिलकुल मुरझाया हुआ था। कोतवाल

का रहा-सहा सन्देह भी दूर हो गया। ईश्वरप्रसाद को हथ-कड़ी पहना दी गई।

चन्दा अपने स्वामी को गिरफ़्तार देख पछाड़ खाकर पृथ्वी पर गिर पड़ी।

पैंतीसवाँ परिच्छेद

कुमारी चन्दा के गले से लिपट गई। रोते हुए उसे समझाने लगी—बहिन, धीरज धरो, वह बिलकुल निर्दोष हैं। परमात्मा, जो सब कुछ देखता है, अच्छी तरह जानता है कि उन्होंने कोई अपराध नहीं किया। वही निरपराधी की रक्षा करेगा।

चन्दा चेष्टा-रहित होकर पड़ी थी। भारी दुःख, गाढ़ी चिन्ता और भयानक निराशा के कारण उसकी देह बिलकुल शिथिल और मस्तिष्क ज्ञान-शून्य होगया था। सोच सकती थी, तो केवल यही कि वह इस संसार में निरवलम्ब और निस्सहाय होगई है। पति ही स्त्रियों का सर्वस्व होता है। उसी से साथ छूटा तो उसका कोई नहीं है। घोर अन्धकार के अतिरिक्त कुछ नहीं दिखाई पड़ता था। देखती थी तो केवल यही कि उसके सुख की आभा उससे दूर—बहुत दूर

चली गई है। कुछ ही क्षणों में विलीन होजाना चाहती है। कान बहरे हो रहे थे। केवल अपने गम्भीरतम हृदय से निकले हुए आर्त्त-स्वर सुन सकती थी, और सुन सकती थी अपने दुर्भाग्य का विकट उल्लास। चन्दा का मुख बन्द था। रह-रह कर आह भर निकल जाती थी। वही दर्द-भरी आह कुमारी की बातों का उत्तर हुई।

कुमारी स्वयं मन में दुखित थी। कहीं एक दुखित मन दूसरे दुखित मन को शान्ति पहुँचा सकता है? कुमारी ही चन्दा पर आई हुई विपत्ति का कारण थी। उसी के द्वारा यह अनर्थ खड़ा हुआ था। एक से बदला लेने जाकर उसने दूसरे कोमल कलेजे को कुचल डाला था। कुमारी सोचती थी और सोच कर नीचे ही नीचे धँसी जाती। आप रोती थी और दूसरे को चुप कराना चाहती थी। कहीं भीगी आँखों से भी किसी की आँखों का पानी पोंछा जा सकता है? फिर भी उसने व्यर्थ प्रयत्न करना नहीं छोड़ा—आशा मत छोड़ो बहिन! उद्योग करने से क्या नहीं हो सकता? फिर उन्होंने तो कुछ किया ही नहीं है। अवश्य आकर वह तुमसे मिलेंगे। अपने को सँभालो। मैं उद्योग करके उनको छुड़ा लाऊँगी। मेरे पास उद्योग का साधन है। संसार में आजकल रुपया ही मुख्य हो रहा है। कैसा ही कठिन काम हो, इससे पूरा हो जाता है। जटिल से जटिल प्रश्न को यह हल कर देता है। पाप को पुण्य और पुण्य को पाप बनाता

है। यह असम्भव को सम्भव सिद्ध कर सकता है। इस भीषण सन्ताप की अग्नि को मैं रुपयों की वर्षा से शान्त कर दूँगी। बहिन, उठो!

चन्दा भी मानिक की दी हुई अतुल सम्पत्ति की अधिकारिणी थी। वह उसे काम में ला सकती थी। किन्तु उसे किसी बात पर भरोसा नहीं था। उसके विश्वास की सीमा उसके पति तक ही थी। पति को पा जाने पर वह सब दे सकती थी और सब कर सकती थी; पर उसके अभाव से वह अपने को नितान्त शक्तिहीन समझती थी।

कुमारी का प्रयास असफल ही रहा। अनेकों प्रकार से प्रबोध देने पर भी वह कृतकार्य नहीं हो सकी। चन्दा की छाती पर माथा रख कर आँसू बहाने लगी।

इतने में मानिक आई। कुमारी को उठा, उसका हाथ पकड़ कर कहा—बहिन कुमारी, तुम तो आप ही धीरज छोड़ बैठी हो, दूसरे को क्या समझा रही हो?

कुमारी एक अनजान स्त्री के मुँह से अपना नाम सुन कर बड़ी चकराई। उसके मुँह की ओर देखती हुई बोली—मैं तुम्हें नहीं पहचानती।

मानिक ने मुस्करा कर कहा—अब जल्दी जान जाओगी। अभी इतना मालूम कर लो कि चन्दा मेरी बड़ी बहिन हैं।

मानिक बैठ गई। चन्दा के सिर को अपनी गोद में रख

लिया। मुख पर हाथ फेरा। आँखों में ठण्ढे पानी के छींटे दिए। कुमारी से कहा—देखो, मैं इन्हें अभी उठाए देती हूँ।

कुमारी बारम्बार मानिक को सिर से पैर तक देखती थी। कुछ बोली नहीं।

मानिक ने चन्दा के कान के पास मुँह ले जाकर कहा—बहिन, उठती नहीं? मैं अभी उनके पास से चली आ रही हूँ। तुम्हारी बात पूछते थे। कहा, डरना नहीं; मैं जल्दी आऊँगा।

पति के सन्देश ने चन्दा के कानों में अमृत छिड़का। उसने करवट ली।

मानिक ने कहा—सुनती हो, मैं उनके पास गई थी। वे बड़े आनन्द में हैं। किसी तरह का कष्ट नहीं है। केवल तुम्हारी ही चिन्ता उन्हें है।

चन्दा के गालों पर लाली दौड़ गई। मुख-कमल विकसित हो गया। पूछा—क्या कहते थे?

मानिक—कहते थे, मैं अच्छी तरह हूँ। तुम्हें निश्चिन्त होकर रहने को कहा है।

चन्दा—वह अच्छे हैं?

मानिक—बिलकुल अच्छे हैं।

चन्दा—कब तक आवेंगे?

मानिक—बहुत जल्दी आवेंगे।

चन्दा दुःख से जर्जर हो रही थी। बच्चे के समान पूछा—किसी ने उन्हें रोका तब ?

मानिक—रोकेगा कैसे ? मैं तो हूँ। हज़ार आदमियों के बीच से पकड़ लाऊँगी। कोई विघ्न-बाधा मेरे सामने नहीं ठहर सकती।

चन्दा के होठों पर मुस्कराहट छा गई। पूछा—सच ?

मानिक—सच नहीं तो क्या झूठ !

चन्दा—तुम उन्हें यहाँ ला सकोगी ?

मानिक—हाँ।

चन्दा—कैसे ?

मानिक—स्वामिनी का नाम सुना है ?

कुमारी और चन्दा दोनों के शरीर में बिजली दौड़ गई। कुमारी की समस्त शक्तियाँ कानों के पास आ सिमटीं। चन्दा ने कहा—हाँ, सुना है।

मानिक—वह कौन है ?

चन्दा—वह डाकुओं की स्वामिनी है। उसकी बात क्यों करती हो ?

मानिक—वह हर समय तुम्हारी मदद करने को तैयार रहती है।

चन्दा ने यह सुना, पर उसके दिमाग़ में घुसा नहीं।

मानिक—जानती हो वह क्या कर सकती है ?

चन्दा—बहुत-कुछ कर सकती है।

अब मानिक ने कुमारी की तरफ़ दृष्टि फेरी। मानों आँखों से कहा, मैं अपना गुप्त रहस्य कहने जा रही हूँ। तुम पर विश्वास करती हूँ। कुमारी ने पहले ही की सन्देह-भरी आँखों से उत्तर दिया—अपने पर विश्वास रखने वाली को मैं कभी धोखा नहीं देती।

मानिक ने चन्दा से कहा—मैं ही वह स्वामिनी हूँ।

चन्दा की नसें सनसना गईं। आश्चर्य से वह बोली—तुम ?

मानिक—हाँ, मैं वही स्वामिनी हूँ। राजा की तरफ़ से दुष्टों का दमन किया ही नहीं जाता। बनावटी भलेमानसों की भरमार हो रही है। देश कुरीतियों के बोझ से दबा जा रहा है। सामाजिक अत्याचारों की दिन पर दिन बढ़ती होती जा रही है। परमेश्वर भी इन्हें न जाने कब दण्ड देगा। जी की तपन के कारण मैंने ही यह वेष धारण कर लिया है।

चन्दा टकटकी लगाए मानिक के मुख को देखती रही।

मानिक ने कहा—बहिन, जब तक मैं बनी हूँ, तब तक तुम्हें किसी बात का डर नहीं है। उनका बाल बाँका नहीं हो सकता। उन पर कुदृष्टि फेंकने वालों की मैं आँखें निकाल लूँगी। हृदय में बुरे विचार रखने वालों का मैं कलेजा चीर डालूँगी। बहिन, तुम मुझे बहुत प्यार करती

हो। उसका बदला अवश्य चुकाऊँगी। तुम्हारा दुःख मेरा दुःख है।

कुमारी बड़ी ही चतुर और साहसी स्त्री थी; पर उसे मानिक का लोहा मानना पड़ा।

निक ने जोखिमसिंह से कहा—जोखिमसिंह, तुम जाकर अपने को गिरफ़्तार करा दो। इस समय जेल में बाबू ईश्वरप्रसाद जी के ठीक बग़ल का कमरा ख़ाली है। उसी में तुम रक्खे जाओगे। उन्हें ढाढ़स देना।

जोखिमसिंह ने कहा—बहुत अच्छा।

मानिक—इसके सिवा एक बात और है। केदार ने अपने पीटे जाने की रिपोर्ट करने के साथ ही साथ मेरा नाम भी ले लिया है।

जोखिम—हाँ।

मानिक—मैं नहीं चाहती कि मानिक के नाम से मेरी खोज हो।

जोखिम—बेशक, बेशक यह अच्छा न होगा।

मानिक—तुम्हारे चले जाने से मेरा पीछा न होगा। मामला वहीं दब जायगा।

जोखिम—ठीक है। तो मैं कब जाऊँ, अभी ?

मानिक—अभी चले जाओ।

जोखिम—तैयार हूँ।

मानिक—तुम्हारा कुछ होने नहीं पावेगा।

जोखिमसिंह ने हँस कर कहा—भला मेरा कोई क्या कर सकता है ?

मानिक—अच्छा, जाओ। देखो, उन्हें दुःखित न होने देना। समझाते रहना। कहना, भरपूर कोशिश हो रही है। वह ज़रूर छूट जायँगे।

जोखिम—अच्छा।

जोखिमसिंह मानिक की आज्ञानुसार कोतवाल के पास जा सलाम करके बोला—साहब, मुझे हवालात में बन्द कर दीजिए।

कोतवाल पहले तो बड़े अचम्भे में हुआ ; फिर सोचा, कोई सनकी होगा। घुड़क कर कहा—भाग, नहीं तो कोड़े पड़ने लगेंगे।

जोखिम—मैं सच ही बन्द होने आया हूँ। झूठ नहीं कहता।

बहुत देर से अकेले बैठे-बैठे कोतवाल का जी ऊब गया था। मन में कहा, चलो इसी से बातें करके थोड़ी देर मन

कोतवाल को उसकी बातों में ख़ूब आनन्द आने लगा। पूछा—उसके कहने पर ईश्वरप्रसाद उसको रुपए क्यों देने लगा ?

जोखिम—किसी कारण से वे उससे दबते होंगे। केदार बहुत नङ्गा आदमी है। रुपए देकर उसे टाल देने का विचार रहा होगा।

कोतवाल ने सोचा, केदार ने ईश्वरप्रसाद को नदी में ओङ्कार की लाश फेंकते देख लिया था, इसी से वह उससे डरता है। उसने पूछा—ईश्वरप्रसाद से तेरा क्या सम्बन्ध है।

जोखिम—कोई सम्बन्ध नहीं है।

कोतवाल—फिर उसके पीछे तूने केदार को क्यों मारा ?

जोखिम—मैंने केदार को उनसे अन्याय से रुपए लेते देखा। गुस्सा आ गया, मार दिया।

कोतवाल—तुझे मालूम है, ईश्वरप्रसाद ने ओङ्कारनाथ को मार डाला है ?

जोखिम—ज्यादा मेल-मुलाक़ात तो नहीं है; पर मैं उन्हें जानता हूँ। बड़े अच्छे आदमी हैं। वे ऐसा कभी नहीं कर सकते।

कोतवाल—तेरा नाम क्या है ?

जोखिम—मोटू।

कोतवाल—मानिक नाम की किसी स्त्री को जानता है ?

जोखिम—और किसी से आपको क्या पड़ी है? मैंने केदार को पीटा है। मेरे साथ चाहे जैसा सलूक करिए।

कोतवाल—उसी के कहने से तूने उसे मारा है।

जोखिम—यह झगड़े की बात है। कहने वाला अपराधी नहीं ठहरता, करने वाला अपराधी होता है। मैंने केदार को मारा है। यदि मैं आपसे अपने को छोड़ देने के लिए कहूँ और आप दया करके मुझे अपने हाथ में पाकर भी छोड़ दें, तो मुझे छोड़ देने का दोषी कौन होगा? मैं या आप? किसी के कहने ही से कोई कुछ नहीं कर बैठता। अपनी इच्छा से करता है। उस समय मुझे गुस्सा आ गया था, मार दिया। चाहता तो न मारता।

कोतवाल जोखिमसिंह की युक्ति पर विचार करने लगा। अजीब क़िस्म का आदमी है। अक़्ल तेज़ है। इसमें कुछ भेद तो नहीं है? उस स्त्री को बचाने के लिए तो यह अपने को नहीं फँसाना चाहता? उसने कुछ किया नहीं। इसी ने केदार को मारा है। असली अपराधी यही है। मुझे दूसरे से क्या मतलब? मेरा काम इसी से पूरा हो जायगा।

कुछ देर के बाद जोखिमसिंह हवालात में देखने में आया।

वी की देह कुछ-कुछ गर्म हो गई थी। बार-बार जम्हाई आती थी। शरीर टूटता था। कुमारी माथा सुहला रही थी। देवी ने कहा—प्यास लगी है। थोड़ा पानी दो।

कुमारी ने कुछ ठहर कर गिलास में पानी उड़ेला और उसे देवी को दिया।

देवी ने गिलास हाथ में लेकर कहा—यह तो गर्म है।

कुमारी—अभी उबाल कर रक्खा था। बहुत गर्म नहीं है। गुनगुना है, पी जाओ।

देवी गर्म पानी अच्छा नहीं लगेगा।

कुमारी—ठण्ढा पानी नुक़सान करेगा।

देवी—करे नुक़सान। मुझे ठण्ढा पानी दो।

कुमारी—नहीं बहिन, ठण्ढा पानी मत पियो। जान-बूझ कर तबीयत ख़राब करना अच्छा नहीं।

देवी ने एक घूँट गर्म पानी ही पी लिया।

कुमारी देवी का मन बहलाने के लिए कई प्रकार की बातें करने लगी। बातचीत में ईश्वरप्रसाद की चर्चा आगई। कुमारी ने उसके पकड़े जाने का हाल सुना दिया। देवी सुन कर बड़ी दुखित हुई। बोली—ईश्वर ने स्त्रियों को दुःख देने ही के लिए सिरजा है।

कुमारी ने कहा—सब कर्म-भोग हैं बहिन! जिसने पूर्व-जन्म में जैसा कर्म किया है, उसे इस जन्म में वैसा ही फल मिलता है। हम और तुम भी इसी प्रकार का दुःख भोग रही हैं। यह कलियुग है इसमें लोगों की मति भ्रष्ट हो गई है। अच्छे काम वे बहुत कम करते हैं। इसी से अधिकतर दुखी ही देखने में आते हैं।

देवी—तो हमने और तुमने भी पाप किया होगा?

कुमारी—ज़रूर; नहीं तो यह यातना क्यों सहनी पड़ती?

देवी—मैं देखती हूँ, कि बहुत से बुरे काम करने वाले आनन्द करते हैं और बेचारे धार्मिक, जो फूँक-फूँक कर पैर रखते हैं, घोर कष्ट पाते हैं।

कुमारी—वही बात है। उस जन्म के पुण्य और पाप का फल पाते हैं। इस जन्म में किए हुए कर्मों का फल दूसरे जन्म में मिलेगा।

देवी—कौन जाने, उस जन्म में क्या होता है? वर्तमान में सभी आनन्द से रहना चाहते हैं।

कुमारी—आनन्द से रहने की इच्छा करने ही से कोई आनन्द से नहीं रह सकता। कर्म-भोग अमिट है।

देवी—तो क्या जन्म भर वही कर्म-भोग पीछे लगा रहता है?

कुमारी—यह कर्मों के परिमाण पर निर्भर है, जिसका जितना हुआ। किसी का पूरा जन्म भोगते ही बीत जाता है। कर्म-भोग के साथ ही साथ मनुष्य नए कर्म भी करता है। इस जन्म में किए हुए कर्मों का फल इसी जन्म में भी मिल जाता है। जो बाक़ी बचता है वह दूसरे जन्म में पूरा होता है। कई लोग दुख की अधिकता के कारण आत्म-हत्या कर डालते हैं, यह ठीक नहीं। वे उस दुख से बच नहीं सकते। फिर से जन्म लेने पर उसे भुगतना पड़ता है। इसी से आत्म-हत्या पाप माना गया है। जो होना है, वह अभी हो जाय। फिर के लिए क्यों रख छोड़ा जाय? मनुष्यों को दुख धीरतापूर्वक सहन करना चाहिए। समझना चाहिए, हमारा पाप कट रहा है। इसके पश्चात् उद्योग करने से सुख की घड़ी आवेगी।

देवी—मैंने सुना है, ईश्वर के करने से सब होता है। ऐसी दशा में पूर्व-जन्म के किए हुए सब कर्म उसी के कराने से हुए होंगे। इस जन्म में भी जो करते हैं या करेंगे,

उनके हम ज़िम्मेदार नहीं कहे जा सकते। वही हमसे कर्म कराता है और वही हमें उसका दण्ड या पुरस्कार देता है। यह कैसी बात है ?

कुमारी—ईश्वर सब कुछ करता है सही; पर वह प्राणियों के भाग्य नहीं बनाता। अपने भाग्य के विधाता हमीं हैं। जैसा करेंगे, वैसा पावेंगे। हमारे कर्मानुसार वह हमें फल देता है। उसने हमें इच्छा-शक्ति दी है। इसी इच्छा के वशीभूत होकर हम अनेक कर्म किया करते हैं।

देवी—जब अच्छा कर्म करने से अच्छा फल मिलता है तब मनुष्य बुरे कर्मों में क्यों फँसे रहते हैं ?

कुमारी—ऐसे मनुष्य विचार से काम नहीं लेते। किसी काम के करने का मन हुआ और उसे कर डाला। उसके सारे मिलने वाले अच्छे या बुरे परिणाम को नहीं सोचते। कभी-कभी उनके विचार भी उन्हें धोखा दे जाते हैं। जैसे किसी की इच्छा परायी चीज़ को अपना लेने की हुई। यद्यपि यह ख़राब बात है, पर वह सोचता है, बिना परिश्रम किए ही मुझे बड़ा भारी लाभ होगा। इसी तरह कोई दान या परोपकार की इच्छा होने पर सोचता है, क्यों व्यर्थ अपना धन लुटाऊँ ? क्यों अपने को दूसरे के कष्ट में डालूँ ?

देवी—तुम बड़ी चतुर हो बहिन ! अच्छा, एक बात बताओ। तुम कर्म-भोग की बात करती थीं। ईश्वरप्रसाद कर्म-भोग भोगने के लिए जेल में चले गए हैं। शायद चन्दा

के सौभाग्य से उनके कर्म-भोग का अब अन्त हो गया हो। ऐसी दशा में उद्योग करने से क्या छूट नहीं सकते?

कुमारी—अवश्य छूट सकते हैं। उनके छूट जाने की पूरी आशा है।

देवी—परमात्मा करे वह बहुत जल्दी छूट जायँ। एक तो वही मुफ़्त में कष्ट पा रहे हैं, दूसरे उनके पीछे उनकी स्त्री मरी जा रही है। तुम्हारी उन्होंने बड़ी भलाई की है। तुमने उनके बचाने का कोई उपाय किया है?

कुमारी—अभी तक कुछ नहीं किया। जो करते बनेगा, करूँगी ही। अपनी तरफ़ से कुछ उठा नहीं रक्खूँगी।

देवी—अभी ज़मानत पर क्यों नहीं छुड़ा लातीं? पीछे जो होगा, होता रहेगा।

कुमारी—हाँ, तुम्हारी यह सलाह बहुत अच्छी है।

देवी—मेरी सलाह पसन्द आ गई हो, तो इसी समय तुम चली जाओ। देखो, क्या होता है? ऐसे काम में देर क्यों की जाय?

कुमारी ने देवी के गाल पर हाथ रखकर देखा, बुख़ार कैसा है।

देवी उसके मन की बात समझ गई। मुझे ऐसी अवस्था में छोड़ कर यह जाना उचित नहीं समझती। उसने कहा—तुम जाओ। मेरी चिन्ता मत करो। मैं अच्छी हूँ। यह काम सबसे पहले होना चाहिए।

कुमारी—मैं जल्दी लौटूँगी ।

देवी ने सहसा कहा—किन्तु आज तो इतवार है। कहाँ जाओगी ?

कुमारी—मैं सीधे मैजिस्ट्रेट साहब के बँगले पर जाऊँगी ।

देवी—जाओ। मैं अच्छी खबर पाने की राह देखती रहूँगी ।

कुमारी बड़ी उमङ्ग में थी। अकेले ही मैजिस्ट्रेट के बँगले पर जा पहुँची। सामने के दरवाज़े पर दो चपरासी मुँह बाए बैठे थे। उन्हें खिला कर वह भीतर चली गई।

मैजिस्ट्रेट ने बड़ी सभ्यता से पूछा—तुम यहाँ किस लिए आई हो ? मैं तुम्हारी कौन सी भलाई कर सकता हूँ ?

कुमारी—बाबू ईश्वरप्रसाद जी एक आदमी को मार डालने के अपराध में जेल में डाल दिए गए हैं। मैं उनको जमानत पर छुड़ाना चाहती हूँ ।

मैजिस्ट्रेट—शायद तुमको नहीं मालूम होगा, हत्यारे को जमानत पर छोड़ने का क़ायदा नहीं है। मैं बड़ा दुखित हूँ, तुम्हें सन्तुष्ट नहीं कर सकता।

कुमारी ने आवेश में आकर कहा—वह हत्यारे नहीं हैं। कौन उनको हत्यारा कहता है ?

कुमारी एक प्रकार धमकी दे गई। किन्तु उसी समय

वह अपनी धमकी से आप ही डर गई। तुरन्त उसके ध्यान में आया, यह स्थान अत्यन्त नम्रता से काम लेने का है।

मैजिस्ट्रेट ने कहा—उस पर हत्या का दोष लगाया गया है। दोष-मुक्त हो जाने पर उसे कोई जेल में नहीं रख सकेगा। मैं आशा करता हूँ, वह निर्दोष साबित होगा।

कुमारी—उनको जमानत पर छुड़ाने के लिए मैं चाहे जितना रुपया दे सकती हूँ।

मैजिस्ट्रेट—फिर मुझे खेद के साथ कहना पड़ता है कि उसकी जमानत नहीं हो सकती।

कुमारी हताश हो गई। नीचा मुँह किए धीरे-धीरे बाहर निकल आई।

इधर कुमारी के जाते ही साहब का मन विचलित हो गया। दो-चार बार कमरे का चक्कर लगा कर जोर से पुकारा चपरासी! ओ यू चपरासी!

एक ने बाहर से कहा—हाँ, हुजूर!

मैजिस्ट्रेट—इधर आओ।

चपरासी तुरन्त भीतर पहुँचा। सलाम करके बोला—क्या हुक्म है?

मैजिस्ट्रेट—वह औरत, जो अभी यहाँ आई थी, कहाँ पर है?

चपरासी—अभी गई नहीं, यहीं है।

मैजिस्ट्रेट—बुलाओ।

कुमारी बहुत दूर नहीं जाने पाई थी कि चपरासी ने उसे बुलाया। उसने सोचा, शायद कुछ सोच कर उन्हें मुझ पर दया आ गई हो। हाकिम हैं, सब कुछ कर सकते हैं। वह फिर मैजिस्ट्रेट के सामने गई।

मैजिस्ट्रेट ने टहलते हुए कहा—तुम आ गईं। मैं बड़ा प्रसन्न हूँ। तुम्हारे प्रति मेरे हृदय में बड़ी सहानुभूति है। किन्तु तुम देखती हो कि उसने एक आदमी की हत्या कर डाली है। भारी अपराध किया है। क़ानून के अनुसार उसकी सज़ा बड़ी भयानक होगी। क़ानून मेरे वश में है। मैं चाहूँ तो उसको छोड़ भी सकता हूँ।

कुमारी मैजिस्ट्रेट की भूमिका न समझ सकी। उसने सोचा, अहा! अङ्गरेज़ लोग दया के अवतार होते हैं!

मैजिस्ट्रेट ने कहा—मेरी प्यारी! तुम्हारी ख़ातिर मैं उसे छोड़ दूँगा। साफ़ छोड़ दूँगा। मैं ऐसा करूँगा, क्योंकि मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। अपने हृदय की गहराई से प्यार करता हूँ, प्यारी!

साहब कुमारी के गले में हाथ डालने के लिए उसकी ओर बढ़ा। कुमारी ने उसकी दया का यह स्वरूप देखा, तो थोड़ी देर के लिए किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गई। फिर क्षण भर में उसने पैर से स्लीपर उतार कर पटापट पाँच-छः उसके मुँह पर मार दिए। जब तक साहब सँभले, तब तक वह झपट कर ताँगे पर बैठ हवा हो गई।

देवी के पास आकर कुमारी ने अपनी बीती कह सुनाई। सुन कर देवी चिन्तित हो गई। देर तक कुछ नहीं बोली। तब कहा—यह बुरा हुआ। उन्हें छुड़ाने में अब शायद अधिक कष्ट उठाना पड़े।

कुमारी का मुँह अभी तक लाल था। क्रोध से बोली—मैंने उनके छुड़ाने का ठेका तो लिया नहीं है! उनके लिए मैं अपना स्त्रीपन नहीं खो सकती।

देवी ने प्रेम से कुमारी का हाथ पकड़ कर कहा—बहिन, स्त्रियों का इस प्रकार भटकना ठीक नहीं है! आगरे में मेरे भाई सुन्दरलाल रहते हैं। मैं उनको बुलाए लेती हूँ। वे आकर सब काम करते रहेंगे।

उसी समय देवी ने जीवन को बुलाया। उसके द्वारा सुन्दरलाल के पास तार भिजवा दिया—"मैं बड़ी आपत्ति में हूँ, तुरन्त आओ।"
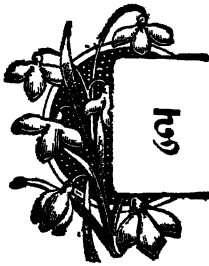
दुःख आने के पहले मनुष्य का हृदय विचलित हो जाता है; पर जब दुःख सिर पर आ पड़ता है, तब वह शान्त पड़ जाता है। ईश्वरप्रसाद भी दृढ़ता से भाग्य की परीक्षा देने के लिए तैयार हो गया। जब अदृष्ट अपने हाथ में नहीं है, तब क्या किया जाय। उसका कठोर हाथ जब सिर पर पड़ ही चुका है, तब चिन्ता करने से क्या लाभ? ईश्वरप्रसाद का मुँह सूखा था; पर उस पर भय या दुःख की छाप न थी। वह खिड़की पर झुका हुआ बाहर की तरफ़ देख रहा था। एक चील अपने बड़े-बड़े डैने फैलाए उड़ी चली जा रही थी। सब ओर का मार्ग उसके लिए साफ़ था। कहीं कोई रुकावट न थी। जिधर मन चाहता, उधर ही घूम जाती

थी। मनुष्य परमात्मा की सृष्टि का सर्व-श्रेष्ठ प्राणी है; तो भी कैसे आश्चर्य की बात है, वह एक पक्षी की तरह भी स्वतन्त्रता का उपभोग नहीं कर सकता। एक न एक चिन्ता का निवास सदैव उसके मन में बना ही रहता है। दूसरे ही क्षण उसकी दृष्टि उस बड़े जन्तु के भयानक पञ्जे में छटपटाते हुए एक छोटे लवा पक्षी पर पड़ी। मैं भी इसी प्रकार निर्दयी भाग्य के पञ्जे में जकड़ा हुआ हूँ। ज़िन्दगी का कुछ ठिकाना नहीं। पलक मारते कुछ से कुछ हो जाता है। अभी कोई आनन्द में भरा हँसता है। हँसते ही हँसते न जाने क्या हो जाता है। उसकी दशा बदल जाती है। वह अपने को दुःखी समझने लगता है। सच ही जो हमारे पूर्वज अपने आत्म-ज्ञान से बतला गए हैं कि संसार असार है, वह बिलकुल ठीक है। उसमें असत्य का लेश नहीं। अपने जीवन में मनुष्य अनेकों झञ्झट में पड़ा रहता है। लड़ता है, झगड़ता है, तुच्छ वस्तुओं को अपनाने के लिए परिश्रम और कष्ट उठाता है। यह सब किस काम का? एक दिन जान निकल जायगी और सब रक्खा रह जायगा। फिर क्यों मनुष्य व्यर्थ ही इन बखेड़ों में फँसा रहता है? यह परमात्मा की माया है। उसने सबको ऐसे बन्धन में बाँध दिया है कि कोई उससे निकल नहीं सकता। सबको सांसारिक चिन्ताएँ करनी पड़ती हैं। यदि ऐसा न हो तो उसका कार्य-क्रम ही नष्ट हो जाय। वाह रे दैव! तू बड़ा विचित्र है। तेरी विचित्रता

किसी की समझ में नहीं आ सकती। इतने बहुत से जीव पृथ्वी पर आते हैं और अपनी-अपनी कल्पनाएँ करके चले जाते हैं। तेरा रहस्य-भेद करने में कोई समर्थ नहीं होता।

पास के कमरे में कल एक नया क़ैदी आया था। उसने ईश्वरप्रसाद से कहा—बाबू जी! क्या सोच रहे हैं?

एक बड़े कमरे के बीच में कई मोटे लोहे की छड़ें लगाकर उसके दो भाग कर दिए गए थे। ईश्वरप्रसाद ने अपने नए साथी की ओर मुँह फेर कर कहा—भाई, यहाँ सोचने के सिवा दूसरा काम है ही क्या?

वह—बातें भी तो की जा सकती हैं।

ईश्वर—ऐसे समय में, जब एक-एक पल में मौत पास आती जा रही हो, किसी का मन बातचीत करने में नहीं लग सकता।

वह—आपने एक आदमी को मार डाला है?

ईश्वर—यह परमेश्वर ही कह सकता है। उनसे सच्ची बात छिपी नहीं है। तुम्हारा यहाँ किस कारण से आना हुआ?

वह—आप मुझे बड़ी जल्दी भूल गए हैं।

ईश्वर—माफ़ करो, भाई! मुझे सचमुच याद नहीं आता कि मैंने तुम्हें पहले भी कभी देखा है।

वह हँस कर बोला—उस दिन शाम को केदार को मैंने ही मारा था। मेरा नाम मोटू है।

ईश्वर—हाँ, भाई मोटू, अब याद आया। शायद तुम उसको मारने ही के अपराध में पकड़े गए हो। मेरे कारण तुमने क्यों इतनी तकलीफ़ सही ?

जोखिम—मार-पीट में मुझको बड़ा आनन्द आता है। मैं इसमें कोई तकलीफ़ नहीं देखता। कोई तकलीफ़ नहीं हुई। मैं यहाँ अपने मन से आया हूँ। कोई मुझे पकड़ कर नहीं लाया।

ईश्वरप्रसाद को उसके यहाँ स्वयं आने की बात पर विश्वास नहीं हुआ। उसने थोड़ा सा हँस दिया।

जोखिमसिंह ने कहा—आपको मुझ पर विश्वास नहीं आता। मैं सच ही यहाँ अपने मन से आया हूँ। मैंने ख़ुद आकर यहाँ कह दिया है कि मैंने केदार को मारा है।

ईश्वरप्रसाद चुप रहा। झुककर पैर खुजलाने लगा।

जोखिमसिंह बोला—आप मानिक को जानते हैं ?

ईश्वर—तुम उसके साथ मेरे घर पर आए थे। उसी के कहने से तुमने केदार को मारा था।

जोखिम—हाँ; और उन्हीं के कहने से मैं यहाँ भी आया हूँ। उनके कहने से मैं कोई सा भी काम तुरन्त कर सकता हूँ।

ईश्वर—यहाँ तुम क्यों आए हो ?

जोखिम—आपको ढाढ़स देने के लिए, जिसमें आप अपनी ज़िन्दगी से निराश न हो जायँ।

ईश्वर—ज़िन्दगी की आशा ही क्या है ?

जोखिम—आप ऐसा न कहें। जैसे होगा, वे आपको छुड़ाएँगी।

ईश्वरप्रसाद के होंठों पर अविश्वास की हँसी दौड़ गई। उसने कहा—इस तरह का स्वप्न देखना अच्छा नहीं।

जोखिम—आप उन्हें अच्छी तरह नहीं जानते, इसी से ऐसा कह रहे हैं। आपके छूट जाने में कोई सन्देह नहीं है। उनमें बड़ी भारी शक्ति है।

ईश्वर—कैसी शक्ति है ?

जोखिम—ऐसी शक्ति है, जैसी एक रानी में होनी चाहिए।

ईश्वरप्रसाद खिड़की के बाहर देखने लगा।

जोखिमसिंह ने उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हुए कहा—बाबू जी, एक तो वे वैसे ही दयावान् हैं; किसी भले आदमी का दुःख नहीं देख सकतीं, दूसरे जान पड़ता है, आपसे उनका कोई निकट का सम्बन्ध है, तभी वे आपके लिए इतनी कोशिश कर रही हैं।

ईश्वरप्रसाद ने कोई उत्तर न दिया।

जोखिमसिंह बोला—मैं समझता हूँ, कि आपसे उनका भेद कह देने में कोई हर्ज न होगा।

ईश्वर—मैं किसी से उसके विषय में कभी ऐसी कोई चर्चा नहीं करूँगा, जिससे उसका कुछ नुक़सान हो।

जोखिम—तो सुनिए, आजकल जिन स्वामिनी जी के नाम से बड़े-बड़े अधिकारी काँपा करते हैं, वे वही स्वामिनी जी हैं।

ईश्वरप्रसाद स्तम्भित रह गया।

जोखिम—उनके अधिकार में बहुत से आदमी हैं। मैं उन सबका सरदार हूँ। सब स्वामिनी जी को बहुत मानते हैं। उनकी इच्छा पूरी करने के लिए हर समय जान हथेली पर लिए रहते हैं।

ईश्वरप्रसाद जोखिमसिंह को टकटकी लगाकर देखने लगा। मानिक ने उस समय इसे सरदार ही के नाम से तो पुकारा था।

जोखिम—आप बिलकुल निश्चिन्त रहें। उन्होंने मुझे आपको पक्का विश्वास दिलाने के लिए भेजा है कि आपका कुछ नहीं होने पावेगा। आप बेदाग़ छूट जावेंगे।

ईश्वर—यह कैसे होगा?

जोखिम—वे आप सब कर लेंगी। आप बेखटके रहिए।

ईश्वरप्रसाद मानिक के विषय में सोचने लगा।

जोखिम—अब भी आपके मन में यदि कोई शङ्का रह गई हो, तो खुलासा कह डालिए। मैं उसे दूर कर दूँगा। इस समय मेरे हाथ में यही काम सौंपा गया है।

ईश्वर—और क्या कहना चाहते हो, कहो। मेरे छुड़ाने के लिए कौन-सा उपाय किया गया है?

जोखिम—बाहर जो उपाय हो रहा होगा, वह उन्हीं को मालूम होगा। यहाँ का उपाय मैं बता सकता हूँ।

ईश्वर—यहाँ कौन-सा उपाय है?

जोखिमसिंह हाथ के नाखूनों से एक स्थान की मिट्टी अलग करने लगा। थोड़ी देर में उसने ईश्वरप्रसाद को एक छोटी रेती और एक पिस्तौल दिखाई। कहा—भगवान् न करे, अगर कोई गड़बड़ी पड़ी, तो मैं इनसे काम लूँगा। इस रेती से खिड़की का जँगला काटकर, जब चाहूँ, बाहर निकल जा सकता हूँ। आपको भी निकाल सकता हूँ। यह पिस्तौल बाधा डालने वाले के लिए है। आपकी जान बचाने के लिए बहुतों की जान ले डालूँगा।

ईश्वरप्रसाद ने देखा, जोखिमसिंह की आँखें उत्साह से चमक रही हैं। कुछ देर विचार कर उसने कहा—मैं फाँसी पर चढ़ जाना अच्छा समझता हूँ; पर इस तरह नहीं भागूँगा।

ज़ोखिमसिंह ने रेती और पिस्तौल उसी स्थान पर छिपाकर कहा—ऐसा मौक़ा नहीं आवेगा। आप सबके सामने निर्दोष होकर छूटेंगे।

इसी समय बाहर कुछ आहट मिली। दोनों सँभल गए। ईश्वरप्रसाद के कमरे का दरवाज़ा खुला। मानिक और चन्दा दिखाई दीं।

बालक सुकुमार ग्यारह वर्ष की अवस्था का हो चुका था। वह एक ग़लीचे पर बैठकर अपनी पुस्तक पर झुका हुआ उसे पढ़ रहा था। सुबाला उसके पास बिलकुल सटकर बैठी थी। उसका मुँह बालक के मुँह से मिल गया था। सुकुमार ज़ोर-ज़ोर से पुस्तक पढ़ रहा था। सुबाला उसके अक्षरों पर दृष्टि दौड़ा रही थी। कुछ देर तक पढ़ चुकने के पश्चात् सुकुमार का मन उस पुस्तक से उचट गया। उसने सुबाला की ओर देख कर कहा—तुम अपनी गाने की किताब निकालो।

सुबाला ने गाने की किताब दी। दोनों मिलकर एक गाना गाने लगे। थोड़ी देर तक तो गाना अच्छा रहा; फिर सुबाला ज़ोर से चिल्ला उठी और चिल्लाने के उपरान्त हँसने लगी।

सुकुमार ने कुछ क्रोध से कहा—यह क्या करती हो ?

सुबाला—आओ, अब गुड़िया खेलें।

सुकुमार—मैंने अपने गुड्डे को नहला दिया था। वह न जाने कैसा हो गया। मुझे बुरा लगा, अतः फेंक दिया।

सुबाला ने हँस कर कहा—धत् तेरे की। कहीं गुड्डा नहाता भी है ?

सुकुमार—मुझे क्या मालूम नहाता है कि नहीं। माँ ने मुझे नहाने के लिए बुलाया। मेरे हाथ में वह गुड्डा था। नहा चुकने पर मैंने देखा, वह कुछ भीग गया है। तब अच्छी तरह स्नान कराने के लिए मैंने उसे बाल्टी में डुबो दिया। तब तो वह बिलकुल ही खराब हो गया।

सुबाला और जोर से हँसने लगी।

सुकुमार—हँसी क्यों आती है ?

सुबाला—तुमको इतना भी नहीं मालूम कि कपड़े के गुड्डे को न नहलाना चाहिए ?

सुकुमार—और अपनी नहीं कहतीं। उस दिन दो बजे रात को बिछौने पर से उठ कर भागी थीं।

सुबाला—वह तो नींद में था।

सुकुमार ने मुँह चिढ़ाकर कहा—नींद में था !

सुबाला—हाँ-हाँ, नींद में तो था ही। और नहीं क्या था ?

सुकुमार—रहा होगा। मुझसे क्या मतलब ?

सुकुमार मुँह फेरकर अपनी पुस्तक के पन्ने गिनने लगा। सुबाला ने देखा, सुकुमार बिगड़ गया है। उसने उसके गले में बाँह डाल अपनी नाक उसकी नाक से लगाकर कहा—गुस्सा हो गए क्या ?

सुकुमार के हाथ से पुस्तक छूट पड़ी। वह हँसने लगा। सुबाला ने कहा—मैं तुम्हें गुड्डा दूँगी। आओ खेलें।

सुकुमार गुड्डा लेकर खेलने बैठा। सुबाला के पास गुड़िया थी। पहले गुड्डा और गुड़िया दोनों छोटे बच्चे थे। उनको पालने में खेलाया। कुछ बड़े हुए। उनके नाक-कान छेदे गए। झूठ-मूठ का दाल-भात खिलाया गया। और बड़े हुए। अब ब्याह होना चाहिए। तय हुआ कि सुकुमार के गुड्डे के साथ सुबाला की गुड़िया का ब्याह हो। इतने में सुबाला ने अपनी गुड़िया की टाँग पकड़ कर धरती पर दे मारा।

सुकुमार ने पूछा—यह क्या ?

सुबाला ने उत्तर दिया—मेरी गुड़िया मर गई।

सुकुमार—मर गई ?

सुबाला—हाँ, मर गई। तुम्हीं देख लो न, हाथ-पैर कहाँ हिलते हैं ?

सुकुमार—अभी नहीं मरी। ब्याह हो लेने दो तब मार डालना।

सुबाला—बस, अब तो मर गई। ब्याह नहीं हो सकता

सुकुमार ने अपना गुड्डा भी पटक दिया। कहा—तो लो, मेरा गुड्डा भी मर गया।

सुबाला—अच्छा मर जाने दो। चलो, अब हम तुम अपना ब्याह करें।

सुकुमार—हमारा और तुम्हारा ब्याह कैसे होगा?

सुबाला—जैसे सबका होता है उसी तरह। आओ, बग़ीचे में चलें।

सुकुमार—चलो।

सुबाला कूदती-फाँदती आगे-आगे चली। सुकुमार भी उसी प्रकार दौड़ता हुआ उसके पीछे चला। वह उछलती हुई युगल मूर्त्ति बड़ी मनोहर जान पड़ती थी। सारा उद्यान उनके मुखमण्डल के निकले हुए दीप्त-प्रकाश से जाज्वल्यमान हो गया। पत्तियों की खड़खड़ाहट के साथ उनकी आह्लाद-पूर्ण ध्वनि मिल जाने से एक विचित्र प्रकार की रागिनी उत्पन्न हो गई। दोनों एक मौलसरी के वृक्ष के नीचे खड़े हुए। सुबाला की धोती के छोर के साथ सुकुमार का कुरता बँधा। फिर दोनों उसी वृक्ष के चारों ओर घूमने लगे। वर आगे था। कन्या पीछे थी।

शुभ अवसर जान कर आँधी तेज़ी के साथ बारातियों को लेकर आ पहुँची। मौलसरी के वृक्ष ने प्रसन्नता से अपने समस्त अङ्गों को हिलाकर बाल-दम्पति का आदर करने के लिए बहुत से फल गिरा दिए। मेघ यह दर्शनीय दृश्य देखने

के निमित्त जल्दी-जल्दी पास सिमटने लगे। सौदामिनी इस अपूर्व जोड़ी की शोभा निरीक्षणार्थ बार-बार गगन-गवाक्ष से अपना मुँह बाहर निकालने लगी। देवेन्द्र जल-पुष्प की वर्षा करने लगे। बादल गरज-गरज कर ढोल बजाने लगे। एक बार आनन्द से विह्वल हो सब पक्षी चहचहा उठे, मानों एक स्वर से उन्होंने मङ्गल-गीत गाया। बहुत से अच्छे-अच्छे शकुन अपने सफल हो जाने की आशा से आकर इकट्ठे होने लगे। बड़ी शुभ मुहूर्त में सुकुमार और सुबाला का ब्याह होने लगा।

इसी समय सुकुमार की माँ ने पुकार कर कहा—आँधी-पानी में तुम लोगों का यह कौन सा खेल हो रहा है?

सुकुमार ब्याह अधूरा छोड़कर माँ के पास भागा। जल्दी के कारण सुबाला की धोती का थोड़ासा भाग फटकर उसके कुरते में आ गया। सुबाला भी भीतर चली आई। सुकुमार अपनी माँ की गोद में चला गया। सुबाला ललचाई आँखों से उसकी ओर देख रही थी कि सुन्दरलाल ने आकर उसे उठा लिया। सुबाला का मुँह चूम कर सुन्दरलाल ने अपनी स्त्री की ओर मुस्करा कर देखा। सुन्दरलाल की स्त्री अथवा सुकुमार की माँ का नाम चतुरा था।

चतुरा बोली—तो कब जाने का विचार है?

सुन्दर—आज ही रात की गाड़ी से जाऊँगा। देखना है, उन पर कौनसी आपत्ति आ गई है।

सुबाला ने पूछा—कहाँ जाओगे ?

सुन्दर—जहाँ तुम्हारे पिता रहते हैं।

सुबाला—मैं भी चलूँगी।

सुन्दर—चलना।

सुकुमार ने कहा—मैं भी चलूँगा।

चतुरा—तू कहाँ जायगा ?

सुकुमार—क्यों, जहाँ सुबाला जायगी।

चतुरा—नहीं जाना है।

सुकुमार गोद में मचल पड़ा। रोने लगा। कहा—मैं जाऊँगा।

चतुरा—तेरा वहाँ पर क्या रक्खा है ? सुबाला का तो घर है।

सुकुमार—मैं सुबाला के घर जाऊँगा ; नहीं वह भी न जाय।

चतुरा—वाह रे लड़के !

सुकुमार मचलने लगा।

चतुरा ने सुन्दरलाल से कहा—देखो तो, कैसा लड़का है ! जाने कैसे आफ़त का समय है ? इसको कहाँ-कहाँ टाँगे फिरोगे ?

सुन्दरलाल ने सुबाला से कहा—बेटी, अभी तुम भी यहीं रह जाओ। सुकुमार के साथ खेलना। दूसरी बार तुम दोनों को ले चलूँगा।

सुबाला ने कहा—अच्छा, मैं यहाँ रहूँगी। मुझे तो यहाँ बहुत अच्छा लगता है। बस, माँ को देखने-भर का मन करता है।

बाईसवाँ परिच्छेद
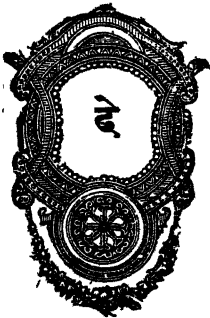
देवी के द्वार पर रुक कर एक योगिनी सितार बजा कर गाने लगी—

प्रभु हर लेगा कष्ट हमारा।
विश्वनाथ, विश्वम्भर, अतुलित,
शान्ति-सौख्य-आगारा।
प्रभु हर लेगा कष्ट हमारा,
प्रभु हर लेगा कष्ट हमारा।

स्वर बड़ा मधुर और चित्ताकर्षक था, उसमें से करुणा टपकी पड़ती थी। देवी ध्यान देकर सुनने लगी। योगिनी गा रही थी—

शान्ति-सौख्य-आगारा, प्रभु हर लेगा कष्ट हमारा।

देवी मोहित हो गई। एक-एक शब्द उसके मन में गूँजने लगा। जीवन के द्वारा उसने योगिनी को भीतर बुलवाया। वह सितार के तार के साथ देवी की हृदय-तन्त्री झनकारती हुई पहुँची।

विश्वनाथ, विश्वम्भर, अतुलित, शान्ति-सौख्य-आगारा।
प्रभु हर लेगा कष्ट हमारा, प्रभु हर लेगा कष्ट हमारा।
दीन-दुखी का स्वामी, तापै आश्रित सब संसारा।
तापै आश्रित सब संसारा, प्रभु हर लेगा कष्ट हमारा।
प्रभु हर लेगा कष्ट हमारा, प्रभु हर लेगा कष्ट हमारा।

योगिनी नवयुवती थी। देह फूल के समान कोमल था और गालों पर लाली थी। सुन्दर मुख पर साफ़ और चमकीली हरिणी की तरह बड़ी-बड़ी आँखें थीं। खूब लम्बे बाल पीठ पर छितराए हुए थे। रँगे हुए वस्त्र से उसकी शोभा और बढ़ गई थी। देवी उस नए फूले हुए पुष्प को ऐसे वेश में देख कर बड़ी विस्मित हुई। उसने उससे सादर पलँग पर बैठने का अनुरोध किया। योगिनी ज़मीन पर बैठ कर नम्रता से बोली—तपस्विनी के लिए ईश्वर की बनाई यह धरती ही अच्छी है। मुझे आडम्बर नहीं शोभा देता।

योगिनी की सरलता से भरी छोटी सी बात ने देवी के हृदय पर बड़ा प्रभाव डाला। जब सुकुमारी पलँग पर बैठना नहीं स्वीकार करती, तब मैं ही कौन ऐसी भाग्यशालिनी हूँ, जो मुझे यह आडम्बर शोभा देगा? उसी समय उसने पलङ्ग उठा कर उसके स्थान पर एक चटाई डाल दी। निश्चय किया, अब इसी पर सोया करूँगी। किसी तरह का सुख-भोग पास नहीं फटकने दूँगी। दिन में एक बार

थोड़ा सा आहार करूँगी। जङ्गल और वन में घूमने का साधन नहीं है, तो घर ही में रह कर तपस्या करूँगी।

योगिनी ने अपने योग के बल से अथवा जैसे हो, देवी के मन की बात समझ ली। उसने कहा—यह क्या देवी ?

देवी चौंकी। बोली—तुम्हें मेरा नाम कैसे मालूम हो गया ?

योगिनी ने हँस कर कहा—क्या तुम्हारा नाम देवी ही है ?

देवी—हाँ, मेरा यही नाम है। तुम कैसे जान गईं ?

योगिनी—यह नाम तो मेरे मुँह से योंही निकल आया है, पर हाँ, मैं थोड़ा-बहुत भूत, भविष्यत् और वर्तमान का भी ज्ञान रखती हूँ।

देवी—यदि कह सकती हो, तो मेरे विषय में कुछ कहो।

योगिनी—तुम्हारे माथे पर सौभाग्य चमक रहा है। तुमने जो चटाई पर सोने का सङ्कल्प किया है, वह ठीक नहीं। इस प्रकार के कष्ट मेरे समान तपस्विनी सहा करती हैं। तुम सौभाग्यवती हो। सुख से रहो। तुम्हारी इस इच्छा से मेरा मन व्याकुल हो रहा है। पहले अपना पलङ्ग जैसा का वैसा बिछा लो। फिर जो तुम पूछोगी, मैं बताऊँगी।

देवी झिझकी। एक क्षण के लिए उसकी देह में विद्युत् का प्रवाह फैल गया। निराशापूर्ण मरुस्थल में मृग-जल का आभास मिला। उसने वह सुख-कल्पना की, जिसको वह

भली प्रकार जानती थी कि यह मिथ्या है। फिर वह शिथिल पड़ गई।

योगिनी सूक्ष्म दृष्टि से देवी की ओर देख कर उठी। उसने स्वयं उसका पलँग पहले-जैसा बिछा दिया। देवी में इतनी शक्ति नहीं थी कि वह उसको मना कर सकती। उसे मालूम था कि योगिनी ने एक अनहोनी बात कह दी है। तो भी उसकी श्रद्धा उस पर से नहीं घटी। उसके मुख का तेज बढ़ गया।

योगिनी ने देवी का माथा देखा। उसका हाथ अपने हाथ में लेकर देर तक विचारती रही। फिर वह बोली—मनुष्य संसार में आकर दुःख से नहीं बच सकता। थोड़ा-बहुत दुःख पाता ही है। पर तुम्हारे भाग्य में सुख बहुत है।

देवी अपने मन की स्थिति को आप ही जानती थी।

योगिनी ने कहा—पहले भी तुम बहुत सुख भोग चुकी हो। माता-पिता के द्वारा बड़े यत्न और प्यार से पाली गई हो। तुम्हारा पति तुम्हें बहुत चाहता है। तुम्हारे सौभाग्य की रेखा दूर तक चली गई है और ध्रुव की नाईं अटल है। अभी कुछ दिनों से तुम पर विपत्ति आई हुई है। यह थोड़े दिन टिकेगी। फिर वही सुख सामने आवेगा।

देवी स्थिर न रह सकी। उसने पूछा—इस समय मेरे स्वामी कहाँ हैं?

योगिनी मुस्कराई। कहा—क्यों? यह प्रश्न तुम क्यों

कर रही हो ? तुम्हारे स्वामी तुम्हारे पास ही हैं, दूर नहीं हैं।

देवी ने दुःख से कहा—क्यों मुझे भुलावा दे रही हो ? मैं विधवा हूँ।

योगिनी—यह अशुभ विचार तुम्हारे मन में कहाँ से आया ? इसे निकाल दो।

देवी—क्या वे सच ही जीवित हैं ?

योगिनी—हाँ, वे जीवित हैं। कारणवश कुछ काल के लिए तुमसे उनका विछोह हो गया है। अब जल्दी आकर मिलेंगे।

देवी का सिर दीवार से टिक गया। बड़ी-बड़ी पलकों में पुतलियाँ छिप गईं। मुख चिन्ता से गम्भीर हो गया।

योगिनी बोली—मेरी बातों ने तुम्हारे मन में हलचल पैदा कर दी है, पर मैंने जो कहा है, बिलकुल सच है।

देवी रोने लगी। विश्वास और अविश्वास का उसके हृदय में जो विपुल आन्दोलन हुआ, उसके वेग को वह सँभाल न सकी।

योगिनी ने अपने दोनों हाथ देवी के कन्धों पर रख दिए। कहा—अधीर मत हो, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ने मुझे थोड़ी सी शक्ति दी है। उस शक्ति के सहारे मैं तुम्हारे पति का दर्शन तुमको करा सकती हूँ।

देवी ने मन के आवेग को बहुत-कुछ सँभाल कर कहा—

यदि तुम ऐसा कर सको, तो मैं जन्मभर तुम्हारी चेरी बन कर रहूँगी।

योगिनी—तुम इसी कमरे में सोती हो?

देवी—हाँ।

योगिनी—आज रात को दरवाज़े में भीतर से ताला लगा कर सोना। तुम उन्हें देख सकोगी।

योगिनी सितार उठा कर खड़ी हो गई। देवी की आँखें कृतज्ञता से डबडबा आईं। उसने पूछा—कल फिर आओगी?

योगिनी—हो सकेगा तो आऊँगी।

वह सितार बजाती और गाती हुई चली गई—

प्रभु हर लेगा कष्ट हमारा।

देवी के कानों में बार-बार सुनाई देने लगा—

प्रभु हर लेगा कष्ट हमारा।

टकटकी लगाकर देवी उस शुभ घड़ी की बाट देखने लगी। रात होते ही उसने कमरे में भीतर से दरवाजा बन्द कर ताला जड़ दिया। आज रातभर जागने का विचार किया। लैम्प की बत्ती तेज़ करके पलँग की पाटी के सहारे ज़मीन पर बैठ गई। बड़ी देर तक बैठी रही। आँखें झपकने लगतीं, तो वह उन्हें पानी से धो डालती; गाल पर तमाचा मारती; हाथ में ज़ोर से चिमटी काट लेती। समय धीरे-धीरे बीतता गया। रात बढ़ती गई। वह नहीं सोई। वह अमूल्य अवसर वृथा कैसे जाने दे सकती थी? स्वप्न में

नहीं, वह प्रत्यक्ष अपने पति का दर्शन करना चाहती थी। योगिनी की बात का उसे विश्वास था। विश्वास न भी होता, तो वह अपने मन में विश्वास की काली किरणें न देखना चाहती थी। सुख की कल्पना ही बड़ी मधुर होती है। उसकी आशा कैसे परित्याग की जा सकती है?

अकस्मात् किसी चीज़ के गिरने का शब्द हुआ। देवी ने दृष्टि फेरी। खिड़की के बाहर हलका-सा धुआँ फैल रहा था। क्रमशः वह बढ़ने लगा। घना होकर गोल चक्कर-सा मँडराता हुआ। खिड़की के सामने छा गया। देवी आँखें फाड़कर देखने लगी। उसमें एक मूर्ति प्रकट होती दिखाई दी। कुछ देर में वह स्पष्ट हो गई। अहा! यह वही हैं। देवी को विश्वास था कि वह सोई नहीं है और न यह स्वप्न ही है। उसका हृदय आनन्द से नाच उठा। ओङ्कार का मुख निर्मल ज्योति से प्रकाशमान् हो रहा था। शरीर से स्वच्छ किरणें प्रस्फुटित हो रही थीं। कपड़ों में सुनहरे तारे चमक रहे थे। देवी ने अपने पति को इतना सुन्दर कभी न देखा था। मन के तीव्र आवेग से वह उठ खड़ी हुई। उसके मुँह से निकला—प्राणाधार! तुम कहाँ? क्या यह तुम्हारी छाया देख रही हूँ?

ओङ्कार की आँखें चमकीं। मुख पर मुस्कराहट आई। पर कोई उत्तर न मिला।

देवी ओङ्कार की ओर दौड़ी। फिर कोई शब्द हुआ। धुआँ अधिक घना हो गया। वह मूर्ति अदृश्य हो गई।

इकतालीसवाँ परिच्छेद

सुन्दरलाल टिकट लेकर गाड़ी पर बैठा। टूँडला में गाड़ी बदली। दूसरी गाड़ी पर बैठा। उस डिब्बे में बहुत थोड़े यात्री थे। काफ़ी जगह थी। पैर फैलाकर लेट रहा। लेटते ही नींद आ गई। एञ्जिन भक्-भक् धुआँ निकालता अपने साथ कई डिब्बों को लिए भागा चला जा रहा था। कई स्टेशन निकल गए। सुन्दरलाल सोता ही रहा। जब जागा तो उसने अपने सामने एक बाबू को खड़ा पाया। वह कह रहा था—उठिए। आप कहाँ जाना चाहते हैं?

सुन्दरलाल उठा। देखा, गाड़ी खड़ी है। पूछा—यह कौन सा स्टेशन है बाबू?

बाबू—यह तो कानपुर है। आप कहाँ जायँगे? टिकट दिखाइए!

सुन्दरलाल ने कहा—मैं यहीं उतरूँगा।

बाबू—टिकट ?

सुन्दरलाल ने बेञ्च के नीचे देखा, बेग ग़ायब ! उसी में टिकट रक्खा था। आश्चर्य से उसने कहा—हैं ! मेरा बेग कौन ले गया ?

बाबू—कैसा बेग ?

सुन्दर—मेरे साथ में एक छोटासा हैण्डबेग था। नहीं दिखाई देता। कोई ले गया क्या ?

वह बाबू बहुत दिनों का पुराना और ज़रा टेढ़े मिज़ाज का आदमी था। चिढ़ कर कहा—हमसे चाल न चलिए। आप टिकट लेकर गाड़ी पर नहीं बैठे हैं। पूछने पर बेग गुम हो जाने का बहाना बना रहे हैं। आपको चार्ज देना होगा।

सुन्दर—मेरे पास एक पैसा नहीं है। टिकट, रुपया और कपड़े, सब उसी बेग में थे।

बाबू—मैं कुछ नहीं जानता। बिना चार्ज दिए आप स्टेशन के बाहर नहीं जा सकते। मैं आपको पुलिस में दे दूँगा।

सुन्दरलाल को बाबू की इस असभ्यता से क्रोध हो आया। जितना दुख उसे अपने बेग के खो जाने का नहीं हुआ, उतना उसके अनुचित व्यवहार से हुआ। वह दृढ़ता के स्वर में बोला—आपको मैं चार्ज या टिकट, जो आप कहेंगे, दूँगा। साथ ही आपसे अपना बेग ले लूँगा।

बाबू—आप मुझसे बेग लेंगे ? क्या मैंने आपका बेग लिया है ?

सुन्दर—फिर कौन ले सकता है ? डिब्बे भर में इस समय आप ही दीखते हैं। आप ही की शरारत से मेरा बेग ग़ायब हुआ है। उनमें सौ रुपए नक़द और कई क़ीमती कपड़े थे। मैं आपसे एक-एक चीज़ ले लूँगा।

बाबू—आप मुझको चोरी लगाते हैं ?

सुन्दर—और किसको चोरी लगाऊँ ? आपके सिवा यहाँ कोई है भी ?

बाबू—मेरे पास आपका बेग नहीं है।

सुन्दर—कोई किसी की चीज़ चुराकर उसके सामने उसे लेकर नहीं खड़ा रहता। मेरे जागने के पेश्तर ही आपने किसी कुली-ख़लासी के ज़रिए उड़वा दिया होगा।

बाबू ने देखा, जान ख़तरे में पड़ी जा रही है। उसने क्रोधित होकर कहा—मैं अभी आपको देखता हूँ। आप मुझे चोरी लगाते हैं ?

यह कहने के साथ ही वह गाड़ी से नीचे उतर पड़ा।

सुन्दरलाल भी उसके पीछे कूद कर प्लेटफ़ॉर्म पर आ गया। उसका हाथ पकड़ कर कहा—भागिए नहीं। बिना अपना बेग लिए मैं आपको नहीं छोड़ूँगा। बेग न पाने पर मैं आपको पुलिस में दे दूँगा।

उसके बाद बड़ा बाद-विवाद हुआ। बहुत से आदमी

जमा हो गए। स्टेशनमास्टर आया। वह बड़ा अच्छा और सीधा यूरोपियन था। झगड़े का कारण जान कर बड़े चक्कर में पड़ा। सोच-विचार कर अन्त में उसने सुन्दरलाल को समझा कर कहा—बाबू, मैं आपका बेग ढुँढ़वाने का बन्दोबस्त करूँगा। पता लगने पर आपको ख़बर दूँगा। आप जहाँ चाहें, जा सकते हैं। ख़र्च की कमी हो, तो मैं आपको हाल के लिए कुछ रुपए दे सकता हूँ।

सुन्दरलाल बोला—धन्यवाद है! मुझे आपका रुपया नहीं चाहिए। आपकी दया से मुझे रुपयों की कमी नहीं है। बहुत रुपया मिल सकता है।

बहुत देर के समझाने-बुझाने से वह माना। झगड़ालू बाबू की ओर कड़ी निगाह से देखता वह हुआ स्टेशन के बाहर चला गया।

ओङ्कार के मकान के सामने पहुँचकर सुन्दरलाल ठिठक गया। पैर आगे न बढ़े। दिल धड़कने लगा। किसी अज्ञात भय से उसका मन व्याकुल हो गया। क्या यही उनका मकान है? कैसा वीरान हो रहा है। मकान की शोभा बिलकुल मारी गई थी। पहले जहाँ दिन-रात चहल-पहल मची रहती थी, वहाँ अब सुनसान दिखाई पड़ता था, जैसे कोई खाने को दौड़ा चला आता हो।

जीवन एकान्त में बैठा तम्बाकू मल रहा था। सुन्दर-

लाल को देखकर खड़ा हो गया। बोला—आइए भैया जी! चले आइए। खड़े क्यों हैं?

सुन्दरलाल जैसे भेड़िए की माँद में जाता हो; डरता-डरता जीवन के पास आया। पूछा—सब कुशल-मङ्गल तो है? बाबू जी कहाँ हैं?

जीवन उदास-मुँह से बोला—कुशल कहाँ है भैया! बाबू जी नहीं रहे।

सुन्दरलाल सिर पर हाथ रखकर बैठ गया। बड़ी देर के बाद ऊपर देखकर पूछा—उनको क्या हो गया था?

जीवन ने थोड़ा-बहुत हाल जो उसे मालूम था, सुन्दर-लाल से कहा। अन्त में बोला—आप भीतर जाइए। बाई आपकी राह देख रही होंगी।

सुन्दरलाल बड़ी कठिनता से एक-एक पग आगे रखता हुआ भीतर गया। देवी उसे देखते ही ज़ोर से रो पड़ी। सुन्दरलाल के आँसू भी नहीं थमे। देवी को योगिनी के कहने से और रात की घटना से ओङ्कार के जीवित रहने का विश्वास हो गया था, पर वह अधीर हो रही थी। 'अन्धा तभी अघावे, नैना जब अपने पावे।' उस अनोखी घटना को वह किसी से नहीं कहना चाहती थी। कोई विश्वास करता या नहीं? पति से मिलने का भरोसा रहने पर भी उसके मन में कोई शङ्का थी। वह खमीर की तरह भीतर ही भीतर उठ रही थी। वह शङ्का कैसी थी और क्यों उठ

घूम गया। उसके मुँह से निकला—हे परमात्मा! तूने यह क्या किया?

वह एक ओर को झुक गई।

शाम को देवी को बुख़ार चढ़ आया। शरीर आग के समान तपने लगा। सुन्दरलाल घबराया हुआ जाकर डॉक्टर बुला लाया। डॉक्टर ने दशा देखकर कहा—बुख़ार ज़ोर से है; पर कोई चिन्ता नहीं। जल्दी दूर हो जायगा। मन के विकार से यह पैदा हुआ है।

रातभर देवी बेहोश पड़ी रही। सवेरे तक सुन्दरलाल उसके पास बिना पलक मारे बैठा रहा। अचेतना की अवस्था में रह-रह कर देवी को सितार के तार की झनझनाहट के साथ योगिनी की गान-ध्वनि सुनाई पड़ जाती थी—"प्रभु हर लेगा कष्ट हमारा।"

ना की दशा फिर नहीं सुधरी। उसके मन में दुःख की आह समा गई। वह पागल हो गई। भूख लगने पर उसका हाथ मुँह तक चला जाता था सही; पर उसे किसी बात का ज्ञान नहीं रह गया था। लगातार कई दिनों तक वह मौन धारण किए रहती थी। किसी के पुकारने-चिल्लाने पर भी न हिलती थी। जब बोलना शुरू करती थी, तो आपही आप घण्टों बकती रहती थी। किन्तु किसी का कुछ उपद्रव नहीं करती थी। या तो शान्त बैठी अथवा पड़ी रहती और या मन ही मन गुनगुनाया करती थी। एक झबरे कुत्ते के साथ वह बहुधा खेला करती थी। वह कुत्ता उसका बहुत प्रिय साथी हो गया था। उसके आगे के दोनों पैर उठाकर देर तक हाथों में लिए रहती थी। वह जीभ हिलाता हुआ

अपने सुन्दर अभिभावक की ओर समवेदना-भरी दृष्टि से देखता रहता था। मानों वह अपनी मूक-वाणी से कहता था, मैं तुम्हारा परम मित्र हूँ। वह बड़ा समझदार था। सोना जब उसके मुँह में जबरदस्ती अपनी अँगुली डाल देती थी, तब वह बड़ी सावधानी के साथ मुँह फैला कर पीछे हट जाता था। उससे वह बहुत हिल गया था। कभी उसके चारों ओर चक्कर लगाता और कभी दूर से दौड़ता हुआ आकर उसके पैरों से लिपट जाता था। सोना उसके साथ खेल कर बड़ी प्रसन्न होती थी। गाना गाकर उसे बुलाती थी—"आ जा कुत्ते, झुबरे कुत्ते, तुझे बिठा लूँ गोद में; आ जा मेरे प्यारे कुत्ते, तुझे सुला लूँ गोद में।" कुत्ता शीघ्र ही उसकी बोली समझ कर आता और उसकी गोद में मुँह छिपा लेता था। सोना उसकी पीठ पर प्यार से हाथ फेरती थी और उसे सुलाती थी। कहती थी—"सो जा मेरे अच्छे कुत्ते; सो जा मेरे झबरे कुत्ते।"

चन्दा अलग ही आफ़त में पड़ी थी। वह सोना की देख-रेख नहीं कर सकती थी। हाँ, दिन में दो बार उसे भोजन देना उसके ध्यान से न उतरता था। कुमारी अवश्य उसकी खबर लिया करती थी। सोना को अच्छी करने के लिए उसने अनेक प्रयत्न किए, परन्तु सब व्यर्थ गए। दवा की गई, जड़ी-बूटी खिलाई गई, झाड़-फूँक हुई; पर कुछ फल नहीं निकला। सोना एक दिन उसी झबरे कुत्ते से खेल रही

थी। कुमारी ने आकर उससे कहा—क्या कर रही हो बहिन सोना ?

सोना ने उसकी ओर इस तरह देखा, जैसे वह उसकी बात न समझ सकी हो। फिर वह कुत्ते के साथ खेलने लगी। वह हँसती हुई भागने लगी और कुत्ता उसके पीछे दौड़ने लगा। कुमारी उसका हाथ पकड़ कर उसे उसके कमरे में ले गई। उसे बैठा कर आप भी सामने बैठ गई। उसका हाथ अपने हाथ में लिए हुए पूछा—बहिन, मुझे पहचानती हो ?

सोना हँसी। कुछ देर तक चुप रही। फिर बोली—देखती नहीं हो, वह आग जल रही है। उसी में वे मुझे झोंक देंगे। झोंक दें। मुझे इसकी क्या परवा है ! मैं जलने से नहीं डरती। मेरी छाती पर हाथ रख कर देखो। भीतर भी आग जल रही है। जब मैं इस आग से नहीं जली, तब उस आग से क्या जलूँगी। मैं नहीं डरती। ज़रा भी नहीं।

वह फिर हँसने लगी। कुमारी ने दुःखित होकर कहा—तुम्हें क्या हो गया है सोना ? बतलाती क्यों नहीं ?

सोना—मैं डरती हूँ तो सिर्फ़ एक ही आदमी से। उसे बहुत दिन हुए कभी देखा था। कुछ-कुछ याद अभी तक है। वह मुझे बहुधा बुलाया करता है। मैं जब ऊपर देखती

हूँ, तब ऐसा जान पड़ता है, जैसे वह मुझे बुलाता हो। मैं वहाँ उसके पास जाना चाहती हूँ; पर जाऊँगी नहीं। वह मुझे बहुत प्यार करता था। अब मैं अपने को उसके प्यार के लायक़ नहीं समझती; इसी से उसके पास जाने में डर लगता है। वह कहता है, मैं तुम्हें पहले ही की तरह चाहता हूँ। तुम्हारे सब अपराध मैंने क्षमा कर दिए हैं। मैं पहले के समान नहीं रही। बिलकुल बदल गई हूँ। पहले अच्छी थी, अब बुरी बन गई हूँ। हाँ, बहुत बुरी बन गई हूँ। क्यों? क्योंकि मैंने उसके साथ घोर विश्वासघात किया है। अब मुझे अपने चाहने वाले के पास जाने में लज्जा और भय दोनों होता है। अहा! वह कितना अच्छा दीखता है। पहले शायद ऐसा नहीं था। हाय! यह मूर्त्ति मेरे मन में सदा क्यों न बसी रही?

कुमारी जानती थी कि उसी के उभारने से ओङ्कार की काम-लिप्सा बढ़ी थी और वह सोना को रौंदता हुआ चन्दा की ओर लपका था। सारे अनर्थ की मूल वही थी। रोकर उसने कहा—बहिन, मैं ही तुमको बुरी बनाने वाली हूँ। मेरे ही कारण तुम्हारी यह दशा हुई है। परमात्मा! न्यायकारी शासक! मुझे दण्ड दे। निरपराधिनी को क्यों कष्ट देता है?

सच्चा पछतावा हृदय के रोगों की रामबाण औषधि है। कुमारी की इस औषधि ने सोना के हृदय में भी प्रवेश कर

अपना गुण तत्काल दिखाया। उसके नेत्र जलमय हो गए। पाप का मैल उफान खाकर गिर गया। सोना ने अच-कचाकर कुमारी की आँखों से अपनी आँखें मिलाईं। एक क्षण के लिए उसका पूर्व-ज्ञान उदय हुआ। फिर वही हालत। फिर वही पागलपन की हँसी मुँह और आँखों में छा गई। खिलखिला कर उसने कहा—मरता है? मर! मैं क्या करूँ? अच्छा तो है। पृथ्वी का भार हट जायगा। जल्दी मर जा। जान न निकलती हो तो ला, मैं गला दबा दूँ। पर नहीं, मैं यह एहसान भी तेरे साथ नहीं करना चाहती। तड़प-तड़प मर। इतना क्यों घबड़ाता है? तुझमें और मुझमें थोड़ा ही अन्तर है। तू तड़पता हुआ मरता है और मैं तड़पती हुई जीती हूँ। × × × क्या कहा? ऐसे जीने से मरना भला है? हट दुष्ट! एक सुख है। तेरी दुर्दशा तो देख ली। × × × ऐं? फिर और क्या? मैं सुन्दर हूँ! हा! हा! क्या मैं सच ही सुन्दर हूँ? मैं सुन्दर हूँ! वाह! कैसी बढ़िया बात है! मैं सुन्दर हूँ? सच बोल, कैसी लगती हूँ? पहले मैं अवश्य सुन्दर थी। क्या जाने, अब हूँ या नहीं? बहुत दिनों से आईना लेकर अपना मुँह नहीं देखा। × × × मुझे चाहता है? मुझे प्यार करता है? अपने हृदय के सबसे ऊँचे आसन पर बैठालता है? दूर हो! पापी कहीं का! अपनी जिन्दगी भर में और भी किसी को प्यार किया है या मुझ पर ही अपना प्यार आज़माने आया है? × × ×

क़सम खाता है ? × × × मेरे सिर की क़सम क्यों खाता है ? अपने सिर की क़सम खा ! × × × नहीं, नहीं, मुझे तेरा ज़रा भी विश्वास नहीं है। मर कर भी तू मुझे विश्वास दिलाना चाहे तो मैं तेरा रत्ती भर विश्वास न करूँ। × × × मेरे बड़े भाग्य हैं—यही न ? × × × ऐसा सुन्दर रूप बड़े भाग्य से मिलता है ! नीच ! मैं ऐसी भोली नहीं हूँ कि एक बार धोखा खाकर भी कोई बात न समझूँ। अब मैं जान गई हूँ। बड़े भाग्य से नहीं, सुन्दरता बड़े अभाग्य से मिलती है। जो सुन्दर दीखती है, वह अवश्य बड़ी अभागी है। पाप सुन्दरता का कारण है और सुन्दरता पाप का आधार है। × × × तुम कौन हो जी ? बिना पूछे यहाँ कैसे चले आए। × × × देशसुधारक हो ? अच्छा, अच्छा आओ, बैठो। × × × देशसुधार का उपाय जानना चाहते हो ? अभी मैं वही तो कह रही थी। तुम कहाँ थे ? × × × मैं कहती थी, सुन्दरता ! हाँ, सुन्दरता × × × यह सबसे बुरी वस्तु है। इससे बुरा कुछ न होगा। सुन्दरता से पाप की सृष्टि होती है और पाप से देश का नाश होता है। तुम यदि देश को पाप-मुक्त करना चाहते हो—यदि तुम्हारे मन में उसकी सच्ची उन्नति करने की इच्छा है—तो सुन्दरता का मूलोच्छेद कर डालो। ऐसा करने से इसकी भलाई ज़रूर होगी। जितने सुन्दर रूपवाले दीखें, सबको कुरूप बना दो। बच्चा पैदा होते ही उसका चेहरा बिगाड़ दो। सुन्दरता के साथ ही सारा पाप भाग

जायगा। तब देखना, देश की उन्नति क्यों नहीं होती ? तब यह देश हिमालय के शिखर पर बैठ कर आकाश को छू लेगा। ऐसा ही करो। मैं जोर देकर कहती हूँ, यही करो। देशसुधार का इससे अच्छा कोई उपाय नहीं है।
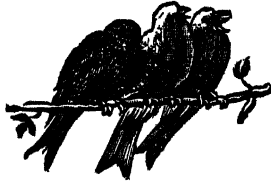
तैंतालीसवाँ परिच्छेद

जिस दिन ईश्वरप्रसाद का विचार होने वाला था, उस दिन शहर के बहुत से लोग बड़े चाव से अपने मन का कौतूहल मिटाने के लिए आए। देखें क्या होता है? कचहरी में बहुत भीड़ इकट्ठी हुई। समय पर मैजिस्ट्रेट आया। कार्य आरम्भ हुआ। सरकारी वकील ने खड़े होकर एक लम्बी वक्तृता दी। विषयारम्भ से लेकर उसकी समाप्ति तक बोलता रहा। खुलासा तौर से सब बातें समझाईं। उसके कथन का सार यही था कि ईश्वरप्रसाद दोषी है। घटना के तारतम्य से उसने अपनी बात सिद्ध कर दी। मोतीलाल की लड़की के विवाह के अवसर पर कुमारी का भेजा हुआ पत्र ईश्वरप्रसाद के कोट में मिला था। वह बड़ा भारी प्रमाण हुआ। उससे बताया गया कि ओङ्कारनाथ को मार डालने वाला क्रोधी ईश्वरप्रसाद के अतिरिक्त दूसरा नहीं हो सकता। मोतीलाल की गवाही से ईश्वरप्रसाद का पत्र पढ़ कर घर चला जाना पक्का हो गया। अपने मित्र से गहरी सहानुभूति रखते हुए भी मोतीलाल को बड़े खेद के

साथ सच्ची बात कहनी ही पड़ी। केदारनाथ आँखों देखा गवाह था। उसके ईश्वरप्रसाद के हत्यारे होने का वर्णन कर देने पर कोई सन्देह न रह गया। और दो-चार लोगों ने यही बात कही। यह हो चुकने पर कुमारी की तरफ़ से आए हुए वकील ने आगे आकर सब बातों का घोर प्रतिवाद किया। अनेक युक्तियाँ भिड़ाईं। केदारनाथ को झूठा साबित करने का प्रयत्न किया। उसने बहुत जोर मारा; पर कोई प्रत्यक्ष फल दीखता न मालूम हुआ। ईश्वरप्रसाद के बचने की आशा न दीखी।

मैजिस्ट्रेट ने ईश्वरप्रसाद से पूछा—अच्छा, तुम कुछ अपने बचाव में कहना चाहते हो ?

ईश्वरप्रसाद अपने भविष्य की कल्पना कर चुका था। दृढ़ता से उसने कहा—इसके सिवा मैं कुछ नहीं कहना चाहता कि मैं निर्दोष हूँ।

मैजिस्ट्रेट—गङ्गा में ओङ्कारनाथ की लाश फेंकने के विषय में तुम क्या कहते हो ?

ईश्वर—और कुछ नहीं कहूँगा।

अन्त में परिणाम वही हुआ, जो सबने पहले ही से सोच लिया था। ईश्वरप्रसाद दोषी ठहराया गया। बीस वर्ष के लिए कालेपानी की सजा सुना दी गई। जानने वाले लोग ईश्वरप्रसाद को बड़ा अच्छा समझते थे। उनकी समझ

में नहीं आया कि उसने ओङ्कारनाथ को कैसे मार डाला होगा। कोई कितना ही अपना हृदय कड़ा क्यों न बना ले, परीक्षा के समय वह अवश्य निर्बल हो जाता है। ईश्वर-प्रसाद दहल गया। अपनी स्त्री और लड़की के मोह ने उसे व्याकुल कर दिया। उनका क्या होगा? किस तरह वे अपना दिन काटेंगी? कुमारी मैजिस्ट्रेट से योंही भुनी हुई थी। दुःख और क्रोध से वह काँपने लगी। उसे नहीं मालूम हुआ, चन्दा कब बेहोश होकर उसके बग़ल में गिर पड़ी। सुन्दरलाल उत्साहहीन हृदय से बैठ गया।

उसी समय एक बड़ी विचित्र घटना घटी। दर्शकों के उखड़ते हुए पैर फिर जम गए। एड़ी उठा-उठा कर लोग एक दूसरे के कन्धे से बाहर सिर निकाल कर देखने लगे। मैजिस्ट्रेट के सामने छाती ऊँची किए ओङ्कार प्रत्यक्ष खड़ा था। सब स्तब्ध और अवाक् रह गए। यह प्रेत-लीला तो नहीं है? ओङ्कार ने स्पष्ट शब्दों में कहा—कैसे आश्चर्य की बात है, मैं इस पृथ्वी पर हाड़-मांस-सहित जीता-जागता मौजूद हूँ और मेरे मार डालने का अपराध बाबू ईश्वरप्रसाद जी पर लगा दिया गया!

उस समय के दृश्य का वर्णन नहीं किया जा सकता। ईश्वरप्रसाद अपनी आँखों और कानों का विश्वास नहीं कर सका। कुमारी और सुन्दरलाल ठगे से रह गए। मैजिस्ट्रेट ओङ्कार को आँखें फाड़कर देखने लगा। केदारनाथ डर कर

कोने में चिपक गया। ऐसी अनोखी घटना अपने जीवन में किसी ने क्यों देखी होगी ?

ईश्वरप्रसाद काल के गले से निकल आया। अब उसे कोई न रोक सका। मानिक ने कहीं से आ कुमारी और चन्दा को ले जाकर बग्घी पर बैठा दिया। सुन्दरलाल, ओङ्कारनाथ और ईश्वरप्रसाद भी बैठा लिए गए। भीड़ चीरती हुई बग्घी चार मस्त घोड़ों के पीछे-पीछे आगे चली।

चन्दा को चेत हुआ। अपने पति को पास ही देखकर उसे बड़ा हर्ष हुआ। मुख पर प्रसन्नता और आँखों में आँसू आ गए। इस आकस्मिक आनन्द के मिल जाने से सबके मुँह बन्द थे। ओङ्कार नीची गर्दन किए एक किनारे बैठा था। मानिक ने चन्दा का हाथ अपने हाथ में दबा कर वह निस्तब्धता भङ्ग की। सब रहस्य खोलना आरम्भ किया। सब शान्ति और धैर्य से सुनने लगे। ऐसी-ऐसी बातें कही गईं कि सब विस्मय-सागर में ग़ोते लगाने लगे। मानिक ने अपना, देवी का और ओङ्कार का सब हाल कह डाला। ओङ्कार को कुमारी का पूर्व-वृत्तान्त भी मालूम हो गया। बग्घी के उस बन्द डिब्बे में सारा भेद प्रकट हो गया।

ईश्वरप्रसाद के घर के सामने बग्घी पहुँचते ही कुमारी उतर कर देवी के पास चली गई।

ओङ्कार भीतर जाकर अपनी बहिन चन्दा के पैरों पर सिर रख कर रोने लगा। चन्दा भी रोने लगी। जिस कमरे

में एक दिन दूषित प्रणय-विनिमय का अभिनय हो रहा था, उसी में आज दो शुद्ध आत्माएँ परस्पर गले मिल रही थीं। ओङ्कार खेद के कारण रोता था और चन्दा प्रसन्नता और हृदय की विह्वलता के कारण रोती थी। चन्दा ने अपने भाई के अपराध को अपराध करके नहीं माना। ओङ्कार को अपना भाई जान कर उसकी प्रसन्नता और बढ़ गई।

ईश्वरप्रसाद ने ओङ्कार को तुरन्त क्षमा कर दिया। वे सब आनन्द मनाने लगे। चन्दा ने ओङ्कार से पूछा—भैया, इतने दिनों तक तुम छिपे क्यों रहे? किसी को अपना कुछ पता न दिया।

ओङ्कार—यह बात बहिन मानिक से पूछो, वही बताएँगी।

चन्दा—तुम्हीं बताओ बहिन!

मानिक—मैंने ही इनको प्रकट होने से रोक रक्खा था। इनकी स्त्री तक को इनका हाल नहीं जानने दिया। यदि मैंने इनको पहले ही प्रकट कर दिया होता, तो यह मज़ा कहाँ मिलता?

चन्दा—इतने दिन तक सब कोई चिन्ता और दुःख में पड़े रहे, यह क्या अच्छी बात रही?

मानिक ने हँस कर कहा—चिन्ता और दुःख के बाद ही तो सुख और ख़ुशी की क़ीमत का अन्दाज़ा हो सकता है।

चन्दा—नहीं, तुम्हें ऐसा नहीं करना था। मान लो, मैं तङ्ग आकर जहर खा लेती तब?

मानिक—ऐसा कदापि नहीं हो सकता था। मैं हर समय तुम्हारी ख़बर लिया करती थी। तुम्हारे मन में यह बात आते ही मुझे मालूम हो जाती। जानती नहीं, मैं लिफ़ाफ़ा देखकर मज़मून भाँप लिया करती हूँ ?

चन्दा ने मुस्कराकर कहा—तुम्हारी शक्ति मैं जानती हूँ।

मानिक—दूसरी सुविधाओं के साथ ही साथ ऐसा करने का मेरा मुख्य उद्देश्य यह था कि केदार छके। देखा नहीं, आज उसका कैसा मुँह हो गया था ?

चन्दा—मुझसे तो कह दिया होता !

मानिक—तब बात फैल जाती।

इधर कुमारी ने देवी के पास पहुँच कर हँसते हुए कहा—बहिन, एक ख़ुशख़बरी सुनोगी ?

देवी—कहो, कौन सी ख़ुशख़बरी है।

कुमारी—कहूँ ?

देवी—कहो।

कुमारी ने देवी का माथा छूकर कहा—तुम्हें ज्वर है। एकाएक वह बात कह देना ठीक न होगा।

देवी—मत कहो। मुझे मालूम हो गई।

कुमारी—क्या ?

देवी—ईश्वरप्रसाद छूट गए होंगे।

कुमारी—हाँ, वह छूट गए हैं। इसके सिवा एक बात और है। असल में वही तो तुम्हारे सुनने लायक़ है।

देवी—तो कहो न !

कुमारी—कहती हूँ। मैंने तुमसे चन्दा की चर्चा की थी। वह कौन हैं, जानती हो ?

देवी—वे मेरी ननद हैं।

कुमारी—अरे, तुमको यह मालूम है ! अच्छा बताओ, कोई योगिनी कभी तुम्हारे पास आई थी ?

देवी के मन में फुरफुरी उठी। उसने कहा—आई थी।

कुमारी—वह चन्दा की बहिन है। उसका नाम मानिक है। उसने तुमसे कुछ कहा था ?

देवी बात को कुछ-कुछ समझने लगी। और जो कुछ उसने समझा, उससे उसका हृदय बाँसों उछलने लगा। वह बोली—हाँ, कहा था।

कुमारी—क्या कहा था ?

देवी—कहा था कि वह मरे नहीं हैं, जीते हैं।

वह कुमारी के मुख को स्थिरता से देखने लगी।

कुमारी—यह बात ठीक है। वह सच ही जीते हैं। अभी कुछ देर में आया ही चाहते हैं। तुम उन्हें एक बार देख चुकी हो। मुझसे नहीं कहा।

देवी को मानों सञ्जीवनी मिल गई। उसका बुख़ार तुरन्त जाता रहा। देह में पूरी ताक़त आ गई। वह उठ कर बैठ गई। हर्ष से पूछा—उनको आने में कितनी देर लगेगी ?

कुमारी—कुछ देर नहीं। अब आते होंगे। यहाँ आए बिना कैसे रुकेंगे ?

अधिक देर नहीं हुई थी कि ओङ्कार आ गया। उसके साथ मानिक, चन्दा, सुन्दरलाल और ईश्वरप्रसाद भी आए। अच्छा हुआ, जो कुमारी ने देवी को ओङ्कार के जीते रहने का पक्का समाचार पहले ही सुना दिया; नहीं तो वह इस समय बिलकुल निर्लज्ज बन जाती।

देर तक अपने पति को देख लेने के बाद देवी मानिक के गले से लिपट गई। बोली—मेरी योगिनी !

मानिक मुस्कराई।

देवी ने कहा—मैं तुम्हारी सबसे अधिक ऋणी हूँ।

ओङ्कार ने कुमारी के सामने घुटने टेक, हाथ जोड़ कर क्षमा माँगी। उसको बहिन कहकर सम्बोधन किया। कुमारी के कोई भाई नहीं था; पर अब उसके मन में भ्रातृ-प्रेम उदित हुआ। नेत्र सजल हो गए। पिछली सब बातें भूल कर उसने उसे सच्चे हृदय से क्षमा कर दिया।

चवालीसवाँ परिच्छेद

खिमसिंह पचास रुपया जुर्माना देकर छूट गया। फिर मानिक के पास आकर रहने लगा। एक दिन धीमी हवा में बस्ती से बहुत दूर मानिक की सुन्दर नाव अठखेलियाँ करती चञ्चल लहरों पर धीरे-धीरे तैरती हुई चली जा रही थी। चारों ओर सुनसान मैदान था। कहीं-कहीं दो-एक बड़ या गूलर के वृत्त शान्त भाव से खड़े दिखाई देते थे। मानिक भीतर कमरे में बैठी हुई कुछ लिख रही थी।

जोखिमसिंह ने आकर कहा—स्वामिनी जी, दूर पर कोई जहाज़ आता दिखाई देता है। मुझे कुछ सन्देह जान पड़ता है।

मानिक लिखना छोड़ कर जोखिमसिंह के साथ ऊपर छत पर गई। देखा, तो सच ही कोई आधे मील की दूरी पर एक छोटा सा जहाज़ दिखाई दिया। वह तेज़ी के साथ इसी तरफ़ को आ रहा था।

जोखिमसिंह बोला—जहाज़ शायद अङ्गरेजों का है। हमारा पीछा कर रहा है। देखिए, वह झण्डा फहरा रहा है, उन्हीं का जान पड़ता है।

मानिक दूरबीन लगा कर कुछ देर तक देखती रही। फिर कहा—हाँ, अङ्गरेजों का ही है।

जोखिम—क्या करना चाहिए? क्या जाने, वह हम लोगों को पकड़ने के लिए ही न आ रहा हो। अपनी नाव हलकी है। बहुत तेज़ चल सकती है। कहिए, तो भगा ले चलें। वे हमें नहीं पा सकेंगे।

मानिक—भागने की कोई जरूरत नहीं।

जोखिम—इस समय हमारे पास काफ़ी आदमी नहीं हैं। दस-बारह डाकुओं से कुछ न हो सकेगा। यह ऐसी जगह है कि जल्दी सहायता भी नहीं मिल सकती। उनके पास ज्यादा आदमी होंगे।

मानिक ने दूरबीन जोखिमसिंह को देकर कहा—लो, देखो! सहायता पास ही है। कोई डर की बात नहीं। वे हमारा कुछ नहीं कर सकेंगे।

जोख़िमसिंह ने दूरबीन आँखों में लगाई। प्रसन्न होकर बोला—ठीक है, कोई डर नहीं।

मानिक ने हँस कर पूछा—क्या देखते हो?

जोखिम—गोरेलाल दिखाई पड़ रहा है।

मानिक—वह अकेला इतने आदमियों के बीच में क्या कर सकेगा ?

जोखिम—सब कर लेगा । तभी उसने हम लोगों के पास कोई ख़बर नहीं भेजी । डर की बात होती तो तुरन्त वह किसी से कहला भेजता ।

मानिक—शायद कोई कारण पड़ गया हो ।

जोखिम—अपने दो आदमी हर समय उससे मिला करते हैं । ऐसा नहीं हो सकता कि वह पाँच मिनट का समय भी न निकाल सके ।

मानिक मुस्कराई । उसने कहा—पहले तो तुम थोड़ा डर गए थे !

जोखिम—मैं कभी नहीं डरता । एक दिन तो मरना ही होगा । आपके लिए जान देने में मुझे बड़ी ख़ुशी होगी । समय के अनुसार काम करना चाहिए ; इसीलिए मैंने नाव भगा ले चलने के लिए कहा था ।

जहाज़ बहुत पास आ गया । उस पर दो अङ्गरेज़ों के साथ केदारनाथ सामने खड़ा था । पीछे एक हिन्दुस्तानी अफ़सर था । कुछ और हट कर बहुत से कॉन्स्टेबिल चार क़तारों में बन्दूकें लिए क़ायदे के साथ खड़े थे । गोरेलाल किसी काम से भीतर गया हुआ था ।

एक अङ्गरेज़ ने अपनी भाषा में गुनगुना कर कुछ कहा ।

दूसरे ने सिर हिलाकर उसका उत्तर दिया। पहले ने अपनी बन्दूक़ ऊपर करके हवा में एक फ़ायर कर दिया। अफ़सर ने आगे आ ज़ोर से चिल्ला कर कहा—नाव रोको।

सौ गज़ की दूरी को पार करके आवाज़ बजरे तक पहुँची। जोखिमसिंह ने कहा—आप लोग हमसे क्या चाहते हैं ?

अफ़सर—यह डाकुओं की नाव है। हम सबको गिरफ़्तार करना चाहते हैं।

कोई उत्तर नहीं दिया गया।

केदार ने अँगुली का इशारा करके अङ्गरेज़ों से कहा—वह आदमी डाकुओं का सरदार है। उसी ने मुझे मारा था। वह स्त्री वही है, जो स्वामिनी के नाम से मशहूर है।

अफ़सर ने फिर चिल्लाकर कहा—नाव को वहीं खड़ी कर दो।

जोखिम—आप कैसे कह सकते हैं कि यह डाकुओं की नाव है ?

अफ़सर—हमें अच्छी तरह मालूम है। भागने की कोशिश मत करना। सीधे गिरफ़्तार हो जाओ तो अच्छा है; नहीं तो भारी आफ़त में पड़ोगे।

जोखिमसिंह ने मानिक की ओर देखा।

मानिक बोली—डर क्या है ? आज अपने दुश्मन से ज़रूर भरपूर बदला लूँगी।

जोखिम—यहाँ आने पर मैं आठ-दस को ख़तम कर डालूँगा। फिर आप ही सब जान लेकर भागेंगे।

जोखिमसिंह की दृष्टि अचानक अपने दाहिनी ओर गई। जोश में आकर उसने मानिक से कहा—वह देखिए!

दो सौ से अधिक डाकुओं का झुण्ड बरछा लिए दौड़ा चला आ रहा था।

मानिक धीर भाव से बोली—देख रही हूँ।

जोखिमसिंह उछल कर बोला—अब क्या है? मार लिया। शायद इन्हें अङ्गरेज़ों के अपना पीछा करने की ख़बर किसी तरह लग गई है। गोरेलाल ही ने कहला भेजा होगा।

मानिक—हाँ।

जोखिमसिंह ने जहाज़ की तरफ़ घूम कर कहा—हम लोग भागते नहीं। आप आकर जाँच कर लीजिए। हमें भला आदमी पावेंगे।

जहाज़ वालों की दृष्टि भी डाकुओं के झुण्ड पर पड़ी। वे बड़े भयभीत हुए। एक अङ्गरेज़ ने गला फाड़कर कहा—तुम लोग कौन हो? इस तरह इकट्ठे होकर क्यों आए हो? बलवा मचाना चाहते हो?

जोखिमसिंह तुरन्त बोल पड़ा—ये आपकी ख़ातिरदारी करने आए हैं।

दूसरा अङ्गरेज़ बोला—सब पक्के बदमाश हैं। सबको दस-दस साल की क़ैद की सज़ा दी जायगी।

तमाम डाकुओं का झुण्ड ठहाका मार कर हँस पड़ा। दुश्मन को दहला देने वाली वह हँसी जङ्गल के प्रत्येक कोने में गूँज गई। डाकू-दल गङ्गा किनारे आ खड़ा हुआ। दोनों अङ्गरेज़ों का दिल बैठ गया। वे समझ गए कि डराने से ये क़ाबू में नहीं आवेंगे।

उसी समय गोरेलाल ने केदार को इशारे से अलग बुलाया। केदार गया। गोरेलाल उसे भीतर ले गया। केदार ने पूछा—क्या है? अब तो बेमौत मरना पड़ेगा। कम से कम मुझे ये डाकू ज़िन्दा नहीं छोड़ेंगे। बचने की कोई सूरत है?

गोरेलाल—एक उपाय है।

केदार—कौन सा?

गोरेलाल ने उत्तर देने के बदले एक बन्दूक़ उठाकर उसका वज़नी कुन्दा केदार के सिर पर पटक दिया। केदार गिर पड़ा। गोरेलाल ने उसके हाथ-पैर मज़बूती के साथ बाँध दिए। फिर उसे घसीटता हुआ ले जाकर उसके साथ फुर्ती से पानी में कूद पड़ा। केदार ने उसके हाथ में ज़ोर से दाँत काट खाया। गोरेलाल ने पानी के भीतर ही उसके मुँह पर कस कर एक घूँसा जमाया। दो मिनट के गहरे ग़ोते के बाद जब उसने मानिक की नाव के पास अपना सिर

पानी के बाहर निकाला, तब कानों को बहरा कर देने-वाली एक भयानक आवाज़ हुई। साथ ही जहाज़ टूट कर टुकड़े-टुकड़े हो गया। उसमें के सब लोग पानी में गिरकर हाथ-पैर मारने और डुबकियाँ खाने लगे।

मानिक ने ज़ोर से कहा—शाबाश, गोरेलाल! शाबाश!

गोरेलाल केदार को लिए हुए नाव पर चढ़ आया।

मानिक ने चार डाकुओं को आज्ञा दी—उन दोनों अङ्गरेज़ों को पकड़ लाओ।

तुरन्त ही वे दोनों पकड़ लिए गए। नाव तेज़ी के साथ चलने लगी। ज़रा-सी देर में उस जगह से बहुत दूर निकल गई। डाकुओं का झुण्ड काम पूरा हो गया देख जिधर से आया था, उधर ही लौट गया।

मानिक ने गोरेलाल से पूछा—यह कैसे हुआ?

गोरेलाल ने मानिक के पैर छूकर हँसते हुए कहा—सब आपके आशीर्वाद से हुआ है। जहाज़ के निचले खण्ड में एक तोप रक्खी थी। मैंने उसका मुँह नीचे को करके उसमें मिट्टी के तेल से भीगा हुआ कपड़ा लगा दिया। पास ही एक मोमबत्ती जला दी। थोड़ी सी जल चुकने पर आग लगी और तोप छूट गई। जहाज़ चूर-चूर हो गया।

जोखिमसिंह ने उसकी पीठ ठोंक कर कहा—ख़ूब किया! तुम्हीं को देख कर हम निश्चिन्त हो गए थे।

मानिक ने सौ-सौ रुपए के पाँच नोट गोरे लाल की ओर

बढ़ाकर कहा—लो, इन्हें रक्खो। सच ही तुमने बड़ी बहादुरी का काम किया है।

गोरेलाल ने हाथ जोड़ कर कहा—मैं एक कौड़ी भी नहीं लूँगा। सबके साथ मुझे जो मिल जाता है, उससे मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ। आपकी दया भर चाहिए। दास पर सदा कृपा बनाए रहिए। सरदार अच्छी तरह जानते हैं कि मैं लालची नहीं हूँ।

मानिक ने नोट रखकर कहा—अच्छा, फिर देखा जायगा।

दोनों अङ्गरेज़ एक कोठे में बन्द थे। केदार अलग क़ैद था। तीनों के हाथ-पैर बँधे थे। मानिक केदार के पास गई। एक लात मार कर घृणा से उसकी ओर देखा। कहा—क्यों रे दुष्ट, तू अपने बापों को साथ लेकर मुझे पकड़ने आया था? देखा, क्या हुआ? तू अपने मन की कर चुका। अब मेरी बारी है। मैं कुछ करके दिखाऊँगी। नीच! पहले की बातें कुछ याद हैं। अपने दलालपने को तो नहीं भूला! याद है, मैंने तुझसे कितनी विनती की थी? तेरे सामने कितना रोई थी? तुझ पर तो रुपए का भूत सवार था, काहे को सुनने लगा? ज़बरदस्ती मेरा ब्याह बूढ़े के साथ करवा दिया। मुझे भी न जाने क्या हो गया था। रो-गाकर रह गई। और कर ही क्या सकती थी? हिन्दू-गृहस्थ की कन्याओं में शक्ति ही कितनी रहती है? पापिष्ट! जानता है,

अब मैं विधवा हूँ? पराए कष्ट को तू क्या जाने? अपने ऊपर बीतती है, तभी मालूम पड़ती है। तेरा तो पूरा जन्म दूसरों को तकलीफ़ देने में बीता है। केवल मुझे ही नहीं, तेरे कारण बहुतेरों को दुःख सहना पड़ा है। आदमी नहीं, जानवर है—हाँ, तू जानवर है। जो दूसरों के दुःखों की परवा न करके आप मौज उड़ाना चाहता है, वह जानवर से भी बुरा है। किसी के यहाँ तू भेड़ बनकर भी जन्म लेता, तो तेरी ज़िन्दगी इस तरह व्यर्थ न जाती। दुरात्मा! अब तेरे पाप का घड़ा पूरा भर गया है। तैयार हो जा। मैं तुझे एक घण्टे का समय देती हूँ। सोच रख, तू अपने लिए कौन-सी सज़ा ठीक समझता है?

मानिक दाँत पीसती हुई बाहर निकल आई।

एक डाकू ने आकर कहा—स्वामिनी जी, वे दोनों अङ्ग-रेज़ आपसे मिलना चाहते हैं।

मानिक—भेज दो।

वे आए। सिर नीचा करके खड़े हो गए। ऐसे दब कर खड़े थे, जैसे हल जोतने वाले सीधे किसान हों। गर्व नाम-मात्र को न था।

मानिक ने पूछा—क्या कहना चाहते हो?

एक बोला—आपसे हम प्रार्थना करना चाहते हैं कि आप हमें छोड़ दें। हम चुपचाप यहाँ से चले जायँगे।

मानिक ने ताने से कहा—और जाकर हरेक को दस-

दस साल के लिए जेल में भेजने का इन्तज़ाम करेंगे ! और क्या कहना है ?

वह—आप विश्वास रक्खें। यदि आप हमें छोड़ देंगी, तो हम हमेशा आपकी यह नेकी याद रक्खेंगे। जहाँ तक हो सकेगा, आपकी भलाई करेंगे—बुराई कभी न होगी। ईश्वर की सौगन्ध खाकर हम सच्ची बात कहते हैं।

मानिक ने दूसरे से पूछा—और तुम ?

उसने भी शपथ खाकर पहले की बातों को दुहराया।

मानिक नर्म पड़ी। उसने कहा—अच्छा देखो, मैं तुम लोगों पर विश्वास करके तुम्हें छोड़ देती हूँ। कभी धोखा मत देना। हम लोगों के पीछे कभी मत पड़ना। यह भी याद रखना, मैं किसी भले आदमी को नहीं सताती। मेरा दण्ड उसी पर गिरता है, जिसकी ओर से न्याय ने अपनी आँखें बन्द कर ली हैं अथवा जो न्याय की आँखों से बचा रहता है।

दोनों अङ्गरेज़ किनारे पर उतार दिए गए।

एक घण्टे के बाद मानिक ने केदार को बाहर निकलवाया। एक डाकू उसका पैर पकड़ कर खींचता हुआ ले आया। मानिक ने पूछा—बोल, तूने क्या ठीक किया है ? केदार अपनी हार से, लज्जा, दुःख और क्रोध से, पागल हो रहा था। जहाँ पर वह पड़ा था, वहाँ से नाव का किनारा तीन हाथ दूर था। केदार ने उधर देखा। फिर पूरी ताक़त

से लुढ़क कर पानी में गिर पड़ा। हाथ-पैर बँधे थे। तैर नहीं सकता था। एकदम नीचे चला गया। जान-बूझकर उसने मुँह खोल दिया। पानी पेट में चला गया। गङ्गा जी ने उस पापी को भी सदा के लिए अपनी गोद में छिपा लिया।

उपसंहार
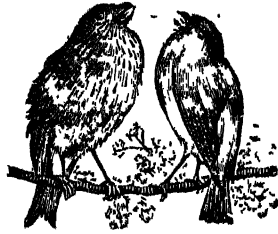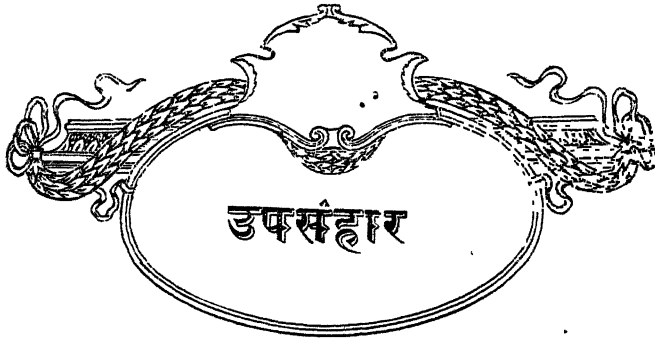
चन्दा का जी जब जञ्जालों से छुट्टी पा गया और वह सुचित्त होकर रहने लगी, तब उसका ध्यान मानिक के दिए हुए सब रुपयों की ओर गया। सोचने लगी, उसका व्यय किस प्रकार होना चाहिए। इस पर वह हफ़्तों तक विचार करती रही। अन्त में उसे एक बात सूझी और वह प्रसन्न हो गई। इन सब रुपयों को अपने देश-भाइयों की सहायता में लगाना चाहिए। अपने पति से उसने परामर्श किया। ईश्वरप्रसाद की सलाह के अनुसार कार्य आरम्भ हो गया। पाँच मील के घेरे की ज़मीन मोल ली गई। चारों तरफ़ ऊँचा हाता खींच दिया गया। सामने फाटक पर बड़े-बड़े सुनहरे अक्षरों में लिखवाया गया—

"मानिक-मन्दिर"

मानिक ने चन्दा से पूछा—बहिन, यह क्या कर रही हो ?

समझकर भी चन्दा ने विस्मय दिखाकर मुस्कराते हुए कहा—क्या ?

मानिक—अनजान को तो कोई समझा सकता है, पर जानकार को समझाना ज़रा टेढ़ी खीर है।

चन्दा—क्या हुआ ?

मानिक—मेरे नाम का ढिंढोरा पीटने की तुम्हें क्या जरूरत है ?

चन्दा—बिना तुमसे पूछे मैंने यह काम नहीं किया।

मानिक—मुझसे कब पूछा था ?

चन्दा—जिस समय तुम मुझे रुपया देने लगी थीं, उसी समय मैंने तुमसे वादा करा लिया था कि मैं इसे जिस प्रकार चाहूँ, ख़र्च कर सकती हूँ। और फिर यह तुम्हारा रुपया है। तुम्हारे नाम से इसका सदुपयोग होना ठीक है।

मानिक—और चाहे जो करो, पर मेरा नाम वहाँ से निकाल दो। मुझे बड़ी लज्जा मालूम देती है। किसी के सामने सिर उठाने में सङ्कोच होता है।

चन्दा ने हँसकर कहा—अब तो यह नहीं बदल सकता। इसकी रजिस्ट्री हो चुकी है।

मानिक धरती में नाखून गड़ाती हुई किसी विचार में पड़ गई।

चन्दा ने कहा—मैं तुमसे एक अनुरोध करना चाहती हूँ।

मानिक—तुमने मेरा अनुरोध नहीं पूरा किया; पर मैं तुम्हारा अनुरोध पूरा करूँगी। कहो!

चन्दा बिना किसी भूमिका के थोड़े शब्दों में बोली—डाकुओं का साथ छोड़ दो।

उस समय तो मानिक ने चुप्पी साध ली; पर बात मन में जमकर बैठ गई। तीन-चार दिन बाद उसने सब डाकुओं को इकट्ठा किया। लगभग ६०० की संख्या में वे आए। मानिक ने नम्रता से बड़ी देर तक उनसे बातें कीं। फिर उन्हें अच्छे-अच्छे उपदेश देते हुए डकैती छोड़ देने के लिए कहा। बोली—मैं इस काम से अलग होती हूँ। तुम सब भी अपना हाथ इससे खींच लो। दूसरे प्रकार से जीवन-निर्वाह करो। तुम लोग हृष्ट-पुष्ट और समर्थ हो। सब काम सरलता से कर सकते हो। अभी तक तुमने अच्छे-बुरे का विचार किए बिना ही एक मत होकर मेरी सब आज्ञाओं का पालन किया है। मेरी इस इच्छा को भी पूरी करो। इसी समय सब लोग प्रतिज्ञा कर लो कि आज से डाकू-वृत्ति छोड़ देंगे। कोष में इस समय पचीस लाख से ज्यादा का माल होगा। सब कोई मिल कर बाँट लो। यदि कहो, तो मैं उसका हिस्सा उचित रीति से लगा दूँ।

मानिक के विछोह का दुःख सबके हृदय में एक साथ हुआ। उन्हें ऐसा मालूम हुआ, जैसे पर कट जाने से वे स्वर्ग से एकदम पाताल की ओर गिरे चले जाते हों। उनकी आँखें तर हो गईं। वे अपनी स्वामिनी जी का साथ नहीं छोड़ना चाहते थे। पर करते क्या? कोई चारा नहीं था। मानिक की किसी इच्छा में वे बाधक नहीं बनना चाहते थे। इसको वे महापातक समझते थे। सबने सिर हिलाकर बड़े कष्ट से अपनी सम्मति जता दी।

मानिक ने आधा रुपया परोपकारार्थ अलग रख दिया। एक लाख जोखिमसिंह को दिया। पन्द्रह हज़ार गोरेलाल के हिस्से में आया। दस चुने हुए डाकुओं को दस-दस हज़ार मिला। बाक़ी रुपयों में सबका बराबर-बराबर भाग लगा। किसी ने इसमें कोई आपत्ति नहीं की।

मानिक 'मानिक-मन्दिर' के अहाते में एक छोटी-सी झोपड़ी बनाकर रहने लगी। गोरेलाल तो किसी तरह मान गया, पर जोखिमसिंह ने बहुत कहने-सुनने पर भी उसका साथ नहीं छोड़ा। मानिक पर उसकी अटल भक्ति हो गई थी। उसने स्वामिनी जी की आजन्म सेवा करने का दृढ़ सङ्कल्प कर लिया था। दूसरे डाकू अपनी-अपनी रुचि और इच्छा के अनुसार भिन्न-भिन्न धन्धों में लग गए। किसी ने कोई रोज़गार कर लिया। कोई खेती-बारी करने लगा।

तीन साल में 'मानिक-मन्दिर' पूरा बनकर तैयार हो गया। देश के अनाथ बच्चे और स्त्री-पुरुष खोज-खोज कर लाए गए और उसमें रक्खे गए। उन्हें पढ़ना-लिखना सिखाया जाने लगा। कई तरह के कला-कौशल और शिल्प-चातुरी की शिक्षा दी जाने लगी। कई उपदेशक नियत किए गए। वे नगर-नगर और गाँव-गाँव घूमकर देश की कुरीतियों को दूर करने का उद्योग करने लगे; दहेज की कुप्रथा, बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह को रोकने तथा स्त्री-शिक्षा और लोगों के सच्चरित्र होकर रहने के महत्व को समझाने का प्रयत्न करने लगे। बहुत जल्दी मानिक-मन्दिर की सुकीर्त्ति सब दिशाओं में फैल गई और उससे देश का आशातीत उपकार हुआ।

कुमारी ने अपना सब धन मानिक-मन्दिर में दे दिया। भाइयों की सेवा में जीवन व्यतीत करने लगी। इस भाँति उसने अपना जन्म सफल किया। उसने अपने कर्तव्य का पूरी तौर से पालन किया।

देवी, चन्दा, ओङ्कारनाथ, ईश्वरप्रसाद, सुन्दरलाल इत्यादि सब आनन्दपूर्वक रहने लगे।

पूर्ण-वयस्क हो जाने पर सुकुमार का विवाह सुबाला के साथ कर दिया गया। मौलसरी के वृक्ष के चारों ओर घूमकर लड़कपन में किए गए विवाह के दिन वाला सुबाला की धोती का फटा हुआ भाग सुकुमार ने उसे सुहाग-रात्रि में उपहार

में दिया। यह विचित्र उपहार पाकर सुबाला ने हँसते हुए लज्जित हो सिर नीचा कर लिया।

बहुत-कुछ कोशिश किए जाने पर भी सोना का पागल-पन न दूर हुआ।